"औरंगजेब का मारवाड़ के शासकों के साथ सम्बन्ध : एक अध्ययन"

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

की

पी-एच०डी० (इतिहास) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबंध

शोध छात्रा

मृदुला जायसवाल

विभागाध्यक्ष

प्रो० आनन्द शंकर सिंह

शोध निर्देशक

डॉ० राजीव कुमार श्रीवास्तव

इतिहास विभाग

सामाजिक विज्ञान संकाय

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

वाराणसी-221005

पंजीकरण संख्या : 280473

वर्ष : 2012

2012, 12

समर्पित

प्रो० एस० एन० सिन्हा
इतिहासकार एवं पूर्व विभागाध्यक्ष
जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली



(7 जुलाई 1934 ई० से 9 अप्रैल 2011)

उस महान इतिहासकार को जिनकी प्रेरणा, स्नेह, मार्गदर्शन और नई इतिहास दृष्टि ने हमें इस लायक बनाया।

– मृदुला जायसवाल

रचनास्वत्वाधिकार प्रमाण–पत्र

इतिहास विभाग
सामाजिक विज्ञान संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी–221005

शोध छात्रा का प्रतिज्ञा–पत्र

मैं **मृदुला जायसवाल,** अपने शोध–प्रबंध को **"औरंगजेब का मारवाड़ के शासको के साथ सम्बन्ध : एक अध्ययन"** शीर्षक से प्रस्तुत कर रही हूँ।

मेरे शोध की पूर्ण जिम्मेदारी मेरी होगी और किसी भी प्रकार की त्रुटि होने पर मैं इसमें अपेक्षित सुधार हेतु हमेशा तैयार हूँ।

Mridula

दिनांक : 10.11.12 **मृदुला जायसवाल**

स्थान : वाराणसी **शोध छात्रा**

इतिहास विभाग
सामाजिक विज्ञान संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी–221005

शोध छात्रा का घोषणा–पत्र

मैं **मृदुला जायसवाल,** प्रमाणित करती हूँ कि डॉ0 राजीव कुमार श्रीवास्तव के निर्देशन में प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध का सम्पूर्ण कार्य/लेखन स्वयं मेरे द्वारा किया गया है और पूर्णतया मौलिक है। शोध–प्रबंध लेखन में लगभग 2 वर्ष 1 माह अर्थात् अक्टूबर 2010 से अक्टूबर 2012 तक का समय लगा है जिसे मैंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में पूरा किया है। शोध–प्रबंध में वर्णित सामग्री पूर्णतया या आंशिक रूप में अन्य उपाधि या डिप्लोमा के लिए अन्यत्र प्रस्तुत नहीं किया गया है।

मैं हृदय से स्वीकार करती हूँ कि जहाँ भी अन्य शोधकर्त्ताओं या पुस्तकों की सामग्री का शोध–प्रबंध के मूल विवेचना या विश्लेषण के क्रम में उपयोग किया गया है, वहाँ उनके नाम और पुस्तक का उल्लेख किया गया है। मैं यह भी प्रमाणित करती हूँ कि पत्रिकाओं, पुस्तकों, लघु शोध–प्रबन्धों, शोध–प्रबन्ध अथवा वेबसाइट आदि पर उपलब्ध किसी के कार्य अनुच्छेद द्वारा निष्कर्ष आदि को अपनी जानकारी में यथावत् इस शोध–प्रबन्ध में न तो प्रस्तुत किया है और न ही ऐसे किसी कार्य को मैंने अपना मौलिक कार्य घोषित किया है।

Mridula

दिनांक : 10.11.12 — **मृदुला जायसवाल**

स्थान : वाराणसी — शोध छात्रा

शोध–निर्देशक का प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **मृदुला जायसवाल** का कथन/लेखन मेरी जानकारी में सत्य है।

आनन्द शंकर सिंह
प्रो0 आनन्द शंकर सिंह 10.11.
विभागाध्यक्ष
HEAD
Department of History
Faculty of Social Sciences
Banaras Hindu University
Varanasi-221005

डॉ0 राजीव कुमार श्रीवास्तव
शोध निर्देशक
Supervisor
Department of History
Faculty of Social Sciences
Banaras Hindu University
Varanasi-221005

इतिहास विभाग
सामाजिक विज्ञान संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी–221005

प्रस्तुत–पूर्व–सेमिनार सफलता
प्रमाण–पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **मृदुला जायसवाल,** इतिहास विभाग की नियमित शोध छात्रा हैं। इन्होंने पी–एच0डी0 प्रोग्राम के निमित्त अपेक्षित प्रस्तुति–पूर्व–सेमिनार को सफलतापूर्वक पूर्ण किया है।

आनन्द शंकर सिंह

प्रो0 आनन्द शंकर सिंह
विभागाध्यक्ष

HEAD
Department of History
Faculty of Social Sciences
Banaras Hindu University
Varanasi-221005

डॉ0 राजीव कुमार श्रीवास्तव
शोध निर्देशक

Supervisor
Department of History
Faculty of Social Sciences
Banaras Hindu University
Varanasi-221005

दिनांक : 10.11.12

स्थान : वाराणसी

इतिहास विभाग
सामाजिक विज्ञान संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी–221005

रचनास्वत्वाधिकार हस्तान्तरण प्रमाण–पत्र

शोध–प्रबंध का शीर्षक : **"औरंगजेब का मारवाड़ के शासको के साथ सम्बन्ध : एक अध्ययन"**

शोध छात्रा का नाम : **मृदुला जायसवाल**

रचनास्वत्वाधिकार हस्तांतरण

पी–एच0डी0 (इतिहास) उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध–प्रबंध के रचनास्वत्वाधिकार के अन्तर्गत आने वाले सभी अधिकारों को अधोहस्ताक्षरी इस पत्र के माध्यम से काशी हिन्दू विश्वविद्यालय को हस्तांतरित करती हूँ।

Mridula
मृदुला जायसवाल
शोध छात्रा

दिनांक : 10.11.12
स्थान : वाराणसी

टिप्पणी– स्रोत और विश्वविद्यालय के रचनास्वत्वाधिकार सूचना का निर्देश करते हुए लेखक इस शोध–प्रबंध को पुनः प्रस्तुत कर सकता है अथवा किसी दूसरे को शोध–प्रबंध को शब्दशः या आंशिक प्रस्तुति के लिए अधिकृत कर सकता है, अथवा लेखक स्वयं अपने व्यक्तिगत उपयोग के लिए भी पुनः व्युत्पादित कर सकता है।

इतिहास विभाग
सामाजिक विज्ञान संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी–221005

कोर्स वर्क फार पी–एच0डी0

प्रमाण–पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **मृदुला जायसवाल**, इतिहास विभाग की नियमित शोध छात्रा हैं। इन्होंने पी–एच0डी0 प्रोग्राम के निमित्त अपेक्षित कोर्स वर्क फार पी–एच0डी0 को सफलतापूर्वक पूर्ण किया है।

आनन्द शंकर सिंह

प्रो0 आनन्द शंकर सिंह
विभागाध्यक्ष
HEAD
Department of History
Faculty of Social Sciences
Banaras Hindu University
Varanasi-221005

डॉ0 राजीव कुमार श्रीवास्तव
शोध निर्देशक
Supervisor
Department of History
Faculty of Social Sciences
Banaras Hindu University
Varanasi-221005

दिनांक : 10.11.12

स्थान : वाराणसी

आत्म मंथन

वैसे ही शोध कार्य करने में सभी गर्व महसूस करते है, लेकिन मुझे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से शोध कार्य पूर्ण करने का अवसर मिला। यह बात सदैव हमें गौरवान्वित और प्रेरित करती रहेगी। शोध कार्य के समपन्न होने में बहुत सारे लोगो ने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष सहयोग किया जिनके प्रति अभार व्यक्त करना मेरा नैतिक दायित्व है।

प्रस्तुत शोध कार्य को पूर्ण कराने में मेरे शोध निर्देशक डॉ0 राजीव कुमार श्रीवास्तव की इतिहास के प्रति नए नजरिए ने अमूल्य योगदान दिया। यही कारण है कि मैं इतिहास के ऐसे चरित्र को भी सन्तुलित कर पाने में स्वयं को पूर्वाग्रह से मुक्त रख पायी। मैं प्रसिद्ध इतिहासकार एवं भारत सरकार के केन्द्रीय सूचना आयुक्त डॉ0 ओ0 पी0 केजरीवाल के समय–समय पर सुझावों के प्रति हृदय से आभारी हूँ। इतिहास विभाग के विभागाध्यक्ष प्रो0 आनन्द शंकर सिंह, पूर्व विभागाध्यक्ष प्रो0 लक्ष्मण राय, प्रो0 आर0 पी0 सिंह, डॉ0 घंनश्याम, डॉ0 ताबिर कलाम के प्रति भी आभार व्यक्त करती हूँ।

मैं निजी रूप से श्रीमती मोहिनी सिन्हा एवं विशाल भारत संस्थान के पदाधिकारियों पूजा भारतवंशी, अर्चना भारतवंशी, नजमा भारतवंशी और नाजनीन भारतवंशी के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ। अपने परिवार के सदस्यों श्री रवि शंकर जायसवाल, श्रीमती रागिनी जायसवाल, विपुल जायसवाल, श्रृंखला जायसवाल के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ।

महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ के इतिहास विभाग के प्रो0 अशोक कुमार सिंह, प्रो0 दिवाकर लाल श्रीवास्तव के विद्वता पूर्ण सुझावों के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ। आर्य महिला पी0 जी0 कालेज की

प्राचार्या डॉ0 रचना दूबे एवं इतिहास विभाग की डा0 पदमा मिश्रा के सहयोग के लिए आभारी हूँ।

अन्त में संस्थान के बच्चों ताजीम भारतवंशी, कशिश भारतवंशी, एवं दक्षिता भारतवंशी के स्नेहपूर्ण स्पर्श से मिली प्रेरणा के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ।

Mridula

दिनांक – 10.11.12 – मृदुला जायसवाल

वाराणसी


प्रस्तावना

प्रस्तावना

सल्तनत काल के सुल्तानों की शक्ति क्षीण होने के साथ ही राजपूत शक्तिशाली होते चले गए। लोदी वंश के पतन के साथ राणा संग्राम सिंह का उदय भारत को किसी भी राजनैतिक परिवर्तन के लिए बाध्य कर रही थी। बाबर के आक्रमण और पानीपत के युद्ध में इब्राहिम लोदी की हार ने यद्यपि मुगलों के लिए भारत विजय का रास्ता खोल दिया था लेकिन यह विजय निष्कन्टक नहीं था। इब्राहिम लोदी के बाद दूसरी ताकत राजपूतों की थी जो किसी भी शक्ति से टकराने से पीछे हटने वाले नहीं थे। जिनके नेतृत्व में सारे राजपूत एकत्र होकर मुगलों को बाहर खदेड़ने के लिए तैयार थे। बाबर और संग्राम सिंह दोनों को अपने अस्तित्व की रक्षा करने के लिए अंतिम दम तक युद्ध लड़ना पड़ा। एक को नया साम्राज्य बनाना था तो दूसरे को अपने साम्राज्य को बचाना था। दोनों लड़ाको में कोई हार मानने के लिए तैयार नहीं था, लेकिन खानवा के युद्ध में बाबर के पक्ष में फैसला हुआ। बाबर को भारत का सम्राज्य मिला और राजपूतों का महानायक संग्राम सिंह को अपना अस्तित्व खोना पड़ा। यह सिर्फ दो योद्धाओं के बीच युद्ध नहीं था। बल्कि दो महान योद्धा जातियों के बीच सत्ता का संघर्ष था।

मुगल वंश की स्थापना के बाद से कुछ ऐसी परिरिस्थितियाँ निर्मित हुई जिससे धीरे–धीरे सभी राजपूत राज्य केन्द्रीय मुगल सत्ता के अधीन होते गए और मुगत सत्ता को भी राजपूतों की बहुमूल्य सेवाएँ प्राप्त होती

गई जिससे मुगल सत्ता के सुदृढ़ीकरण में सहायता मिली।

राजस्थान में मारवाड़ का राज्य सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण था और जो राजपूताना के सभी रियासतों से बड़ा भी था। बाबर का समकालीन मारवाड़ का शासक राव गंगा था जिसने अपने पुत्र मालदेव को राणा सांगा की सहायता हेतु खानवा के युद्ध में भेजा था।

मुगल शासकों एवं राजपूतों के संबंधों का जो सिलसिला बाबर के समय से शुरू हुआ उसके अन्तर्गत विभिन्न परिस्थितियों के कारण राजस्थान के राज्यों के साथ मुगलों के संबंध निर्धारित हुए। सामान्यतः मुगल राजपूत संबंधों को राजपूत नीति की संज्ञा दी जाती है लेकिन वस्तुतः राजपूतों के व्यवहार के अनुसार ही मुगल शासक उनसे संबंध निर्धारित करते थे। यहाँ यह भी जानने का प्रयास किया गया है कि क्या राजपूतों को मुगल शासकों के समान शासक मानना उचित है। क्योंकि सामान्यतः जब हम दो पक्षों के सम्बन्धों की बात करते हैं तो उन संबंधों का आधार समानता का होता है परन्तु राजपूत राज्यों के साथ संबंध बराबरी का नहीं बल्कि मुगल सत्ता के अधीन राज्यों का था। मुगल सत्ता के सुदृढ़ीकरण के लिए भी यह आवश्यक हो गया था कि वह इन राजपूत राज्यों को अपनी अधीनता में रखे क्योंकि केन्द्रीकृत मुगल साम्राज्य के अन्तर्गत स्वतंत्र राजपूत राज्य होना संभव नहीं था।

मुगलों का राज्य स्थापित होने और सुचारू रूप से चलने से चलने में सबसे बड़ी बाधा राजपूत ही थे। अब मुगलिया सल्तनत को तय करना

था कि वह राजपूतों के साथ अनवरत युद्ध करके अपने सर्वनाश को दावत दे या उनसे सम्बन्ध बनाकर भारतीय साम्राज्य को स्थिरता प्रदान करें। बाबर भी बेवजह राजपूतों से युद्ध कर अकारण अपने लिए समस्या उत्पन्न नहीं करना चाहता था लेकिन राणा संग्राम सिंह और मेदिनी राय की पराजय ने राजपूतों के दिल में मुगलों के प्रति शत्रुता उत्पन्न कर दी थी और किसी भी कीमत पर राजपूत मुगलों को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। स्वतंत्रता प्रिय राजपूतों को मुगलों का हस्तक्षेप नापसन्द था। बाबर की मृत्यु के बाद जब हुमायूँ से किसी प्रकार का मैत्री संबंध स्थापित नहीं किया जिसकी वजह से उसका पूरा साम्राज्य लड़खड़ाता रहा।

अफगानों के हाथ से छीनी सत्ता को अफगान पुनः वापस प्राप्त करना चाहते थे। शेरशाह सूरी के रूप में उन्हें एक ऐसा अफगान पुनः वापस प्राप्त करना चाहते थे। शेरशाह सूरी के रूप में उन्हें एक ऐसा अफगान नायक मिला जो राजपूतों की तरह य़ोद्धा और मुगलों की तरह कूटनीतिज्ञ था वो मुगल सम्राट हुँमायू को बाहर खदेड़ कर अपनी सत्ता स्थापित करना चाहता था और हुमायूँ की तरफ से राजपूतों का समर्थन भी नहीं पा सका जो शेरशाह की बढ़ती हुई ताकत को रोकता। मेवाड़ राज्य पर गुजरात के शासक बहादुर शाह के आक्रमण के दौरान चित्तौड़ की रानी कर्मावती ने राखी भेजकर चित्तौड़ की सहायता के लिए आमंत्रित किया। यह सुयोग्य अवसर मुगलों और राजपूतों में बेहतर संबंध बना सकता था लेकिन हुमायूँ ने इसका लाभ नहीं उठाया। जब तक वह यह समझ पाता कि बिना राजपूतों के सहयोग के हिन्दुस्तान पर शासन करना

मुश्किल ही नहीं असम्भव है तब तक उसका पतन हो गया और उसे निर्वासित जीवन व्यतीत करना पड़ा। निर्वासित जीवन में भी अन्ततः उसे राजपूत शासक अमरकोट के राणा बीरसाल के यहाँ शरण लेनी पड़ी और यहीं मुगलिया सल्तनत के सूर्यास्त के वक्त अकबर के रूप में मुगलों को एक ऐसा प्रकाश मिला जो आने वाले समय में मुगल साम्राज्य में अपनी नीतियों और संबंधों के बदौलत स्थायी बना सका। अकबर ने राजपूतों को सम्मान देकर और उनसे वैवाहिक संबंध बनाकर मुगलिया सल्तनत की नींव इतनी गहरी कर दी कि उसे उखाड़ फेंकना किसी के लिए भी असम्भव था। जो राजपूत योद्धा और एशिया की महान वीर जाति मुगलों के लिए रोड़ा थी वहीं जाति अब अपनी तलवार लेकर मुगल साम्राज्य की रक्षा के लिए अग्रिम पंक्ति में खड़ी थी। मुगलों और राजपूतों के इस संबंध के बाद पूरे एशियाई – देशों में दूसरी ऐसी कोई जाति नहीं थी जो इनकी संयुक्त शक्ति का मुकाबला कर सकें। अकबर का राजपूतों के साथ संबंध ही पूरे देश के हिन्दुओं के संबंध में उदार नीति निर्माण के लिए कारगर बना। इसी वजह से अकबर ने तीर्थयात्रा कर, जजिया कर की समाप्ति और धार्मिक आजादी की नीति अपनाकर न सिर्फ राजपूतों का बल्कि देश के सभी हिन्दुओं का दिल जीत लिया और अकबर के ही नक्शे कदम पर जहाँगीर और शाहजहाँ भी चलते रहे। इससे मुगल दरबार में राजपूतों का वर्चस्व भी बढ़ता रहा और राजपूत अब दरबार की नीतियों को भी प्रभावित करने लगे। अकबर के बाद भी राजपूतों को उपेक्षित करना किसी सम्राट के बस की बात नहीं रही। अकबर ने काल में मारवाड़ के शासक

चन्द्रसेन और उसके पश्चात् उदय सिंह ने भी स्वेच्छा से अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली थी।

जहाँ तक जहाँगीर के शासक काल का प्रश्न है मारवाड़ के सूर सिंह ने दक्षिण में मुगलों की ओर से युद्ध किया था तथा सूर सिंह के पश्चात् गज सिंह ने भी अपनी सेवा से जहाँगीर को प्रसन्न किया था। शहजादा खुर्रम के विद्रोह के समय गज सिंह ने ही बादशाह को धैर्य बंधवाया और प्रोत्साहन दिया था।

शाहजहाँ के काल में भी गज सिंह की सेवाएँ मुगल सत्ता को प्राप्त होती रही और शाहजहाँ ने गज सिंह को 'महाराजा' का खिलाब दिया था। गज सिंह के पश्चात् जसवन्त सिंह पर भी शाहजहाँ की कृपा बनी रही तथा मुगल मारवाड़ सम्बन्ध भी बहुत अच्छे बने रहे।

औरंगजेब का शासनकाल भी इससे अछूता नहीं रहा और मारवाड़ के साथ बनते–बिगड़ते रिश्ते ही औरंजेब का हिन्दूओं के प्रति अनुदार नीति के लिए कारगार साबित हुआ। राजपूत हिन्दुओं के नेता थे इसलिए उनके द्वारा किया गया मुगललिया दरबार के साथ व्यवहार ही हिन्दुओं के प्रति नीति के लिए उत्तरदायी होता था और राजपूतों द्वारा किए गए किसी भी कार्य का प्रभाव देश के समस्त हिन्दु जनता पर पड़ता था। 1638–1657 ई0 तक जसवन्त सिंह शाहजहाँ की सेवा में रहा। 1657ई0 को शाहजहाँ दिल्ली में बीमार पड़ा उस समय शुजा बंगाल में, औरंगजेब दक्षिण में तथा मुराद गुजरात में थे। शाहजहाँ के बीमार पड़ते ही उसके

पत्रों में उत्तराधिकार का युद्ध शुरू हो गया। यद्यपि इस युद्ध को उत्तराधिकार का युद्ध कहना विवाद का विषय है। सुलेमान शिकोह और मिर्जा जयसिंह के नेतृत्व में एक सेना पूर्व की ओर भेजी जिसने शुजा को बनारस के निकट बहादुरपुर नामक स्थान पर पराजित किया। दक्षिण में औरंगजेब ने मुराद को अपनी ओर मिलाकर अपनी शक्ति बढ़ा ली थी। 26 दिसम्बर को कासिम खाँ को गुजरात का सूबेदार नियुक्त किया गया। जसवन्त सिंह ने औरंगजेब के विरूद्ध जाने का बीड़ा उठाया तथा कासिम खाँ को उसका सहयोग करने का आदेश दिया गया। औरंगजेब का ब्राह्मण दूत जसवन्त सिंह के पास उज्जैन पहुँचा और संदेश दिया कि जसवन्त सिंह औरंगजेब का मार्ग छोड़कर स्वदेश वापस चला जाए और उसका रास्ता न रोके। परन्तु जसवन्त सिंह ने यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। 16 अप्रैल 1658 ई0 को जसवन्त सिंह ने समझौते का प्रयास किया परन्तु औरंगजेब ने स्पष्ट कर दिया कि युद्ध के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। युद्ध शुरू हुआ परन्तु औरंगजेब के आगे जसवन्त सिंह के लिए विजय असंभव थी। राजपूत सरदारों ने जसवन्त सिंह के घायल होने पर उसे युद्ध क्षेत्र से हटा दिया तथा शाही सेना का नेतृत्व रतन सिंह राठौड़ को सौंपा गया। अंत में उसकी भी मृत्यु हो गई और युद्ध का अंत हो गया। औरंगजेब ने इस विजय के स्मरण में धरमत के युद्ध क्षेत्र पर एक नया कस्बा बसाने की आज्ञा दी जिसका नाम फतेहाबाद रखा गया। युद्ध क्षेत्र से जसवन्त सिंह अपने बचे हुए सैनिकों के साथ जोधपुर चला गया। धरमत के युद्ध में सफलता प्राप्त करने के पश्चात् सामूगढ़ नामक स्थान

पर (आगरा के समीप) दारा और औरंगजेब का सामना हुआ। 29 मई 1658 ई0 को इस घमासान युद्ध में दारा की पूरी तौर से पराजय हुई। औरंगजेब के गद्दी पर बैठने से जसवन्त सिंह को अपने भविष्य के प्रति शंका होने लगी। औरंगजेब एक सफल राजनीतिज्ञ था। अतः उसने जसवंत सिंह को दरबार में उपस्थित होने के लिए फरमान भेजा। जसवन्त सिंह ने मुँहणोत नैणसी को जोधपुर राज्य का प्रधानमंत्री नियुक्त किया और कार्यभार संभालने का आदेश देकर अजमेर से चला। मिर्जा जयसिंह की सिफारिश पर औरंगजेब ने जसवन्त सिंह को क्षमा कर दिया और अपनी सेवा में ले लिया। शुजा से युद्ध होने पर जसवन्त सिंह को सेना के दाहिने पार्श्व में नियुक्त किया गया था। जसवन्त सिंह के हृदय में द्वन्द उठ रहा था और शुजा से कुछ दिनों से उसकी बातचीत चल रही थी। उसका मूल उद्देश्य यह रहा था कि जसवन्त सिंह शुजा की सहायता करे और शाहजहाँ को मुक्त कर उसे ही पुनः गद्दी पर बैठाए जिससे वह इस संकटपूर्ण परिस्थितियों से छुटकारा पा जाएगा और उसकी ख्याति तथा मनसब में भी वृद्धि होगी। औरंगजेब को इस बात की सूचना मिल गई थी परन्तु मीर जुमला की कोशिशों से जसवन्त सिंह ने शाही सेना के दाहिने भाग में रहने का वादा किया। परन्तु जसवन्त सिंह ने शाहजादा सुल्तान मुहम्मद के पड़ाव पर पहुँच कर उसे लूटा और अपने राजपूत सैनिकों के साथ भाग गया। शुजा ने शाही सेना का शोरगुल सुना परन्तु उसने सोचा कि संभव है कि औरंगजेब और जसवन्त सिंह ने मिलकर उसे फँसाने के लिए षड़यन्त्र रचा हो। और विजय प्राप्त करने का सुनहरा

अवसर खो दिया। ऐसी कठिन परिस्थिति में भी औरंगजेब ने बड़ी वीरता और धैर्य से काम लिया तथा संध्या होते–होते शुजा की सेना परास्त हो गई। खजुवा के युद्ध से भागकर 23 जनवरी 1659 को जसवन्त सिंह जोधपुर पहुँचा। खजुवा के युद्ध के बाद औरंगजेब ने जसवन्त सिंह को उचित दण्ड देने की ठानी और मुहम्मद अमीन खाँ की अध्यक्षता में एक सेना जसवन्त सिंह को दण्ड देने के लिए भेजा। औरंगजेब ने अमर सिंह के पुत्र (जसवन्त सिंह के भतीजे) राम राय सिंह को राजा की उपाधि देकर सेना साथ भेजा ताकि जसवन्त सिंह को बाहर निकालकर राय सिंह को जोधपुर की गद्‌दी पर बिठाया जाए। इस बीच जसवन्त सिंह और दारा ने एक–दूसरे का सहयोग करने का आश्वासन दिया। मिर्जा जयसिंह की कोशिशों से जसवन्त सिंह ने दारा का सहयोग करने का विचार त्याग दिया। 12 मार्च 1659 ई0 अजमेर के समीप देवराई नामक स्थान पर औरंगजेब और दारा की सेना के बीच तीन दिन तक युद्ध चला। अन्त में दारा पराजित होकर भाग निकला। दारा के भागने के दूसरे दिन ही औरंगजेब ने जसवन्त सिंह को माफ कर दिया और 7000 सात, 7000 सवार का उसका पहले का मनसब स्वीकार किया और उसको गुजरात की सूबेदारी पर नियुक्त किया। साथ ही उसे यह आदेश मिला कि वह दारा का पीछा करे और गुजरात से उसे बाहर निकालने के लिए शीघ्र ही चल दे। 10 नवम्बर 1659 तुलादान के अवसर पर औरंगजेब ने जसवन्त सिंह को फिर से 'महाराजा' की उपाधि दी। जसवन्त सिंह ने पृथ्वी सिंह (जसवन्त सिंह का पुत्र) को मुगल दरबार में भेजा। औरंगजेब ने जसवन्त

सिंह को यह आज्ञा भेजी कि शाइस्ता खाँ की सहायता के लिए दक्षिण पहुँच जाए। शाइस्ता खाँ ने पूना पर अधिकार करने के पश्चात् शिवाजी के बचपन के निवास स्थान लाल महल पर अधिकार कर लिया। सिंहगढ़ से पूना पहुँने के लिए शिवाजी ने रास्ते में ही जसवन्त सिंह के पड़ाव के पहरेदारों को धोखा देकर आगे बढ़े। उन्होंने सफलता पूर्वक पड़ाव में घुसकर आराम भी किया। आधी रात बीतने पर शिवाजी शाइस्ता खाँ के निवास स्थान में घुसे सभी को घायल कर वापस लौटे। जसवन्त सिंह जब सहानुभूति प्रकट करने आया तो शाइस्ता खाँ ने उसे देखते ही व्यंग्य कहा – "जब शत्रु ने मुझ पर आक्रमण किया तो मैंने सोचा कि आप पहले ही उनसे लड़ते–लड़ते मारे गए और मुझे इस विपत्ति का सामना करना पड़ा।" कुछ इतिहासकार मानते हैं कि शिवाजी और जसवन्त सिंह में कोई गुप्त सन्धि हो गई थी जिसके वह खामोश रहा। (खफी खाँ, भीमसेन, मनुची, बर्नियर) इस घटना के बाद शाइस्ता खाँ के स्थान पर शहजादा मुअज्जम को दक्षिण में नियुक्त किया। औरंगजेब को जब इस घटना की सूचना मिली तो वह बहुत ही असन्तुष्ट हुआ और 30 सितम्बर 1664 ई0 को जसवन्त सिंह और मुअज्जम को दक्षिण से वापस लौट आने के लिए फरमान भेजा। औरंगजेब से मिलने पहुँचे शिवाजी का जब अपमान हुआ तो उन्होंने कहा – मैं यह खिलअत लेना अस्वीकार करता हूँ। सम्राट ने जानबूझकर मुझे "उस जसवन्त सिंह के नीचे खड़ा किया जिसकी पीठ युद्ध भूमि में मेरे सिपाहियों ने देखी थी। कुछ दिन मुगल दरबार में रहने के पश्चात् जसवन्त सिंह को काबुल भेजा गया। काबुल से वापस आने के

बाद जसवन्त सिंह मुअज्जम के साथ दक्षिण में रहा (1666–1671) जसवन्त सिंह को 1671–1672 ई0 तक गुजरात की दूसरी सूबेदारी दी गई। जसवन्त सिंह 1673–1678 तक काबूल में नियुक्त रहा। जमरूद में जसवन्त सिंह को अपने एकमात्र जीवित पुत्र कुंवर जगत सिंह की मृत्यु का समाचार मिला। (12 फरवरी 1676 को मृत्यु हुई) जबकि बड़े पुत्र पृथ्वी सिंह की मृत्यु 8 मई 1667 ई0 को हुई थी। 52 वर्ष की अवस्था में 28 नवम्बर 1678 ई0 को जमरूद में ही जसवन्त सिंह की मृत्यु हो गई।

जसवन्त सिंह के व्यवहार ने औरंगजेब के मन में संदेह की स्थिति तो पैदा कर ही दी थी। स्वयं जसवन्त सिंह का व्यवहार भी स्वभावतः उसके चरित्र में संदेह उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त था। इन संदेह भरी परिस्थितियों का अध्ययन प्रस्तावित है तथा औरंगजेब के राज काल में जसवन्त सिंह के कार्य और व्यवहार का भी विस्तार से अध्ययन किया गया है।

यह भी जानना उपयोगी है कि किन कारणों से औरंगजेब ने जसवन्त सिंह को कभी भी जोधपुर **'वतन जागीर'** में नहीं दिया था और उसे दो बार गुजरात की सूबेदारी, दो बाद दक्षिण में रखना और काबूल में सूबेदार नियुक्त करना, ऐसा प्रतीत होता है कि औरंगजेब ने जसवन्त सिंह को जोधपुर से दूर ही रखा, जिससे जसवन्त सिंह को जोधपुर में रहकर स्वयं को संगठित एवं सुदृढ़ करने का मौक़ा न मिल सके।

जसवन्त सिंह की मृत्यु के पश्चात् मारवाड़ की गद्दी के लिए जो संघर्ष आरम्भ हुआ तथा उत्तराधिकार की समस्या को लेकर मारवाड़ में जो

राजनीति की जा रही थी, वह भविष्य में औरंगजेब की सत्ता के लिए चुनौती बन सकती थी। अतः औरंगजेब के लिए यह अति आवश्यक था कि वह इस तरह की राजनीति को बढ़ने से रोककर अपनी केन्द्रीकृत सत्ता को अक्षुण्ण बनाए रखे। प्रस्तावित शोध कार्य में मारवाड़ की इस तरह की आन्तरिक राजनीति और षड़यंत्र का विस्तार से अध्ययन किया गया है। उन कारणों का भी अध्ययन किया जाएगा, जिन कारणों से औरंगजेब ने अजीत सिंह जो कि एक बच्चा था, को टीका न देकर इन्द्र सिंह को टीका दे दिया था। जसवन्त सिंह की मृत्यु के समय उनकी दो रानियाँ रानी जादभ और रानी नरूकी गर्भवती थीं। ये दोनों रानियाँ सती होने जा रही थी परनतु राठौड़ सरदारों ने उन्हें बचा लिया था। राठौड़ सरदारों ने अन्तिम संस्कार के लिए पेशावर में ही रूकने का निश्चय किया। जोधपुर में उपस्थित राठौड़ सरदारों के लिए एक पत्र भी भेजा गया जिसमें उन्हें धैर्य और शान्ति से कार्य करने की सलाह दी गई। इस पत्र में यह भी लिखा गया था कि यदि बादशाह जोधपुर के प्रशासन के लिए शाही अधिकारी भेजे तो उन्हें भी स्वीकार करके औरंगजेब को प्रसन्न बनाए रखना ही तात्कालिक परिस्थिति के लिए उपयुक्त होगा। दिल्ली में उपस्थित जोधपुर राज्य का वकील श्यामदास को भी राठौड़ों ने आदेश दिया कि यदि मुगल सम्राट राज्य का उत्तराधिकारी न होने के कारण जोधपुर न दे तो उससे सोजत व जैतारण के परगने के लिए ही प्रार्थना करें क्योंकि रानियों के प्रसव तक बादशाह से अच्छे संबंध बनाए रखना ही हितकर है। औरंगजेब ने सैफुल्ला खाँ को यह आदेश भेजा कि वह स्वर्गीय

महाराजा की समस्त सम्पत्ति का निरीक्षण करें, उस पर शाही मुहर लगाए तथा जब राठौड़ सरदार पेशावर से शाही सेना में प्रस्थान करे तब वहाँ का कार्यभार संभाले। साथ ही औरंगजेब ने राठौड़ों को यह भी आश्वासन दिया कि जब स्व0 महाराजा से पुत्र उत्पन्न होगा, तो उसे समस्त प्रदेश वापस दे दिया जाएगा। राठौड़ सरदारों के नाम से एक शाही फरमान आया, जिसमें सोजत एवं जैतारण के अतिरिक्त जसवन्त सिंह के अधीन सभी परगनों को शाही अधिकार में लेने की सूचना दी। फरमान व दस्तक पाते ही वे पेशावर से प्रस्थान की तैयारी करने लगे। लाल खाँ ने बादशाह से प्रार्थना की कि अभी तक उत्तर पश्चिमी सीमा पर अफगानों का विद्रोह पूर्ण रूप से शान्त नहीं हुआ है और ऐसी परिस्थिति में राठौड़ सरदारों एवं सैनिकों को वापस बुला लेने से मुगलों की सैनिक शक्ति क्षीण हो जाएगी जिसके फलस्वरूप संभव है वहाँ की समस्या और भी गम्भीर हो उठे। तब औरंगजेब ने दस्तक वापस लाने के लिए एक दूत भेजा इस निर्देश के साथ कि न मिला हो तो ही वापस ले आए। संभवतः उसका उद्देश्य यह था कि यदि राठौड़ वहाँ रूक जाए तो अच्छा ही है, परन्तु उनके मन में किसी प्रकार का क्षोभ या आशंका उत्पन्न कर उनको वहाँ रोकना वह उचित न समझता था। इससे स्पष्ट है कि वह उस समय राठौड़ों के सन्तोष एवं सहयोग को अधिक महत्व दे रहा था। परन्तु दस्तक वापस लिए जाने से राठौड़ो के हृदय में सन्देह उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था। राठौड़ संग्राम सिंह के निवेदन पर बादशाह ने उन्हें दिल्ली आने की अनुमति दे दी थी। राठौड़ों ने जसवन्त सिंह के जीवित अवस्था के कागज

जला डाले जिससे सम्भवतः जसवंत सिंह के पास उपस्थित राठौड़ सरदार महाराजा की व्यक्तिगत सम्पत्ति का ठीक–ठीक विवरण मुगल सम्राट को नहीं देना चाहते थे। मुगल साम्राज्य के प्रचलित नियमानुसार औरंगजेब ने तत्काल ही पेशावर के शाही कर्मचारियों को आज्ञा दी कि वे महाराजा की सम्पत्ति का निरीक्षण करके उसपर शाही मुहर लगा दे। इफ्तिखार खाँ को लिखे पत्र में रानी हाड़ी ने अत्यन्त नम्रता पूर्वक जोधपुर की मांग की थी और यहाँ तक लिखा कि उसे जोधपुर के बदले में सोजत व जैतारण के परगने वापस देने में कोई आपत्ति नहीं है। राठौड़ो ने जसवन्त सिंह की सम्पत्ति का ठीक–ठीक विवरण नहीं दिया। इधर जोधपुर में निरन्तर अव्यवस्था फैलती जा रही थी यत्र–तत्र उपद्रव हो रहे थे। अतः शाही अधिकारियों को भेजना आवश्यक हो गया था। अब्दुल्ला खाँ ने बादशाह को सूचना दी कि राजपूत पूरी तरह सुसज्जित है तथा उन्होंने सांभर तथा डीडवाना पर अधिकार करने की योजना बनाई है। बादशाह को भी यह सूचना मिली थी कि मारवाड़ में 20 हजार राजपूत सैनिक एकत्र हो चुके है और उनकी संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। फलतः बादशाह ने स्वयं अजमेर जाकर स्थिति संभालने का निश्चय किया। औरंगजेब को अभी तक जसवन्त सिंह की सम्पत्ति का पूरा–पूरा हिसाब नहीं मिला था। इन परिस्थितियों में बादशाह को सम्पत्ति के विषय में सन्देह होना स्वाभाविक था। उसने राठौड़ों पर दबाव डाला और आज्ञा दी कि सभी राठौड़ सरदार उससे मिले और जसवन्त सिंह की सम्पत्ति का पूरा विवरण दे। जसवन्त सिंह की मृत्यु के बाद जोधपुर में जो अव्यवस्था उत्पन्न हो गई थी और

राठौड़ सरदारों ने जिस प्रकार उपद्रव आरम्भ किया था, उसको तत्काल दबाना और जोधपुर में तुरन्त शान्तिपूर्ण व्यवस्था स्थापित करना आवश्यक था, न तो स्वर्गीय महाराज की किसी रानी में यह योग्यता थी और न कोई ऐसा योग्य राठौड़ सरदार ही था जो उत्तराधिकार की समस्या का समाधान होने तक वहाँ शान्ति और व्यवस्था स्थापित कर सकता। ऐसी परिस्थिति में औरंगजेब ने अमरसिंह के पोते इन्द्रसिंह को ही राज्य सौंपना उचित समझा। 26 मई 1679 को जोधपुर का राज्य इन्द्र सिंह को सौंपा गया। राठौड़ सरदारों ने सोच–विचार कर यह निश्चित किया कि दिल्ली में चुपचाप पड़े रहना व बादशाह से किसी प्रकार की आशा करना व्यर्थ है। इस प्रकार योजना बनाकर राठौड़ों ने औरंगजेब से प्रार्थना की कि उनमें से कुछ लोग स्वदेश जाना चाहते हैं। औरंगजेब की अनुमति प्राप्त कर इन लोगों ने गुप्त रूप से अजीत सिंह को भी निकाल दिया। उधर बादशाह को भी पता चल गया कि राठौड़ सरदार उसकी दी गई अनुमति का अनुचित लाभ उठाकर राज परिवार सहित निकल भागने का प्रयत्न कर रहे हैं और जोधपुर में अव्यवस्था फैलाना चाहते हैं। तो उसने रानियों तथा राजकुमारों को नूरगढ़ भेजने की आज्ञा दी। परिस्थिति विषम देखकर उन्हें ये आशंका हुई कि कहीं जसवन्त सिंह की रानियों को शाही सैनिक न पकड़ लें। फलतः उन्होंने स्वयं ही रानियों को मार डाला।

औरंगजेब को जब यह समाचार मिला कि राणा राजसिंह ने जसवन्त सिंह के पुत्र को आश्रय दिया है, तो उसने राणा के नाम इस आशय से एक फरमान भेजा कि अजीत सिंह को शाही दरबार में भेज दिया जाय।

अकबर को मेवाड़ में सफल न होता देख औरंगजेब ने उसे मारवाड़ में नियुक्त कर दिया। राठौड़ सरदारों ने धीरे–धीरे नवयुवक शाहजादे अकबर की महत्वाकांक्षाओं को जगाने का प्रयास किया और समझाया कि उसका पिता राजपूतों को अप्रसन्न करके मुगल साम्राज्य को निर्बल कर रहा है, अतः उचित यही है कि उसे हटाकर अकबर स्वयं बादशाह बन जाए और अपने पूर्वजों की नीति का पालन करें। अकबर ने राणा जयसिंह को कुछ परगने तथा अजीत सिंह को जोधपुर का राज्य देना स्वीकार किया। 3 जनवरी को देसूरी में राजपूतों की सहायता से अपने को बादशाह घोषित कर दिया। (1681) इस अवसर पर अजीत सिंह को सात हजार जात सात हजार सवार का मनसब देकर जोधपुर का राजा स्वीकार किया गया। अजीत सिंह को जसवन्त सिंह के उत्तराधिकारी के रूप में इस समय प्रथम बार मान्यता मिली। शाहजादा अकबर के दो प्रमुख सहायक थे – तहव्वर खाँ तथा राजपूत। अपनी सफल कूटनीतिज्ञता का परिचय देते हुए औरंगजेब ने अकबर के विद्रोह को असफल कर दिया। जब राजपूतों को सच्चाई का पता चला तो उन्होंने अकबर को अपने संरक्षण में ले लिया और दुर्गादास ने सुरक्षित अकबर को मरहठा राजा शंभाजी के आश्रय में पहुँचा दिया। इधर इन्द्र सिंह की असफलता के कारण बादशाह ने 26 मार्च 1681 ई0 को उसे पदच्युत करके इनायत खाँ को जोधपुर का फौजदार नियुक्त किया। शाहजादा अकबर के असफल विद्रोह के बाद से ही उसका पुत्र बुलन्द अख्तर तथा पुत्री सफियतुन्निसा मारवाड़ राज्य में राठौड़ों की देख–रेख में थे। 20 मई 1698 ई0 को दुर्गादास इस्लामपुरी में

बादशाह से मिला। दुर्गादास को तीन हजार जात ढाई हजार सवार का मनसब दिया गया। इसी समय औरंगजेब ने अजीत सिंह को डेढ़ हजार जात और पाँच सौ सवार का मनसब दिया। अजीत सिंह को जीवन में प्रथम बार शाही मान्यता प्राप्त हुई थी।

अजीत सिंह और दुर्गादास में कुछ ही दिन बाद मनमुटाव हो गया, और दुर्गादास अप्रसन्न होकर सन् 1705 ई0 में पुनः बादशाह की सेवा में चला गया। औरंगजेब ने उसे अक्तूबर के महीने में तीन हजार जात दो हजार सवार का मनसब देकर पहले की तरह गुजरात में नियुक्त करने की आज्ञा दी। उधर अजीत सिंह ने धीरे–धीरे पर्याप्त शक्ति अर्जित कर ली थी। वह सराचन्द में ही था कि उसे बादशाह औरंगजेब की मृत्यु का समाचार मिला। इस घटना से अजीत सिंह के जीवन का एक अध्याय समाप्त हुआ और एक नए अध्याय का सूत्रपात हुआ।

औरंगजेब द्वारा जजिया लगाया जाना भी सदैव से ही विवाद का विषय रहा है, विशेषकर मारवाड़ के संदर्भ में यह समझना आवश्यक है कि औरंगजेब 1658 में बादशाह बना और जजिया 1669 में लगाया गया था। उन परिस्थितियों का विस्तार से अध्ययन किया गया है जिसमें शासन के 20–21 वर्ष पश्चात् यह कर लगाया गया और साथ ही यह भी जानना आवश्यक होगा कि किन परिस्थितियों में औरंगजेब द्वारा ही जजिया का उन्मूलन किया गया था। यह भी जानने का प्रयास किया गया है कि क्या वास्तव में जसवन्त सिंह की मृत्यु और मारवाड़ में जजिया (1979) लगाए जाने का कोई सम्बन्ध था ?

शोध साहित्य सर्वेक्षण (Review of Literature) –

प्रस्तुत साहित्य सर्वेक्षण का उद्देश्य औरंगजेब का मारवाड़ के साथ संबंध के विश्लेषण में शोध अन्तराल की खोज करनी है, जिसके मद्देनजर प्रस्तुत विषय शोध हेतु प्रस्तावित है। संबंधित विषय पर अनेक शोध साहित्य उपलब्ध है जिनमें शोध विषय से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त होती है। कुछ महत्वपूर्ण पुस्तकें जो मेरे ज्ञान के संवर्धन एवं परिमार्जन में सहायक रही निम्नलिखित हैं–

संगीता चंदोला की पुस्तक **"औरंगजेब का राजपूतों से सम्बन्ध"** में औरंगजेब का राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों के साथ सम्बन्धों की चर्चा की गई है, जिसमें मारवाड़, मेवाड़, आमेर, बीकानेर, बूँदी और कोटा के साथ सम्बन्धों का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इस पुस्तक के प्रथम अध्याय **"ऐतिहासिक पृष्ठभूमि"** में भारत तथा भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना एवं प्रसार के साथ–साथ मुगल साम्राज्य के महत्व को भी समझाने का प्रयास किया गया है। इस पुस्तक के दूसरे अध्याय **"मारवाड़ की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि"** में मध्यकालीन मारवाड़ की राजनीतिक स्थिति का परीक्षण किया गया है, जिसमें औरंगजेब के साथ–साथ उसके काल से पूर्व मारवाड़ की राजनीतिक स्थिति का वर्णन किय गया है। चूँकि पुस्तक का शीर्षक औरंगजेब से सम्बन्धित है। अतः औरंगजेब का मारवाड़ के जसवन्त सिंह एवं अजीत सिंह के साथ सम्बन्धों का विस्तार से वर्णन किया गया है।

V.S. Bhargav की पुस्तक **"Marwar and The Mughal Emperors"** में मुस्लिम आक्रमण के समय मारवाड़ की स्थिति तथा मारवाड़ के राजपूतों एवं मुगल सम्राटों के साथ राजनीतिक सम्बन्धों का वर्णन किया गया है। **"महाराजा जसवन्त सिंह I एण्ड दी मुगल एम्पायर"** नामक अध्याय में मुगल दरबार में जसवन्त सिंह की राजनैतिक स्थिति तथा शाहजहाँ और औरंगजेब के साथ राजनैतिक सम्बन्धों की विवेचना की गई है। **"राठौर वार ऑफ इन्डिपेन्डेन्स"** में जसवन्त सिंह की मृत्यु के बाद औरंगजेब का मारवाड़ पर अधिकार करने के प्रयत्नें एवं मारवाड़ के पति औरंगजेब की नीतियों का वर्णन किया गया है। इस पुस्तक के अध्ययन के पश्चात् ऐसा प्रतीत होता है कि यह पुस्तक राजपूतों को दृष्टिगत रखते हुए लिखी गई है।

निर्मलचन्द्र राय की पुस्तक **"महाराजा जसवन्त सिंह का जीवन व समय"** में जसवन्त सिंह के जन्म से लेकर मृत्यु तक उनके जीवन का वर्णन किया गया है। शाहजहाँ एवं औरंगजेब से सम्बन्धों की विवेचना की गई है। इस पुस्तक के प्रथम अध्याय **"विषय प्रवेश"** में राजस्थान की भौगोलिक एवं राजनीतिक स्थिति के साथ ही जसवन्त सिंह के पूर्व तक मारवाड़ की राजनैतिक स्थित का वर्णन किया गया है। **"जसवन्त सिंह और उत्तराधिकार का युद्ध"** नामक अध्याय में शाही सेना और औरंगजेब के बीच हुए संघर्ष की चर्चा की गई है। इसमें जसवन्त सिंह द्वारा औरंगजेब से किए गए विश्वासघात की भी चर्चा की गई है। **"जसवन्त सिंह गुजराज एवं दक्षिण में (सन् 1659–1671 ई0)"** में नामक अध्याय में

औरंगजेब द्वारा जसवन्त सिंह को सौंपी गई सूबेदारी का वर्णन किया गया है। **"जसवन्त सिंह के अन्तिम वर्ष (सन् 1671–1678ई0)"** नामक अध्याय में जसवन्त सिंह का अन्तिम समय, मृत्यु , चरित्र एवं व्यक्तित्व का मूल्यांकन किया गया है, जिससे जसवन्त सिंह के चरित्र के विषय में सही जानकारी उपलब्ध होने की संभावना प्रतीत होती है।

मीरा मित्रा की पुस्तक **"महाराजा अजीत सिंह एवं उनका युग"** में अजीत सिंह के जन्म से लेकर मृत्यु तक उनके जीवन वृत्त का वर्णन किया गया है तथा तत्कालीन मारवाड़ का भी चित्र प्रस्तुत किया गया है। इस पुस्तक के प्रथम अध्याय **"विषय प्रवेश"** में अजीत सिंह के जन्म के समय राजस्थान की भौगोलिक एवं राजनैतिक स्थिति की चर्चा की गई है। **"जसवन्त सिंह की मृत्यु : अजीत सिंह का जन्म : औरंगजेब की प्रतिक्रिया (सन् 1678 ई0 से सन् 1979 ई0)"** नामक अध्याय में जसवन्त सिंह की मृत्यु के पश्चात् मारवाड के प्रति राठौरों की राजनीतिक मंशा तथा उस मंशा के प्रति औरंगजेब की नीतियों की चर्चा की गई है। अध्याय **"राठौड़–मुगल संघर्ष (सन् 1679 ई0, सन् 1687 ई0)"** में मारवाड़ में चल रहे राठौड़ों की आन्तरिक राजनीतक एवं इस आन्तरिक राजनीतिक के परिणाम स्वरूप मारवाड़ के प्रति औरंगजेब की नीतियों का वर्णन किया गया है। **"अजीत सिंह के प्रारम्भिक वर्ष (सन् 1679 ई0, सन् 1707 ई0)"** नामक अध्याय में औरंगजेब एवं अजीत सिंह द्वारा मारवाड़ में शान्ति बनाए रखने के लिए किए जा रहे प्रयासों का वर्णन किया गया है।

विश्वेश्वरनाथ रेऊ की पुस्तक **"माड़वाड़ का इतिहास भाग – 1"** के प्रथम भाग में प्राचीन काल से लेकर उत्तर मुगल काल तक मारवाड़ की राजनैतिक स्थिति के वर्णन के साथ ही राजपूतों के शौर्य और वीरता को बरकार रखने का भरसक प्रयत्न किया गया है। **"राजा जसवन्त सिंह (प्रथम)"** नामक अध्याय में जसवन्त सिंह के प्रताप और वीरता का वर्णन करते हुए औरंगजेब को हिन्दू विरोधी शासक दिखाने का प्रयास किया गया है। अध्याय **"महाराजा अजीत सिंह जी"** में जसवन्त सिंह की मृत्यु के बाद औरंगजेब का मारवाड़ पर अधिकार करने के प्रयत्नों एवं मारवाड़ के प्रति औरंगजेब की नीतियों का वर्णन किया गया है। इस पुस्तक के अध्ययन के पश्चात् ऐसा प्रतीत होता है कि यह पुस्तक राजपूतों को दृष्टिगत रखते हुए लिखी गयी।

एस0एल0 नागोरी ने अपनी पुस्तक **"राजस्थान के इतिहास के स्रोत"** में राजस्थान के इतिहास को जानने के प्राथमिक तथा द्वितीयक स्रोतों का विस्तार से वर्णन किया है जिससे अपने शोध कार्य से संबंधित स्रोतों का ज्ञान प्राप्त हो सका और वे जिससे लेखन का सुगम हो सका। इस पुस्तक में राजस्थान के पुरातत्व सम्बन्धी सामग्री, राज प्रशस्ति महाकाव्य, पुरालेख सम्बन्धी सामग्री, ऐतिहासिक साहित्य राजस्थान के आधुनिक इतिहासकार एवं सम सामयिक इतिहासकारों के प्रकाशित पत्र, पत्रिकाएं एवं जर्नल्स आदि का वर्णन किय गया है जिससे समसामयिक राजस्थान की स्थिति इन स्रोतों के माध्यम से जान सकते है।

डॉ0 मौलवी शुखाउद्दीन खाँ नक्शबन्दी ने अपनी पुस्तक **"औरंगजेब**

आलमगरी की कठिनाइयाँ एवं नीतियाँ" नामक पुस्तक में औरंगजेब के समकालीन मूल अभिलेखों, जो उसके दरबार से निकले है, जो भारत वर्ष के सुप्रसिद्ध 'राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। इसके साथ ही औरंगजेब की नीतियों पर इन स्रोतों के माध्यम से विस्तार से वर्णन किया गया है। इस पुस्तक के **'औरंगजेब की धार्मिक नीति'** नामक अध्याय में औरंगजेब की धार्मिक नीति या धर्म के प्रति उसके विचारों को नए ढंग से प्रस्तुत किया गया है जिसमें धर्म परिवर्तन, पूजा स्थलों की समस्या, जजिया आदि की चर्चा नए शोधों के आधार पर की गयी है। अन्य अध्याय **"औरंगजेब आलमगीर की राजपूत नीति"** नाम अध्याय में मुगलवंश के शासकों की राजपूत नीति के साथ ही औरंगजेब के समय की राजपूतों की स्थिति का वर्णन, राजपूतों का कार्यो एवं उनके प्रति औरंगजेब की नीतियों का वर्णन किया गया है। इसी क्रम में इस अध्याय में जसवन्त सिंह और अजीत सिंह से औरंगजेब के संबंधों का वर्णन किया गया है।

महामहोपाध्याय रायबहादुर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा द्वारा लिखित पुस्तक **'जोधपुर राज्य का इतिहास'** नामक पुस्तक दो भागों में प्रकाशित है। प्रथम भाग में राजस्थान की भौगोलिक स्थिति की व्याख्या के साथ ही मारवाड़ के प्राचीन शासकों से लेकर जसवन्त सिंह के समय तक कई घटनाओं का वर्णन किया गया है। जिसमें जसवन्त सिंह तक सभी मुगल बादशाहों से संबंधों तथा शासकों की स्थिति का वर्णन किया गया है। इसी पुस्तक के द्वितीय भाग में अजीत सिंह के समय की घटनाओं की चर्चा की गयी है जिसमें अजीत सिंह के जन्म के समय मारवाड़ की स्थिति, दुर्गादास राठौड़ के साथ ही

राठौड़ों की आन्तरिक राजनीति तथा औरंगजेब की नीति का कर भी वर्णन किया है जो प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने की दृष्टि से उपयोगी सिद्ध होगा।

रघुबीर सिंह द्वारा लिखित पुस्तक **'दुर्गादास राठौर'** में दुर्गादास के जीवन की चर्चा की गयी है। महाराजा जसवंत सिंह के साथ दुर्गादा के संबंधों के साथ मुगल–मारवाड़ संघर्ष तथा आखिरी फेज तक दुर्गादास राठौड़ की भूमिका का विस्तार से वर्णन किया गया है। इस पुस्तक के माध्यम से दुर्गादास राठौड़ के साथ ही मुगल मारवाड़ संबंधों पर भी जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

M. Athar Ali द्वारा लिखित पुस्तक **"The Mughal Nobility Under Auranzeb"** में मुगल काल में अमीर वर्ग की स्थित के साथ ही औरंगजेब के काल में भी अमीर वर्ग की स्थिति तथा राजनीति का वर्णन इस पुस्तक में किया गया है। जिससे दरबारी षड़यंत्र तथा उनके प्रति औरंगजेब की नीति का वर्णन किया गया है।

Sri Ram Sharma की पुस्तक **"The Religious Policy of the Mughal Emperors"** में लेखक ने बाबर से लेकर औरंगजेब तक मुगलवंश की धार्मिक नीति की चर्चा की गयी है। इस पुस्तक के माध्यम से औरंगजेब की धार्मिक नीति एवं उसके कारणों तथा वास्तविकता को सही ढंग से जाना जा सकता है। जिसका अध्ययन मुगल–मारवाड़ संबंधों को जानने में सहायक सिंह हो सकता है।

डॉ0 श्यामसिंह रत्नावत द्वारा लिखित **"औरंगजेब तथा उत्तर मुगलकालीन दस्तावेज"** इस ग्रंथ में राजस्थान के परिप्रेक्ष्य में रियासतकालीन मुखियाओं और मुगलों के बीच अंतः संबंधों के साथ ही भरतपुर और मथुरा क्षेत्र के जाटों के त्याग की घटनाओं तथा मारवाड़ रियासत को मुक्त कराने के लिए वीर दुर्गादास राठौड़ के प्रयासों आदि का वर्णन है। इसी क्रम में इस पुस्तक के अध्याय **"औरंगजेब तथाउत्तर मुगलकालीन दस्तावेज का मूलपाठ"** नामक अध्याय में औरंगजेब के काल में लिखित कई ऐसे पत्रों का वर्णन है जिससे हम उस समय की छोटी–बड़ी राजनीतिक गतिविधियों की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। जिसमें शाही परवाना, वकील रिर्पोट, इन्तखाबे सवाने खुफिया, अर्जदाश्त, खत, Old Historical record office Jaipur Gov. की प्रति, परवाना और स्याह बकाया आदि प्रकार के महत्वपूर्ण प्रपत्रों का उल्लेख किया गया है। इसी पुस्तक के Annexure–अ में "List of Aurangzeb's Period Documents in State Archives" में प्रपत्रों का Nature of Paper, Year & Brief Contents के साथ जिक्र किया गया है, जिससे औरंगजेब के समय की घटनाओं की जानकारी को प्राप्त किया जा सकता है।

डॉ0 ओम प्रसाद प्रकाश द्वारा लिखित इस पुस्तक **"औरंगजेब एक नई दृष्टि"** में औरंगजेब के इतिहास पर चर्चा की गई है। इस पुस्तक में औरंगजेब के पारम्परिक व्यक्तित्व को नए खोजों के आधार धूमिल कर औरंगजेब और उसके कार्यो का पुर्नमूल्यांकन किया गया है। इस पुस्तक के **"औरंगजेब और उसकी दृष्टि"** नामक अध्याय में औरंगजेब के कार्यो

को नई खोजों के आधार पर तर्कसंगत तरीके से व्याख्यायित किया गया है। इसी क्रम में अध्याय **"केन्द्र विरोध"** में राजपूत नीति की चर्चा की गई है तथा राजपूताना में औरंगजेब द्वारा किए गए कार्यो का तर्कसंगत कारण सहित व्याख्या की गई है तथा साथ ही साथ मुगलकाल के मनसबदारों की संख्या को भी बताया गया है। इसी पुस्तक के माध्यम से औरंगजेब के वास्तविक व्यक्तित्व तथा इतिहास को पुनः व्याख्यायित किया जा सकता है।

डॉ0 श्याम सिंह रतनावत द्वारा लिखित इस पुस्तक **"मध्यकालीन राजपूत इतिहास सम्बन्धी अध्ययन"** में मध्यकालीन राजस्थान के इतिहास व रियासतों में प्रशासन संबंधी लेख है जो मुख्य रूप से समकालीन कागजात के आधार पर लिखे गए हैं। इन लेखों की सामग्री मध्यकालीन राजपूत इतिहास प्रमुखतः आम्बेर– जयपुर राज्य के इतिहास के बहुत से ऐसे तथ्यों को उजागर करती है जिनपर अभी तक ध्यान नहीं दिया गया था। इस पुस्तक के **"आम्बेर एवं जोधपुर रियासतों के उन्नायक : (ठाकुर हरीसिंह लांबा व राठौड़ वीर दुर्गादास)"** नामक अध्याय में दुर्गादास के जीवन का वर्णन किया गया है। महाराजा जसवन्त सिंह और अजीत सिंह के समय में जोधपुर राज्य के लिए दुर्गादास द्वारा किए गए कार्यो का वर्णन किया। इस अध्याय के माध्यम से हम दुर्गादास के साथ ही उस वक्त जोधपुर में घटित घटनाओं की भी जानकारी प्राप्त कर सकते है जो हमारे शोध कार्य के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

इरफान हबीब द्वारा संपादित पुस्तक **"मध्यकालीन भारत"** में विभिन्न इतिहासकारों द्वारा मध्यकाल के विभिन्न मुद्दों पर चर्चा की गई है। उसी क्रम में अध्याय **'1679 के राठौर विद्रोह के कारण'** में यह बताया गया है कि जसवन्त सिंह की मृत्यु के बाद मारवाड़ में किस प्रकार की परिस्थितियाँ निर्मित हुई तथा उन परिस्थितियों के कारण औरंगजेब की नीतियों का वर्णन किया गया है। इस अध्याय के माध्यम से हमें तत्कालीन राठौड़ों की आन्तरिक राजनीति को जानने में मदद मिल सकती है। अन्य अध्याय **'राजस्थानी स्त्रोतों में चित्रित मारवाड़ युद्ध (1678–79)'** के माध्यम से राजस्थानी प्राथमिक स्त्रोत **'हुकूमत–दी–बही'**, **'अजीतोदय'**, **'जसवंत सिंह–री–वार्ता'** तथा **'अजीत सिंह–री–ख्यात'** में उल्लिखित मारवाड़ युद्ध का वर्णन किया गया है। इन अध्यायों के अध्ययन के पश्चात् मारवाड़ की आन्तरिक राजनीति एवं परिस्थितियों को समझने में सुविधा होगी।

सतीश चन्द्र द्वारा लिखित पुस्तक में **"मध्यकालीन भारतीय इतिहास"** में विभिन्न विषयों पर चर्चा की गई है। इन विषयों पर लिखे गए लेखों के माध्यम से मध्यकालीन भारत को दर्शाने का प्रयास किया गया है। इस पुस्तक के अध्याय **"Religious Policy of Aurangzeb During the later Part of his reign-Some Conditions"** में औरंगजेब के कार्यो के माध्यम से उसकी धार्मिक नीति समझाने का प्रयास किया गया है। अगले अध्याय अगले अध्याय **'Mughal Relations with the Rajputs States of rajasthan : The Foundations '** में बाबर के अकबर तक राजपूत राज्यों के साथ समबन्धों की चर्चा की गई है तथा

अध्याय **'Mughal-Rajput Relitions During the Seventeenth Century- Problems of a class Alliance.'** में जहाँगीर और शाहजहाँ के साथ ही औरंगजेब की राजस्थान की राजपूत राज्यों की परिस्थितियों एवं उनके साथ सम्बन्धामें की चर्चा की गई है। इस अध्याय के माध्यम से मारवाड़ की स्थिति का आकंलन किया जा सकता है।

R.P. Tripathi की पुस्तक **"Rise and Fall of the Mughal Empire"** में बाबर सेलेकर उत्तराधिकार के युद्ध तक का इतिहास वर्णित है जिसमें भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना के साथ ही हुमायूँ, शेरशाह, अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ के काल की घटनाओं का वर्णन किया गया है। अन्तिम अध्याय **'The War of Succession'** में शाहजहाँ के काल में ही उसके चारों पुत्रों की बीच सत्ता को लेकर जो संघर्ष हो रहा था तथा संघर्ष की परिस्थितियों एवं उस विजयी औरंगजेब की नीतियों का जिसके कारण वह यह तथाकथित उत्ताधिकार का युद्ध में सफल हो सका, विस्तृत वर्णन किया गया है। इस अध्याय से हम यह जानने का प्रयास कर सकते है कि औरंगजेब ने ही युद्ध में सफलता प्राप्त क्यों की ?

सर जदुनाथ सरकार द्वारा लिखित पुस्तक **"History of Aurangzeb"** पाँच भागों में उपलब्ध है। यह किताब Orient Longman Limited द्वारा 1928 में प्रकाशित है। इस पुस्तक के III Vol. के Chapter-36 में Invasion of Rajputana (1679-1680) तथा Chapter 37 में The Rebellion of Prince Akbar and the End of Rajput war

(1681-1709) तथा Vol-I & II के Apendix III[rd] में उत्तराधिकार का युद्ध No. 12-No. 25 तक दिया गया है।

उद्देश्य (Objective of Study) :

यद्यपि मुगल–मारवाड़ संबंध को लेकर उपरोक्त कार्य हो चुके है लेकिन उक्त लिखित कार्यो में औरंगजेब का मारवाड़ से संबंधों का अध्ययन एवं मारवाड़ की आन्तरिक समस्याओं का उल्लेख विस्तार से नहीं हुआ है। अतः मुगल–मारवाड़ संबंधों को पुनः नए विचारों के आलोक में अध्ययन होना चाहिए जो प्रस्तुत शोध कार्य का उद्देश्य है–

- दो पक्षों के संबंधों का आधार समानता का होता है। मुगल और राजपूतों के संबंधों की समानता का अध्ययन।
- उत्तराधिकार के युद्ध की वास्तविकता का अध्ययन।
- औरंगजेब की प्रति जसवन्त सिंह के कार्य और व्यवहार का अध्ययन।
- जसवन्त सिंह को कभी भी जोधपुर 'वतन जागीर' में नहीं दिया गया। इस तथ्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन।
- जसवन्त सिंह की मृत्यु एवं मारवाड़ में जजिया लगाए जाने के संबंध का अध्ययन।
- मारवाड़ की गद्दी के लिए तथा उत्तराधिकार की समस्या को लेकर

मारवाड़ की आन्तरिक राजनीति का अध्ययन।

परिकल्पना (Hypothesis) :

मुगल साम्राज्य से राजपूत नींव की ईंट की तरह थे। ईंटों को निकालना मुगल साम्राज्य के महल को ढ़हाने के लिए न्योता देना था जितनी तेंजी से इन राजपूतों की नींव से बेदखल किया गया उतनी ही तेजी से मुगल साम्राज्य साम्राज्य पतन की ओर पढ़ा। औरंगजेब का राजपूतों के साथ संबंध की अस्थिरता मुगल साम्राज्य के महल की नींव को कमजोर करने के लिए बाध्य कर रही थी। औरंगजेब और मारवाड़ का जो संबंध रहा वह स्वयं औरंगजेब द्वारा तय नहीं किया जा रहा था बल्कि यह संबंध स्वयं ही मारवाड़ की परिस्थितियों एवं समस्याओं के अनुसार निर्देशित हो रहा था।

अध्ययन क्षेत्र तथा काल (Universe and Period of Study)

प्रस्तुत शोध का अध्ययन क्षेत्र औरंगजेब कालीन भारत विशेषकर राजपुताना का मारवाड़ राज्य का क्षेत्र सम्मिलित है। इस शोध का काल 1526 ई0 से 1707 ई0 तक है।

शोध का महत्व (Significance of Study)

ऐसा माना जाता है कि इतिहास तथ्यों तथा साक्ष्यों पर आधारित होता है। इन्हीं तथ्यों तथा साक्ष्यों पर आधारित भारतीय इतिहास लेखन में कुछ ऐसी त्रुटियाँ पाते है, जिससे इतिहास के कुछ चरित्रों में पर्याप्त

विरोधाभास एवं पक्षपात दिखाई पड़ता है। मुगलिया सल्तनल के बादशाह औरंगजेब के साथ अंग्रेजकालीन विदेशी विद्वानों ने कुछ ऐसा ही रवैया अपनाते हुए उसके महत्वपूर्ण कार्यों को नजरअंदाज करते हुए इतिहास की पुस्तकों में इस तरह स्थान दिया कि बादशाह औरंगजेब क्रूर तथा कठोर मुसलमान के रूप में पहचाने जाने लगे जबकि औरंगजेब के काल में न तो अशोक के समान कत्लेआम हुआ और दुश्मन बंदी बनाए गए, न ही धर्म प्रचार के लिए राजकोष, प्रशासनाधिकारी और परिवार के सदस्यों का उपयोग किया गया। फिर भी कुछ विदेशी विद्वानों ने अपने इतिहास लेखन के माध्यम से बादशाह औरंगजेब को भारतीय इतिहास का विलेन अवश्य बना दिया।

शोध विधि (Methodology)

प्रस्तुत शोध सम्बन्धी तथ्य प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के स्रोतों से प्राप्त किए गए हैं। ऐतिहासिक विधि को आधार बनाकर प्राप्त तथ्यों पर विश्लेषणात्मक, तुलनात्मक एवं वैज्ञानिक पद्धतियों का प्रयोग किया गया है। सामान्यतः निगमनात्मक विधि की कसौटी पर कसते हुए औरंगजेब का मारवाड़ के शासकों के साथ संबंध का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

विषयानुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

भूमिका

भूमिका

मध्य एशियाई राजनीति में युद्ध और नीति का सफलता पूर्वक परचम लहराने के बाद और मुगलिया सल्तनत के साम्राज्य विस्तार के लिए बाबर को हिन्दुस्तान की तरफ रुख करना पड़ा। हिन्दुस्तान के सीमावर्ती इलाको में कब्जा जमाने वाले बाबर से हिन्दुस्तान के सुल्तान इब्राहिम लोदी की कड़ी टक्कर थी। इब्राहिम लोदी को अपने दरबार के विश्वासघातियों से बड़ा खतरा था। दौलत खाँ लोदी पंजाब में बहुत दिनों से गवर्नर था और स्थानीय जनता पर उसका बहुत प्रभाव था। इब्राहिम लोदी दौलत खाँ लोदी की महत्वाकांक्षाओं से परिचित था। सुल्तान ने दौलत खाँ लोदी को दिल्ली दरबार में पेश होने का हुक्म दिया, लेकिन वह स्वयं उपस्थित न होकर अपने पुत्र दिलावर खाँ को सुल्तान के पास भेजा। सुल्तान ने उसे कड़ी हिदायत दी कि यदि उसके पिता ने सल्तनत के साथ विश्वासघात किया तो इसका परिणाम बहुत बुरा हो जाएगा। दिलावर खाँ भयभीत होकर सुल्तान की मंशा अपने पिता से बयां की। दौलत खाँ समझ गया था कि अन्य पुराने अमीरों की तरह इब्राहिम लोदी उसे भी कुचल देना चाहता है। पंजाब में हितो की सुरक्षा करने के लिए उसने काबुल से बाबर को बुलाकर अपने शत्रु को सदैव के लिए समाप्त करने का इरादा किया।[1] इसके पहले बाबर अनकों बार हिन्दुस्तान के उत्तरी–पश्चिमी सीमावर्ती

प्रदेशों पर आक्रमण कर चुका था तथा सियाल कोट तक आगे बढ़ चुका था। अन्य शब्दों में वह हिन्दुस्तान की आन्तरिक दशा से भली–भाँति परिचित था।[2] इब्राहिम लोदी को अपने सीमावर्ती प्रदेशों को बचाने की चुनौती थी और बाबर को हिन्दुस्तान में प्रवेश करने के लिए प्रवेश द्वार तोड़ने का निमंत्रण। जब बाबर लाहौर पहुँचा तो दुर्ग पर अधिकार करने के बाद लाहौर शहर को जला डाला। चार दिन लाहौर के निकट ठहरने के बाद वह दिपालपुर रवाना हुआ। 22 जनवरी 1524 को उसने दिपालपुर के दुर्ग पर आक्रमण किया और दुर्ग के लोगों को मौत के घाट उतार दिया।[3] अब तक दौलत खाँ लोदी समेत बाबर की सहायता करने वाले सभी दिल्ली सल्तनत के विश्वासघातियों को ये आभास हो चुका था कि बाबर हिन्दुस्तान को जीतकर वापस लौटने वाला नहीं है। हिन्दुस्तान के सुल्तान इब्राहिम लोदी के शत्रु बाबर को लगातार आगे बढ़ने को प्रोत्साहन देते रहे और यह सबके लिए खतरनाक था। छोटे–छोटे युद्धों को जीतते हुए बाबर पानीपत की ओर आगे बढ़ रहा था और 29 जमादी–उल–आखिर 932 हिजरी (12 अप्रैल 1526 ई0) को पानीपत के मैदान में पहुँचा। डॉ0 के0 एस0 लाल ने ठीक ही कहा है कि पानीपत में बाबर द्वारा की गयी व्यवस्था बचाव करने की बहुत अच्छी तरकीब थी। साथ ही यदि सुल्तान इब्राहिम उस व्यवस्था के बीच में होकर आगे बढ़ने की कोशिश करता तो वहीं उसको फाँसने के लिए जाल बन सकता था।[4]

तुलगुमा रणपद्धति का प्रयोग कर बाबर ने इब्राहिम को पानीपत के युद्ध में परास्त कर दिया। इस युद्ध की भयावहता का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि बदायूँनी ने लिखा है कि जब वह 1588 ई0 में पानीपत के मैदान से गुजर रहा था तो बड़ी भयानक आवाजें उसके कानों में आयी और जो लोग उसके साथ थे तो उन्होंने समझा कि किसी शत्रु ने उन पर आक्रमण कर दिया है।[5] 62 साल बाद भी पानीपत के जंग का शोर बदायूँनी को सुनाई देना कोई अतिशयोक्ति नहीं है। भले ही इस युद्ध के साथ प्रथम अफगान साम्राज्य का अंत हो गया और मुगल साम्राज्य की स्थापना हो गयी लेकिन मध्ययुग के इतिहास का एक नया अध्याय प्रारम्भ हुआ। जिस मुगल साम्राज्य की स्थापना हुई उसकी प्रकृति, वैभव, सांस्कृतिक योगदान, उसके राजनीतिक सिद्धान्तों और उसकी सीमाओं की तुलना हम उस युग के किसी भी साम्राज्य से कर सकते है। इससे पूर्व और पश्चात् कभी भी ऐसे साम्राज्य की स्थापना नहीं हुई।[6] भले ही बाबर ने हिन्दुस्तान के योद्धा को फतह कर लिया हो लेकिन अभी उसका पाला हिन्दुस्तान की योद्धा जाति राजपूतों से खुलकर नहीं पड़ा था। इब्राहिम लोदी की हार के बाद दूसरी बड़ी शक्ति महाराणा संग्राम सिंह थे। इधर राणा ने भी राजनीतिक चाल चलकर मेवात के शक्तिशाली अफगान सरदार हसन खाँ मेवाती को अपनी तरफ मिलाकर राजपूत–अफगान संघ का निर्माण किया। दोनों ओर की राजनैतिक गतिविधियों को देखकर ऐसा

प्रतीत हो रहा था कि शीघ्र ही बाबर की महत्वाकांक्षाओं की टक्कर राणा की महत्वाकांक्षाओं से होगी। 17 मार्च 1527 ई0 को खानवा के युद्ध में अप्रत्याशित राजपूतों की हार हुई और राणा संग्राम सिंह की पराजय के उपरान्त अगले 200 वर्षों तक राजपूत शासक राजपूत संघ का निर्माण न कर सकें। खानवा के युद्ध के पश्चात् बाबर के लिए मैदान में कोई शक्तिशाली शासक न रह गया जो कि उसे उसकी उपलब्धियों से वंचित कर सकता था। बाबर का भटकाव समाप्त हो चुका था। हिन्दुस्तान ही उसके राजनीतिक जीवन का मुख्य केन्द्र बन गया और इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि पानीपत के युद्ध का कार्य खानवा के युद्ध ने पूर्ण किया।

महान राजपूत शासक राणा संग्राम सिंह की पराजय ने न सिर्फ राजपूतों को सत्ता से बेदखल किया बल्कि उनके मन में स्थायी रुप से मुगलों के प्रति दुश्मनी के भाव भर दिए और यही पृष्ठभूमि लम्बे समय तक मुगल राजपूत संबंधो में उतार–चढ़ाव तय करती रही। राजस्थान की प्रशासकीय और भौगोलिक परिस्थिति को मुगल प्रशासन का अंग बनाना इतना आसान नहीं था। एक तरफ राजस्थान के सीने पर हार के घाव लगे थे और दूसरी तरफ एक ऐसी संस्कृति से पाला पड़ा था जो उनके मूल धार्मिक भावनाओं के विरूद्ध था। राजपूतों से शत्रुता और असहयोग किसी भी वंश की सत्ता की नींव हिलाने के लिए पर्याप्त था। दिल्ली सल्तनत के स्थायित्व की गारंटी राजस्थान के इतिहास में हो रहे हलचलों पर आधारित थी। राजस्थान का राजपूत संघ भले ही बिखर चुका हो और

बाबर ने उसकी शक्ति को चकनाचूर कर दिया हो लेकिन राजपूतों के स्वाभिमान में कोई कमी नहीं आयी। राजपूतों का स्वाभिमान उन्हें किसी के आगे न झुकने लिए बाध्य कर रहा था और राजपूत लड़ने–मरने को तैयार थे। राजपूतों की बलिदानी प्रवृति किसी भी सत्ता में भय का कारण उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त थी। राजस्थान के इतिहास में राजपूत राज्य अलग–अलग भौगोलिक और राजनीतिक सीमाओं में बंधे थे। विदेशी आक्रमणकारियों से निबटने के लिए उनके पास कोई संयुक्त रण प्रणाली का खाका नहीं था। यही वजह थी कि बाबर के बाद हूमायूँ से लेकर औरंगजेब तक सभी शासकों ने राजस्थान की परिस्थितियों को नजर अंदाज नहीं किया। यहाँ तक कि औरंगजेब जैसे शासक को भी अपनी नीतियों में बदलाव राजस्थान की राजनीति में हो रहे उतार–चढ़ाव के आधार पर तय करने पड़े।

<u>मुगल काल में राजपूताना के राज्यों का विवरण:–</u>

सर्वप्रथम इतिहासकार कर्नल जेम्स टॉड ने इस भूखण्ड को **'राजस्थान' 'रायथान', 'राजपूताना'**, अथवा **'रजवाड़ा'** नाम से उल्लेखित किया है।[7] भारतवर्ष में $23^{0}3''$ से $30^{0}12''$ उत्तरी अक्षांश और $69^{0}30''$ से $78^{0}17''$ पूर्वी देशांतर[8] के बीच स्थित यह प्रदेश लम्बे समय से ही राजपूतों द्वारा शासित होता रहा है। मुगल शासन से पूर्व यह क्षेत्र कभी भी एक व्यवस्थित क्षेत्र के नाम से नहीं जाना गया। सर्वप्रथम बादशाह अकबर ने ही इस क्षेत्र में प्रान्तीय शासन का संगठन करते हुए इस क्षेत्र को **'अजमेर**

सूबा' नाम दिया।[9] इस संगठन से पूर्व इस क्षेत्र में अनेक छोटे–बड़े राज्य थे जिनपर विभिन्न राजपूत वंशो का अधिकार था। कालान्तर में अंग्रेजों ने सम्पूर्ण प्रदेश में राजपूतों का आधिपत्य देखकर इसे **'राजपूताना'** नाम दिया। धीरे–धीरे यही नाम इस प्रदेश के लिए प्रचलित हो गया।[10] भौगोलिक दृष्टि से इस क्षेत्र को दो भागों में बाँटने का कार्य अरावली पर्वत श्रेणी करती है जो उत्तर–पूर्व से दक्षिण–पश्चिम तक इस क्षेत्र को दो भागों में बाँटती है। इन दोनों भागों की भौगोलिक अवस्था में काफी अन्तर है।[11] अरावली पर्वत श्रेणी के पश्चिमी भाग में रेतीली भूमि थी और चूँकि इस क्षेत्र में वर्षा कम होती थी इसलिए यह प्रदेश अधिक उपजाऊ नहीं है। जबकि अरावली के पूर्व का प्रदेश अधिक उपजाऊ न होने के कारण केवल खरीफ की ही एक फसल होती है और खरीफ व रबी की फसलों में गेहूँ, जौ, चना, मक्का, जुवार, बाजरा, मोठ, मूंग, उड़द और चावल के साथ ही सरसों और असली तिलहन मुख्य है। लोहा, चाँदी, अभ्रक, ताम्बा, जस्ता एवं सीसे की खानें होने की वजह से यह क्षेत्र आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न है जबकि पश्चिमी भाग में केवल कोयला एवं संगमरमर की ही खानें है। जलवायु की दृष्टि से भी सामान्यतः राजस्थान की जलवायु को आरोग्यप्रद माना गया है।[12]

राजस्थान के पश्चिमी भाग में बीकानेर, जोधपुर (मारवाड़), जैसलमेर, सिरोही एवं जालौर के राज्य तथा शेखावटी का पश्चिमी प्रदेश स्थित है तथा पूर्वी भाग में आमेर (जयपुर), अलवर, भरतपुर, धोलपुर, करौली, कोटा,

बूँदी, टौंक, किशनगढ़ मेवाड़, डूंगरपुर, बाँसवाड़ा एवं प्रतापगढ़ के राज्य तथा अजमेर–मेरवाड़ा के प्रदेश स्थित है।[13]

बीकानेरः– राजस्थान के राज्यों में मेवाड़ राज्य के पश्चात् बीकानेर राज्य दूसरे स्थान पर महत्वपूर्ण है। राठौड़ वंशी यह राज्य मारवाड़ की ही एक शाखा हैं। जोधपुर के राव जोधा के छोटे बेटे बीका ने अपने पिता से आज्ञा प्राप्त कर नए स्थानों पर अधिकार करने के उद्देश्य से अपने साथियों संग जांगलू प्रदेश[14] की ओर कूच किया। जोधपुर से रवाना होते समय बीका ने स्वाभिमान के साथ प्रतिज्ञा की, कि मरूभूमि के जिन राज्यों पर मैं आक्रमण करूँगा, उनको या तो मैं परास्त करुँगा या वहीं मारा जाऊँगा।[15] भाटियों तथा अन्य जातियों से युद्ध जीतकर बीका ने वहाँ पर बीकानेर शहर बसाया और उसे अपनी राजधानी बनाया। मुगल साम्राज्य की स्थापना के समय राव जैतसी बीकानेर की गद्दी पर बैठा। भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना के पश्चात् बाबर के पुत्र कामरान ने बीकानेर पर अधिकार करने के उद्देश्य से बीकानेर पर आक्रमण किया परन्तु कामरान का आक्रमण सफल न हो सका तथा राव जैतसी का अधिकार यथावत् बना रहा।

कुछ समय पश्चात् जोधपुर के मालदेव ने बीकानेर पर अधिकार करने हेतु चढ़ाई की। जैतसी को परास्त कर बीकानेर पर अपना अधिकार कर लिया। जैतसी की मृत्यु के पश्चात् जैतसी के ज्येष्ठ पुत्र कल्याण सिंह

ने अपने छोटे भाई भीमराज को शेरशाह सूरी के पास सहायता प्राप्त करने के लिए भेजा। शेरशाह ने मालदेव पर आक्रमण कर उसे हराकर जोधपुर पर अधिकार कर लिया तथा राव कल्याण सिंह को टीका लगाकर बीकानेर भेज दिया।[16]

बादशाह अकबर के समय में राव कल्याण सिंह से मैत्रीपूर्ण संबन्ध थे जिसके विषय में अबुल फजल लिखता है कि राव कल्याण सिंह ने अपने भाई कान्हा की पुत्री के साथ अकबर का विवाह किया। लेकिन फरिश्ता ने लिखा है कि राव कल्याण सिंह ने अपनी पुत्री की शादी अकबर से की थी। अकबर ने राव कल्याणमल को दो हजारी जात और दो हजारी सवार का मनसब प्रदान किया।[17] अकबर के प्रधानमंत्री बैरमखाँ को जब मक्का जाने का आदेश दिया गया तो वह रास्ते में बीकानेर में भी रूका था जहाँ राव कल्याणमल और उसके पुत्र कुँवर रायसिंह ने उसे शरण प्रदान की तथा आतिथ्य सत्कार किया।[18] राव कल्याण सिंह के पश्चात् उनका पुत्र राय सिंह बीकानेर की गद्दी पर बैठा। राय सिंह के विषय में अबुल फजल लिखता है कि इनका बाप पहले से ही इताअत कबूल कर चुका था और यह भी उसके साथ हाजिर हुए थे, कुछ दिन के बाद जब पंजाब की तरफ पठानों ने सिर उठाया तब उन पर बादशाह ने आमेर के कुँवर मानसिंह और राव रायसिंह को भेजा। इन्होंने फसादियों को सजा देकर बादशाह को खुश किया। बादशाह अकबर ने राव रायसिंह को राजा का

खिताब और चार हजारी जात व मनसब दिया।[19] अकबर के गुजरात अभियान पर भी रायसिंह साथ में था और अहमदाबाद के शासक मिर्जा मुहम्मद हुसैन को परास्त कर अहमदाबाद पर अधिकार कर लिया। अकबर ने भी रायसिंह से सम्बन्ध को स्थायी व सुदृढ़ बनाये रखने के लिए उसने अपने लड़के शाहजादा सलीम का विवाह रायसिंह की लड़की से कर दिया।[20] बाद में बादशाह अकबर ने रायसिंह को दक्षिण भेजा और जूनागढ़ का प्रदेश भी दिया। परन्तु इसी समय अकबर और रायसिंह में मतभेद उत्पन्न हो गया, जिसके कारण अकबर ने भटनेर रायसिंह से छीनकर उसके पुत्र दलपतसिंह को दे दिया।[21]

बादशाह जहाँगीर से भी रायसिंह का सम्बन्ध बहुत अच्छा न रहा तथा रायसिंह के पुत्र दलपतसिंह के राज्यारोहण के विषय में जहाँगीर लिखता है कि 'दलीप दक्षिण से हाजिर हुआ उसका बाप रायसिंह मर गया था। इसलिए मैनें उसको राव का खिताब देकर खिलअत पहनवाया। रायसिंह का एक दूसरा बेटा सूरजसिंह भी था जिसकी माँ के साथ ज्यादा मुहब्बत होने के सबत बड़े दलीप के एवज वह उसका गद्दीनशीन होना चाहता था। जिस वक्त कि रायसिंह की मौत का हाल मेरे सामने बयान किया जाता था, सूरजसिंह कम अकली और कम उम्री से अर्ज करने लगा कि बाप ने मुझको वलीअहद बनाकर टीका दिया है। यह बात मुझको

पसन्द न आयी और फर्माया कि अगर बाप ने तुझको टीका दिया है तो हम दलीप को सर्वलन्द करके देते हैं। मैनें अपने हाथ से टीका लगाकर उसके बाप की जागीर वगैरह इनायत की। दलपतसिंह के बाद सूरजसिंह गद्दी पर बैठा। बादशाह ने उसका पाँच सौ जात व दो सौ सवार का मनसब बढ़ा दिया। जब शाहजादा खुर्रम और परवेज में युद्ध हो रहा था तब सूरजसिंह शाही सेना में शामिल था। इसके बाद सूरसिंह का मनसब बढ़ाकर चार हजारी जात व तीन हजारी सवार कर दिया गया। बादशाहनामा में लिखा है कि हिज्री 1041 ता0 5 रबी–उल–अव्वल (वि0 1688 अश्विन शुक्र 7 ई0 1631 ता0 3 अक्टूबर) को अर्ज हुआ कि राव सूर की जिन्दगी के दिन पूरे हुए इसलिए उसके बेटे कर्ण को दो हजारी जात, डेढ़ हजार सवार का मनसब और राव का खिताब इनायत करके उसका वतन बीकानेर जागीर में बहाल रखा।

राव सूर के दूसरे बेटे शत्रुशाल को पाँच सौ जात और दो सौ सवार के मनसब पर इज्जत बख्शी।[22] राव कर्णसिंह ने लम्बे समय तक दक्षिण में मुगलों की सेवा की थी। जिससे प्रसन्न होकर शाहजहाँ ने उसे तीन हजार जात व दो हजार सवार का मनसब प्रदान किया। शाहजादे औरंगजेब की सिफारिश पर ही शाहजहाँ द्वारा जसोल बन्दर राव कर्णसिंह को दिया गया। शाहजहाँ के समय में हुए उत्तराधिकार के युद्ध के समय राव

कर्णसिंह दक्षिण में मुगल सेना में तैनात था।

राव कर्ण सिंह औरंगजेब की व्यक्तिगत योग्यता और नेतृत्व से भली–भाँति परिचित था अतः उसने अपने दोनो पुत्रों पद्मसिंह और केसरी सिंह को औरंगजेब की सहायता के लिए भेजना उचित समझा। औरंगजेब के बादशाह बनने के पश्चात् कर्णसिंह ने अधीनता स्वीकार नहीं की और औरंगजेब से आज्ञा लिए बिना ही दक्षिण से बीकानेर चला गया। इस घटना के बाद आमेर के राजा जयसिंह ने कर्णसिंह को लिखा कि 'अगर बादशाह उससे संघर्ष करेगा तो वह उसकी कोई सहायता नहीं करेगा और उसका अधिक समय तक मित्र नहीं रहेगा।[23] इसके पश्चात् कर्णसिंह शाही दरबार में उपस्थित हो कर मुगल सेवा स्वीकार की तथा औरंगजेब ने उसे तीन हजार जात और दो हजार सवार का मनसब प्रदान कर दक्षिण में नियुक्त किया। दक्षिण में नियुक्ति के पश्चात् कर्णसिंह धीरे–धीरे विद्रोही प्रवृति को बढ़ावा दे रहा था और उसकी अनुशासनहीनता एवं विद्रोहात्मक प्रवृति के मद्देनजर औरंगजेब ने कर्णसिंह के पुत्र अनूपसिंह को बीकानेर का राज्य सुपुर्द कर दिया। अनूप सिंह के शासन में मुगलों से उसके सम्बन्ध मित्रता पूर्ण बने रहें। मुगलों के साम्राज्य में शान्ति स्थापित करने में अनूपसिंह ने अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान दिया जिसके कारण मुगल दरबार में उनका सम्मान व प्रतिष्ठा बढ़ती ही गयी।[24] उसने दिलेर खाँ के

साथ दक्षिण के युद्धो में वीरता पूर्वक भाग लिया।[25] अनूपसिंह की वीरतापूर्वक सेवा से प्रसन्न होकर बादशाह ने उसका मनसब बढ़ाकर तीन हजारी कर दिया। इन सेवाओं के उपलक्ष्य में अनूप सिंह को माही मरातिव का सम्मान भी मिला था।[26] मारवाड़ के शासक जसवन्त सिंह की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र अजीतसिंह के अधिकार का अनूपसिंह ने समर्थन किया था, जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि जसवन्त सिंह तथा अनूपसिंह के पारस्परिक सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण रहे होंगे।[27]

मेवाड़ :– राजस्थान की ऐतिहासिक परम्पराओं तथा समकालीन राजस्थान की राजनीतिक गतिविधियों के संचालन में मुख्य रूप से मेवाड़ राज्य सबसे ऊपर था। श्यामल दास कवि के अनुसार– मेवाड़ का राज्य जो हिन्दुस्तान में सबसे अव्वल दर्जे का गिना जाता है राजपूताना के दक्षिण विभाग में वाके है, यह उत्तर अक्षांश 25 अंश 58 से 23 अंश 49.12 तक और पूर्व देशान्तर 75 अंश 51.30 से 73 अंश 7 तक फैला हुआ है। इसकी लम्बाई उत्तर से दक्षिण को 147.60 मील और चौड़ाई पूर्व से पश्चिम 163.04 मील है और कुल विस्तार 12929.9 मील मुरब्बा है।[28] मेवाड़ राज्य के सन्दर्भ में टॉड ने लिखा है कि 'राणा यहाँ के राजाओं की पदवी है और उनका वंश सूर्य वंश की बड़ी शाखा है। छत्तीस राजवंशो में इस वंश का सबसे श्रेष्ठ स्थान है और उसकी पवित्रता एवं निर्मलता में कभी किसी को

कुछ कहने का साहस नहीं हो सकता।[29] बाबर के भारत आगमन के समय मेवाड़ पर राणा सांगा का राज्य था तथा 1526 ई0 में इब्राहिम लोदी को पानीपत के मैदान में परास्त कर फरगाना के शासक बाबर ने भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना की। जब बाबर ने भारत पर आक्रमण किया था हिन्दुस्तान में सांगा सर्वाधिक बलवान शासक था और उसने वर्तमान उच्च्य महत्व अपनी वीरता और तलवार से प्राप्त किया था। भारत आगमन के सन्दर्भ में बाबर लिखता है कि 'जब मैं काबूल में था तब मेरे पास राणा सांगा का एलची आया था, जिसके साथ यह करार पाया था कि बादशाह तो उधर से दिल्ली की तरफ चढ़े और हम इधर से आगरे की तरफ चढ़ाई करें लेकिन मैने इब्राहिम लोदी को फतह करके दिल्ली और आगरे पर कब्जा कर लिया तो भी वह न आया।[31] 1527 ई0 में राणा सांगा के साथ खानवा के मैदान में युद्ध हुआ जिसमें बाबर विजयी हुआ। राणा सांगा के पश्चात् मेवाड़ की गद्दी पर क्रमशः रत्नसिंह, विक्रमादित्य, उदयसिंह तथा राणा प्रताप बैठे। अकबर के काल में मानसिंह ने उदयपुर आकर 1573 ई0 में महाराणा प्रताप को अकबर की अधीनता स्वीकार करने को कहा जिसे राणा ने अस्वीकार कर दिया। फलतः 1576 ई0 को हल्दी घाटी के मैदान में राणा प्रताप और मुगल सेना के मध्य भयंकर युद्ध हुआ। इस युद्ध में मुगलों की जीत हुई। 1597 ई0 को महाराणा प्रताप का चांवड गाँव में

निधन हो गया और अमरसिंह महाराणा बना।[32] जहाँगीर के बादशाह बनने के पश्चात् उसने अपने पुत्र परवेज को अमरसिंह पर चढ़ाई करने के लिए भेजा क्योंकि उसने अकबर के समय से ही कई मुगल थानों पर अधिकार कर लिया था। महाराणा अमर सिंह को शाही फौज से सत्रह लड़ाईयाँ लड़ी लेकिन अमर सिंह को शाही सेना के विरूद्ध पूर्ण सफलता न मिल सकी और अमर सिंह की मृत्यु के बाद कर्ण सिंह महाराणा बना। कर्णसिंह के बाद जगत सिंह राणा बना तथा पाँच हजारी जात व पाँच हजारी सवार का मनसब प्राप्त था। 1652 ई0 में राज सिंह के महाराणा बनने पर मुगल दरबार से इन्हें पाँच हजारी जात तथा पाँच हजारी सवार का मनसब प्राप्त हुआ।

उत्तराधिकार के युद्ध में मेवाड़ के महाराणा राजसिंह की सहानुभूति औरंगजेब के प्रति थी परन्तु उसने कोई सक्रिय सहयोग नहीं दिया।[33] जसवन्त सिंह की मृत्यु के पश्चात् मारवाड़ में चल रहे संघर्ष में मेवाड़ के राणा ने मारवाड़ की सहायता की थी और मुगलों के विरूद्ध मेवाड़ मारवाड़ का संयुक्त मोर्चा स्थापित हो गया।[34] अतः ऐसी स्थिति में तत्कालीन परिस्थितियों से वशीभूत होकर औरंगजेब को मेवाड़ के प्रति दमन की नीति अपनानी पड़ी और मुगल मेवाड़ संघर्ष आरम्भ हो गया। 1680 ई0 में राजसिंह की मृत्यु के पश्चात् जयसिंह महाराणा बना। जयसिंह के

प्रारम्भिक वर्षों में भी मुगल मेवाड़ संघर्ष जारी रहा। अकबर के विद्रोह के समय भी जयसिंह ने अकबर को सहयोग देने का आश्वासन दिया था परन्तु इस विद्रोह ने औरंगजेब ने अपनी कूटनीति से असफल कर दिया। 1690 ई0 की संधि के पश्चात् से 1698 तक मुगल मेवाड़ सम्बन्ध मित्रतापूर्ण बने रहें और महाराणा जयसिंह की मृत्यु तक औरंगजेब का मेवाड़ से कोई युद्ध नहीं हुआ 1707 तक अमरसिंह व औरंगजेब के सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण ही बने रहें। इस प्रकार 1697 से सन् 1707 तक जब औरंगजेब की मृत्यु हुई मेवाड़ मुगल सम्बन्धों में कोई बिगाड़ व वैमनस्य नहीं हुआ व दोनों के मध्य सम्बन्ध सौहार्दपूर्ण बने रहें।[35]

आमेर :– मारवाड़ के पूर्व में स्थित कछवाहों राजपूत द्वारा शासित विशाल एवं विस्तृत क्षेत्र आमेर राज्य आधुनिक समय में जयपुर के नाम से जाना जाता है। जयपुर के महाराजा कछवाहा वंश के राजपूत जो अपने को अयोध्या के राजा राम के वंशज होने का दावा करते है। कहा जाता है कि इस राज्य की स्थापना 1128 में ग्वालियर के दूल्हाराय ने की थी।[36] बाबर और राणा के मध्य हो रहें युद्ध के समय चन्द्रसेन का पुत्र पृथ्वीराज आमेर की गद्दी संभाल रहा था। इस समय पृथ्वीराज ने राणा सांगा की सहायता करना उचित समझा और युद्ध क्षेत्र में राणा सांगा के घायल और मूर्च्छित हो जाने पर अन्य राजाओं के साथ मिलकर उसे रण भूमि से बाहर

निकालने का कार्य किया। पृथ्वीराज की मृत्यु के बाद भारमल आमेर का राजा बना। ऐसा प्रतीत होता है कि भारमल पहले ही मुगल सत्ता के महत्व को समझ चुका था और मुगल सत्ता से किसी भी प्रकार से पंगा लेने को तैयार नहीं था। तभी तो उसने सबसे पहले मुगल अधीनता स्वीकार की और मेवात के सूबेदार के विरूद्ध बादशाह अकबर से सहायता माँगी।

जब अकबर शेख मुइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह पर जा रहा था तभी रास्ते में भारमल ने बादशाह से भेंट की और अपनी पुत्री का विवाह अकबर से करने हेतु प्रस्ताव पेश किया। अकबर ने भी बड़ी ही विनम्रता पूर्वक इस प्रस्ताव को स्वीकार किया तथा अजमेर से लौटते हुए सांभर नामक स्थान पर 1562 ई0 में यह विवाह सम्पन्न हुआ।[37] इस विवाह के विषय में डॉ0 बेनी प्रसाद ने लिखा कि यह भारत की राजनीति में नवयुग का प्रतीक था, इसने देश को महान सम्राटों की श्रृंखला प्रदान की, इसने मुगल सम्राटों की चार पीढ़ियों को मध्यकाल के कुछ महानतम सेनानायक एवं कूटनीतिज्ञों की सेवायें प्रदान की। महाराजा ने बादशाह को बहुत अच्छा दहेज दिया व उसका वैवाहिक जीवन बड़ा ही सुखमय व महिमामय रहा। इस प्रकार जयपुर राज्य मेवाड़ की अधीनता से हटकर मुगल राज्य के अधीन हो गया।[38] भारमल के बाद उसका पुत्र भगवानदास आमेर पर

गद्दीनशीन हुआ और उसे मुगल दरबार से पाँच हजार का मनसब मिला था। राजा भगवानदास अकबर से इतना प्रभावित हुआ कि उसने शाहजादा सलीम के साथ जो बाद में जहाँगीर के नाम से प्रसिद्ध हुआ अपनी पुत्री का विवाह किया।[39] भगवानदास के बाद उसका पुत्र मानसिंह ने मुगल सेवा करना स्वीकार किया। अकबर के पश्चात् जहाँगीर के समय में भी मानसिंह की सेवा में कोई कमी नहीं हुई तथा उसे अब्दुर्रहीम खानखाना के साथ दक्षिण में नियुक्त किया गया। 1614 ई0 में दक्षिण में ही राजा मानसिंह भी मृत्यु हो गयी। मानसिंह के समय से आमेर मुगल साम्राज्य के अर्धस्वतन्त्र राज्यों में सबसे प्रसिद्ध व समृद्ध राज्य बन गया।[40] मानसिंह के बाद महासिंह आमेर का राजा बना परन्तु उसने अत्यधिक मदिरा पान कर अपना जीवन सर्वनाश कर लिया था। जहाँगीर ने भी महासिंह के विषय में लिखा है कि इसका बाप (जगत सिंह) भी इसी बत्तीस वर्ष की उम्र में ज्यादा शराब पीने के कारण मरा था।[41] 1621 ई0 को महासिंह के बेटे जयसिंह ने आमेर की गद्दी संभाला। शाहजहाँ के काल में जयसिंह को छः हजारी जात व पाँच हजारी सवार का मनसब दिया गया था। पश्चिम में कन्धार से लेकर उधर पूरब की ओर मुंगेर और उत्तर में आकसू नदी के किनारे से दक्षिण में बीजापुर तक सब स्थानों में मुगल फौज सहित मिर्जा राजा जयसिंह ने युद्ध किए और सभी जगह वीरता का प्रदर्शन कर इन्होनें

नाम कमाया।[42]

उत्तराधिकार के युद्ध के समय जयसिंह शाही सेना में शामिल था। दारा शिकोह के शाही सेना में शामिल होकर जयसिंह ने शुजा की फौज पर आक्रमण कर बनारस के निकट बहादुरपुर नामक स्थान पर परास्त कर दिया। इस सफलता पर दारा ने मिर्जा राजा जयसिंह को एक पत्र में लिखा है कि आपने वह काम कर दिखाया है जो राजा मानसिंह भी नहीं कर सकता था। गत सौ वर्षो में ऐसी विजय को आप ही के लिए सुरक्षित रखा गया था।[43] परन्तु धरमत के युद्ध में शाही सेना को करारी हार का सामना करना पड़ा तथा इस शाही सेना में जयसिंह का पुत्र रामसिंह और कीर्तिसिंह भी शामिल थे। ऐसा प्रतीत होता है कि इस युद्ध में हार होने के बाद जयसिंह को समझ आ गया था कि औरंगजेब ही भावी मुगल सम्राट है। अतः उसने दारा का साथ छोडकर औरंगजेब की सेवा करना स्वीकार किया तथा 1658 ई0 में मथुरा के पास औरंगजेब से मुलाकात कर औरंगजेब की शरण में चला गया। इसके पश्चात् औरंगजेब के आदेशानुसार जयसिंह ने जोधपुर के जसवन्त सिंह को भी औरंगजेब की सेवा स्वीकार करने के लिए प्रेरित किया। इसके लिए 7 जनवरी 1659 को औरंगजेब ने मिर्जा राजा जयसिंह को लिखा कि वह जोधपुर नरेश महाराजा जसवन्त सिंह से भेंट करें ताकि जसवन्त सिंह दारा को किसी

प्रकार की सहायता नहीं दे।[44] जयसिंह की सेवा से प्रसन्न होकर औरंगजेब ने उसे दक्षिण में शिवाजी के विरूद्ध भेजने का फैसला किया तथा जयसिंह ने शिवाजी के विरूद्ध आशातीत सफलता भी अर्जित की।

जयसिंह की कोशिशों एवं प्रयास से न सिर्फ शिवाजी से सन्धि संभव हो सकी बल्कि शिवाजी ने बीजापुर अभियान में मुगलों की सहायता करना भी स्वीकार किया। जयसिंह के बीजापुर के अभियान के सन्दर्भ में एलफिन्सटन ने लिखा है 'जय सिंह का उस मुल्क में अभियान सर्वप्रथम उसकी इच्छाओं के अनुकूल था, लेकिन जैसे ही राजधानी का घेरा डाला, उसके खिलाफ सुरक्षा की पुरानी योजना अपनाई गई। लूट के घोड़ों द्वारा उसकी सारी रसद सामग्री नष्ट कर दी गई। गोलकुण्ड का राजा भी गुप्त रूप से उसके पड़ोसी की सहायता कर रहा था और जयसिंह समझ गया था कि उसकी सफलता का कोई उपाय नहीं है। बिना किसी नुकसान और कठिनाई के वह औरंगाबाद लौट आया।[45]

जयसिंह के पश्चात् उसके पुत्र रामसिंह को दरबार मे बुलाकर उसे जड़ाऊ जमधर, मोतियों की कंठी, तलवार जड़ाऊ सहित अरबी घोड़ा सुनहरे सामान से सुसज्जित तथा चार हजार जात व सवार का मनसब प्रदान किया।[46] यद्यपि रामसिंह को शिवाजी को मुगल दरबार मे पेश करने का श्रेय प्राप्त था परन्तु शिवाजी के महल से भागने पर रामसिंह औरंगजेब

की सन्देहात्मक दृष्टि से नहीं बच सका। उसे दण्ड देने की नीयत से मनसब पद से च्यूत कर दिया और दरबार में उसका आना भी बंद कर दिया।[47] परन्तु रामसिंह ने अपनी सेवा से मृत्युपर्यन्त औरंगजेब को प्रसन्न एवं सन्तुष्ट रखने में सफल रहा। रामसिंह के बाद बिशनसिंह व जयसिंह द्वितीय ने भी अपनी सेवाओ से औरंगजेब को प्रसन्न करने में कोई कसर बाकी न रखा तथा साम्राज्य में शान्ति स्थापित करने में अपना योगदान दिया।

जैसलमेर :– मारवाड राज्य के उत्तर–पश्चिम में राजस्थान की पश्चिमी सीमा पर जैसलमेर राज्य था जिसपर भाटी वंशियो का शासन था। औरंगजेब के शासन काल में सन् 1649 ई0 से ही महारावल अमर सिंह राज्य कर रहा था। 1636 ई0 में अमर सिंह के पूर्वज महारावल मनोहरदास की पुत्री का विवाह जसवन्तसिंह के साथ हुआ था। महारावल मनोहर दास का उत्तराधिकारी भाटी रामचन्द्र के कार्यो एवं कुशासन से जनता में गहरा असन्तोष व्याप्त था। सरदारो के साथ–साथ जैसलमेर की जनता भी रामचन्द्र की उद्दण्डता से छुटकारा पाना चाहती थी। अतः उन्होंने मिलकर रामचन्द्र के चचेरे भाई सबलसिंह को निमंत्रण देना उचित समझा तथा सरदारों का निमंत्रण पाते ही सबलसिंह ने मारवाड़ के जसवन्त सिंह की सहायता से जैसलमेर राज्य पर अधिकार कर लिया। इस सहायता के

बदले में सबल सिंह ने पोकरण का प्रदेश, जो कि राव चन्द्रसेन के समय से जैसलमेर के भाटी शासकों के अधिकार मे था, जसवन्तसिंह को वापस कर दिया।[48] 1659 ई0 में सबलसिंह की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र अमर सिंह जैसलमेर की गद्दी पर बैठा। गद्दी पर बैठते ही उसने पुनः पोकरण को अपने अधिकार करने का प्रयत्न किया। तब जसवन्त सिंह ने राठौड़ सबल सिंह और मुँहणोत नैणसी के नेतृत्व में एक बड़ी सेना भेजकर अमरसिंह की सेना का पीछा किया और जसवन्त सिंह की सेना ने जैसलमेर राज्य में घुसकर लूटपाट करने लगी। ऐसी परिस्थिति में बीकानेर के राव कर्ण ने इन दोनों राज्यों के बीच समझौता कराकर शान्ति स्थापित करवायी। परन्तु अमरसिंह की महत्वाकांक्षा के फलस्वरूप जैसलमेर और बीकानेर राज्य की पूर्वी सीमा पर बीकानेर के कांधलोत जाति ने उपद्रव कर रखा था और अमरसिंह की आज्ञा पाकर बीकमपुर के अधिकारियों ने उन पर आक्रमण किया तो बीकानेर की पश्चिमी सीमा पर स्थित झज्झू नामक स्थान को लूट लिया। तब बीकानेर के शासक अनूपसिंह ने भी कांधलोतो को जैसलमेर पर आक्रमण करने का आदेश दिया। इस तरह से लम्बे समय तक बीकानेर और जैसलमेर राज्य में संघर्ष होता रहा। अमरसिंह ने पूगल तथा अपने राज्य के दक्षिणी भाग में स्थित कोटड़ा व बाड़मेर के बाड़मेरा राठौड़ पर भी अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। इस

प्रकार जैसलमेर राज्य की शक्ति इस समय तक काफी बढ़ गई थी।[49]

सिरोही :– मारवाड़ राज्य के दक्षिण में तथा राजपूताना के दक्षिण–पश्चिम में सिरोही नामक राज्य स्थित था। इस राज्य ने भी मुगल सहायकों की श्रेणी में अपना स्थान बना लिया था। सिरोही पर राव अखेराज के शासन काल में मेवाड़ के राणा जगतसिंह ने सिरोही राज्य को मेवाड़ राज्य में सम्मिलित करने का भरसक प्रयत्न किया परन्तु अखेराज की महत्वाकांक्षाओं के कारण सिरोही राज्य पर मेवाड़ राज्य की अधीनता संभव न हो सकी। मेवाड़ को छोड़कर राजपूताना के अन्य राज्यों के साथ अखेराज के अच्छे संबंध रहे।[50] 30 मार्च 1659 ई0 को अखैराज ने अपनी पुत्री कन्या आनन्द कुंवर का विवाह मारवाड़ के जसवन्त सिंह के साथ किया था जिससे सिरोही व मारवाड़ राज्य के संबंध मैत्री पूर्ण बने रहे। फिर भी गृह कलह एवं आन्तरिक विद्रोहों के कारण सिरोही राज्य विशेष उन्नति न कर सका।[51]

डूंगरपुर :– मेवाड़ के दक्षिण में स्थित डूंगरपुर राज्य पर पिछले इक्कीस वर्षो से रावलपूंजा गद्दी पर बैठ शासन सत्ता संभाल रहा था। इस समय डूंगरपुर राज्य शाहजहाँ के सहायक राज्यों मे से एक था तथा शाहजहाँ ने रावलपूंजा को अपने राज्यारोहण के समय एक हजार जात पाँच सौ सवार का मनसब प्रदान किया। इसके बाद वह शाही दरबार में ही रहा तथा

अहमदनगर राज्य पर आक्रमण करने के उद्देश्य से शाहजहाँ के साथ दक्षिण गया था। इसने अपनी सेवाओं से शाहजहाँ को प्रसन्न किया तथा शाहजहाँ ने भी 1630 ई0 में रावलपूंजा को पन्द्रह सौ जात, पन्द्रह सौ सवार का मनसब प्रदान किया। 1661 ई0 से डूंगरपुर राज्य पर महारावल जसवन्त सिंह शासन कर रहा था। 1658 ई0 में जब औरंगजेब की आज्ञानुसार राणा राज सिंह ने डूंगरपुर राज्य पर आक्रमण किया तो जसवन्त सिंह के पिता महारावल गिरिधर दास ने मेवाड़ राज्य से सहायता मांगी तथा साथ ही मेवाड़ की अधीनता भी स्वीकार कर ली। जबकि रावलपूंजा का मेवाड़ के साथ विरोध था।[52] पिता की मृत्यु के उपरान्त जसवन्त सिंह ने भी अपने पिता की ही नीति का अनुसरण किया और मेवाड़ से अच्छा सम्बन्ध रखा तथा साथ ही अन्य राज्यों से भी उसके मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रहे।[53]

देवलिया–प्रतापगढ़ :– डूंगरपुर से पूर्व की ओर देवलिया–प्रतापगढ़ का राज्य था। महारावल हरिसिंह ने 1633 ई0 में बादशाह शाहजहाँ से प्रतापगढ़ राज्य का अधिकार प्राप्त किया था। जब हरिसिंह को प्रतापगढ़ राज्य पर अधिकार प्राप्त हुआ तो उस समय राणा जगतसिंह की सेना वहाँ पर तैनात थी। लेकिन जब राणा को सूचना मिली की कि महारावल हरिसिंह शाहजहाँ से अधिकार प्राप्त कर प्रतापगढ़ राज्य की ओर शाही

सेना के सहयोग से बढ़ रहा है तो राणा ने चुपचाप उस क्षेत्र से अपनी सेना हटा ली लेकिन 1658 ई0 में औरंगजेब ने पुनः प्रतापगढ़ राज्य को मेवाड़ राज्य को सुपुर्द कर दिया। यद्यपि यह फैसला हरिसिंह के पक्ष में नहीं था और इस फैसले से हरिसिंह को कोई खुशी भी न थी परन्तु औरंगजेब के फैसले का विरोध करने का साहस हरिसिंह में न था। अतः इस फैसले को स्वीकार करने के अतिरिक्त हरिसिंह कुछ न कर सका। ऐसा प्रतीत होता है कि धीरे–धीरे हरिसिंह ने अपनी सेवाओं से प्रसन्न किया जिससे दो वर्ष बाद ही औरंगजेब ने गयासपुर और बसाड़ नामक दो परगने हरिसिंह को वापस दे दिए। क्षेत्रों के लेन–देन की वजह से ही शायद मेवाड़ और प्रतापगढ़ राज्य के सम्बन्ध सौहार्द्रपूर्ण न रह सके। 1673 ई0 में हरिसिंह की मृत्यु के पश्चात् उसके ज्येष्ठ पुत्र प्रताप सिंह ने प्रतापगढ़ की शासन सत्ता संभाली तथा शासन सत्ता संभालने के साथ ही मेवाड़ से प्रतापगढ़ राज्य का सम्बन्ध भी विरासत में प्राप्त हुआ। परन्तु जोधपुर, जयपुर व बीकानेर के शासकों से प्रताप सिंह ने सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्धों को बनाए रखा। प्रताप सिंह के समय में प्रतापगढ़ राज्य की शक्ति एवं समृद्धि में पर्याप्त वृद्धि हुई।[54]

बाँसवाड़ा :– राजस्थान के बिल्कुल दक्षिण में तथा प्रतापगढ़ राज्य के पश्चिम में स्थित बाँसवाडा राज्य पर 1615 ई0 से रावल समरसी ने शासन सत्ता संभाल रखी थी। बाँसवाड़ा राज्य भी मुगल साम्राज्य के सहयोगी

राजपूत राज्यों में स्थान रखता था। इसलिए शाहजहाँ ने अपने राज्यारोहण के समय रावल समरसी को एक हजार सवार के मनसब के साथ एक खिलअत भी प्रदान किया। प्रतापगढ़ राज्य की ही भाँति बाँसवाडा राज्य का मेवाड़ राज्य से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध न थे और अंततः बाँसवाड़ा राज्य ने मेवाड़ राज्य की अधीनता स्वीकार कर ली। लेकिन आन्तरिक दृष्टि से यह राज्य सम्पन्न था।[55] 1660 ई0 में महारावल कुशलसिंह बाँसवाड़ा राज्य का शासक बना। औरंगजेब से शाही आज्ञा प्राप्त कर जब राणा राजसिंह ने बाँसवाड़ा राज्य पर आक्रमण किया तो कुशल सिंह के पिता महारावल ने राजसिंह से सन्धि करना उचित समझा तथा राणा राजसिंह को 2 लाख रूपया, एक हाथी, एक हथिनी व दस गाँव देना स्वीकार किया था। लेकिन पिता की मृत्यु के बाद कुशल सिंह ने इस सन्धि को मानने से इन्कार कर दिया तथा मेवाड़ के प्रभुत्व को भी नहीं माना। 1674 ई0 में कुशल सिंह के विरूद्ध शाही सेना भेजी गयी जिसका सामना करने की क्षमता कुशल सिंह में नही थी तथा अंततः उसे मेवाड़ की अधीनता स्वीकार करनी ही पड़ी। इस घटनाक्रम के पश्चात् वह समय परिवर्तन का इन्तजार कर रहा था तथा उचित अवसर पाकर उसने धीरे–धीरे औरंगजेब को अपनी सेवाओं से प्रसन्न किया तथा 1679 ई0 तक उसने पुनः बाँसवाड़े राज्य पर अधिकार प्राप्त कर लिया। मेवाड़ राज्य से सदैव तनाव

पूर्ण स्थिति बने रहने के कारण इस राज्य की विशेष उन्नति न हो सकी।[56]

बूँदी :— आमेर राज्य के दक्षिण तथा मेवाड़ राज्य के पूर्व में स्थित बूँदी राज्य पर जहाँगीर के शासन काल मे राव रतन हाड़ा शासन कर रहा था जिसे जहाँगीर ने 'सरबुलन्द राय' तथा 'राव राजा' की उपाधि के साथ पाँच हजारी मनसब प्रदान कर सम्मानित किया था।[57]

जहाँगीर ने राव रतन हाड़ा को बुरहानपुर किले की किलेदारी सौंपी तथा दक्षिण में नियुक्त किया। शाहजादा खुर्रम के विद्रोह के समय वह दक्षिण में ही तैनात था तथा खुर्रम के बुरहानपुर किले पर अधिकार करने की मंशा को असफल कर दिया। शाहजहाँ ने रत्नसिंह के पोते राव शत्रुशाल को तीन हजारी जात व दो हजारी सवार का मनसब व राव का खिताब देकर बूँदी की गद्दी पर बैठाया तथा राव रतन सिंह के दूसरे बेटे माधवसिंह को ढ़ाई हजार जात व डेढ़ हजार सवार का मनसब देकर कोटा की जागीर प्रदान की। इस प्रकार शाहजहाँ के शासनकाल में बूँदी और कोटा, हाड़ौती के दो राज्य बन गए।[58] शत्रुशाल की मृत्यु के बाद उसका बेटा भाव सिंह 1658 ई0 में बूँदी का शासक बना। उत्तराधिकार युद्ध के समय शत्रुशाल दक्षिण में औरंगजेब का साथ छोड़कर शाहजहाँ की शरण में चला गया तथा इस युद्ध में दारा को सहयोग भी दिया। शत्रुशाल के इस व्यवहार के कारण औरंगजेब ने उसके पुत्र भावसिंह को बूँदी का

उत्तराधिकारी मानने से इन्कार कर दिया और शिवपुर के गौड़ शासक आत्माराम को बूँदी पर अधिकार करने हेतु शाही आदेश दिया लेकिन भावसिंह ने आत्माराम की मंशा को पूरा होने का मौका नहीं दिया और उसे भागने के लिए विवश किया। आत्माराम की असफलता की सूचना मिली तो औरंगजेब ने समय व्यर्थ किए बिना भावसिंह को बूँदी का शासक स्वीकार किया क्योंकि बूँदी राज्य के सरदारों ने भी आत्माराम को अपना शासक न मानते हुए उसका विरोध किया। भावसिंह ने भी मुगल सेवा स्वीकार कर मुअज्जम के साथ दक्षिण में कई युद्धों में हिस्सा लिया। भावसिंह की एक बहन कर्मावती का विवाह उसके पिता के जीवन काल में ही 1637 ई0 में मारवाड़ के जसवन्त सिंह के साथ हुआ था।[59] 1681 ई0 में भावसिंह की मृत्यु के बाद अनिरूद्ध सिंह ने बूँदी की शासन सत्ता संभाली तथा औरंगजेब ने खिलअत व हाथी टीके की रस्म के लिए भेजी थी। अनिरूद्ध सिंह हाड़ा ने दक्षिण में अनेक युद्धों में औरंगजेब की सेना के साथ सम्मिलित था और उसकी सेवा से प्रसन्न होकर औरंगजेब ने उसकी जागीर में वृद्धि भी की थी। अनिरुध सिंह के पश्चात् बुद्धि सिंह बूँदी का शासक बना। उसने भी मुगल साम्राज्य की सेवा की व दरबार में ख्याति प्राप्त की। इसके समय में औरंगजेब के साथ सम्बन्ध मित्रतापूर्ण बने रहें।[60]

मुगल काल के पूर्व इतिहास के पटल पर मारवाड़ :–

मुगल–काल में मारवाड़ अथवा जोधपुर राज्य राजपूताना के विस्तृत क्षेत्र में फैला था। आइने अकबरी के अनुसार सन् 1581 ई० में मारवाड़ राज्य 100 कोस लंबा और 60 कोस चौड़ा था तथा इसके अर्न्तगत अजमेर, जोधपुर, सिरोही, नागौर और बीकानेर की सरकारें थी।[61] जोधपुर राज्य राजपूताना के दक्षिण पश्चिम में $24^{0}37'$ और $27^{0}42'$ उत्तर अक्षांश तथा $70^{0}5'$ और $75^{0}22'$ पूर्व देशांतर के बीच फैला हुआ है। इसकी अधिक से लम्बाई 320 मील और चौड़ाई 170 मील है। इसका क्षेत्रफल 35016 वर्गमील है।[62] अन्य राज्यों काठियावाड़, गोहिलवाड़ आदि की तरह ही मारवाड़ का नाम है। 'वाड़' का अर्थ 'रक्षक' होता है। अतएव मारवाड़ का अर्थ 'रेगिस्तान से रक्षित देश' है।[63] संस्कृत शिलालेखो में 'मरू' 'मरूस्थल' 'मरूस्थली' 'मरूभेदिनी','मरूमंडल', 'माारव', 'मरूदेश', और 'मरूकांतार', मिलते है, जिसका अर्थ 'रेगिस्तान' या 'निर्जल देश' होता है।[64] भागवत[65] में इस क्षेत्र को 'मरूधानव' (Marudhanva) कहा गया है। डबोई अभिलेख (Dabhoi inscription)[66] (A.D.1254) में इसे 'मरू' कहा गया है। समय परिवर्तन के साथ ही अब यह क्षेत्र 'मारवाड़' नाम से जाना गया।[67] मारवाड़ राज्य के उत्तर–पश्चिम में जैसलमेर, पश्चिम में सिंध का घर और पारकर जिला, दक्षिण–पश्चिम में कच्छ का रण, दक्षिण मे पालनपुर और सिरोही, दक्षिण–पूर्व में उदयपुर, पूर्व में अजमेर–मेरवाड़ा तथा किशनगढ़ और उत्तर–पूर्व में जयपुर राज्य है।[68]

इस मारवाड़ राज्य में आरावली पर्वत की श्रेणियाँ सांभर–झील के पास से प्रारंम्भ होकर दक्षिण –पूर्व में उदयपुर और सिरोही राज्यों की सीमा तक जाती है। वहाँ की मुख्य नदी लूणी है, जो अजमेर के दक्षिण–पश्चिम की पहाड़ियों से निकलती है, जहाँ उसे सागरमती कहते है तथा दक्षिण–पश्चिम में बहती हुई कच्छ के रण में जा गिरती है। जलवायु के दृष्टि से यह राज्य स्वास्थ्यप्रद समझा जाता है।

अप्रैल, मई और जून महीने में 'लू' चलती है और आंधियाँ भी आती हैं तथा कहीं–कहीं गर्मी का तापमान 123^0 तक पहुँच जाता है और शीतकाल में सर्दी की अधिकता रहती है। जोधपुर राज्य में वर्षो का सलाना औसत 13 इंच के करीब है अतः लोग अपने मकानों में जल एकत्र करने के लिए घरों में टाँके बनवाते है। यहाँ पर खरीफ (सियालू) तथा रबी (उन्हालू) दोनों फसले होती है। झीलों से नमक निकालना इस राज्य का प्रमुख उद्योग है तथा पशुओं के व्यापार से भी कुछ आय हो जाती है।[69]

मारवाड़ राज्य की पहचान उस राज्य के किले से है। जिसकी नींव राव जोधा ने श्रावणादि वि0सं0 1515 (चैत्रादि 1516) ज्येष्ठ सुदि 11 (ई0 स0 1459 ता0 13मई) को जोधपुर के किले की नींव डाली। चिडिया–तंक नामक पहाड़ी पर जोधपुर का किला बसाया गया तथा पहाड़ी की तलहटी में जोधपुर नगर बसाया गया और यही जोधपुर नगर ही मारवाड़ राज्य की राजधानी बना।

राजपूत लोगों में यह विश्वास है कि यदि किले की नींव में कोई जीवित आदमी गाड़ा जाय तो वह किला उसके बनवाने वाले के वंशधरों के हाथ से कदापि नहीं निकलता। इसलिए इस किले की नींव में राजिया नामक भांभी (बलाई) जिंदा ही गाड़ा गया। जहाँ वह गाड़ा गया था उसके ऊपर खजाना तथा नक्कारखाने की इमारतें बनी हुई है। भांभी के सहर्ष किए हुए इस आत्मत्याग और स्वामिभक्ति के बदले में राज्य की ओर से उसके वंशजों को भूमि दी गई जो अब भी उनके अधिकार में है और वह 'राज बाग' के नाम से प्रसिद्ध है। इस अपूर्व त्याग के कारण राज्य आदि की ओर से प्रकाशित होने वाली कई पुस्तकों में राजिया के नाम का उल्लेख श्रद्धा के साथ किया गया है।[70]

इस किले के चारों ओर सुदृढ़ दिवार है, जो 20 फुट से लेकर 120 फुट तक ऊँची और 12 से 70 फुट तक चौड़ी है। इस किले की अधिक से अधिक लम्बाई 500 गज और चौड़ाई 250 गज है तथा इस किले के दो प्रधान प्रवेश द्वार है– लोहापोल और जयपोल।[71]

मारवाड़ राज्य की उत्पत्ति के सन्दर्भ में बाल्मीकीय रामायण में लिखा है कि लंका पर चढ़ाई करने की इच्छा से जब श्री राम समुद्र किनारे पहुँचे तो मार्ग पाने की इच्छा से प्रार्थना प्रारम्भ की। परन्तु मार्ग न मिलने की वजह से क्रुद्ध होकर समुद्र जल सूखा देने के लिए

आग्नेयशास्त्र का अनुसंधान किया तो समुद्र ने उस अस्त्र को द्रुमकुल्य–नामक उत्तरी भाग पर चलाने की प्रार्थना की। अतः वहाँ का जल सूख गया और वहाँ पर मरूदेश की उत्पति हुई।[72] मारवाड़ के पश्चिमी प्रदेश में अर्धपाषाणकाल में परिवर्तित शंख, सीप आदि के मिलने से वहाँ पर समुद्र का होना सिद्ध होता है। महाभारत काल के समय के पूर्व ही मारवाड़ का गुजरात की तरफ का दक्षिणी भाग आबाद होने लगा होगा।[73]

प्राचीन काल में मौर्य वंश के चन्द्र गुप्त मौर्य के साम्राज्य में मारवाड़ भी शामिल हो गया था तथा जयपुर के वैराट गाँव से प्राप्त अशोक के एक स्तम्भ लेख से ज्ञात होता है कि मारवाड़ मौर्य–साम्राज्य का हिस्सा रहा होगा। कुषाण वंश और क्षत्रप वंश के अधिकार क्षेत्र में मारवाड़ का क्षेत्र शामिल था तथा गुप्त वंश में चन्द्रगुप्त से लेकर भानुगुप्त तक इस क्षेत्र पर गुप्तवंशियों का शासन रहा था क्योंकि गुप्त वंश के सिक्के मारवाड़ राज्य से प्राप्त हुए है। हूण वंश के तोरमाण के साथ ही गुर्जर वंश के समय में मारवाड़ पर इनका अधिकार हो गया था। गुर्जरों के बाद मारवाड़ के दक्षिणी भाग पर चावड़ो का अधिकार था परन्तु समय परिवर्तन के साथ ही कन्नौज के हर्षवर्धन ने चावड़ो पर अधिकार कर लिया था। हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद मारवाड़ पर रघुवंशी प्रतिहारों का शासन हो गया। परमार

वंश के बाद मारवाड़ सोलंकियो के अधिकार क्षेत्र में रहा।

मारवाड़ राज्य का इतिहास कान्यकुब्ज अथवा कन्नौज के इतिहास के साथ ही प्रारम्भ होता है। जिसपर कामध्वज वंश का शासन स्थापित था। मोहम्मद गोरी द्वारा पृथ्वीराज चौहान की करारी हार के बाद कन्नौज के राजा जयचन्द्र को भी मोहम्मद गोरी से परास्त होना पड़ा। 1193 ई0 में जयचन्द की मृत्यु के पश्चात् कन्नौज राज्य का पतन आरम्भ हो गया। कन्नौज के पतन के बाद कन्नौज के अधिकार क्षेत्र में शामिल लगभग 36 क्षेत्रों के राजाओ ने स्वयं को कन्नौज के अधिकार से मुक्त कर स्वतन्त्र व्यवहार करने लगे तथा समय परिवर्तन के साथ इन राजाओं ने राठौड़ो की अधीनता स्वीकार करना अधिक उचित समझा तथा कन्नौज की अधीनता से स्वयं को पूर्णतः मुक्त कर लिया। कन्नौज के पतन के बाद नयन पाल के वंशजो ने मरूप्रदेश में जाकर अपना अस्तित्व कायम किया।[74]

राठौड़ नयनपाल ने कन्नौज में अपना राज्य स्थापित किया। परन्तु गोरी द्वारा कन्नौज राज्य छीन लेने के 18 वर्ष बाद जयचन्द के पोते सीहा और सेतराम अपनी जन्म भूमि का परित्याग कर 200 साथियों के साथ पश्चिमी रेगिस्तान की ओर, ख्यातों के अनुसार द्वारिका की यात्रा करने के लिए परन्तु वास्तव में कोइ नया ठिकाना कायम् करने की गरज से, रवाना

हुए। राव सीहा सर्वप्रथम बीकानेर से 20 मील पश्चिम कुलुमद के सोलंकी सरदार के यहाँ गया, जिसने उसका बड़ा आदर किया। उसके बदले में उसने लाखा फुलाणी से युद्ध करने में उक्त सरदार की सहायता की, जिसमें लाखा की पराजय हुई। सोलंकी सरदार ने इसके एवज में अपनी बहन उसको व्याह दी। वहाँ से लौटते हुए अण्हिलवाड़ा पाटण में उसका अच्छा स्वागत हुआ। वहाँ फिर लाखा फुलाणी से सामना होने पर उसने उसे अकेले मारा। अनन्तर उसने मेवा (महेवा) के डामियों तथा खेड़धर (खेड़) के गोहिलों पर विजय प्राप्तकर खेड़ में अपनी राजधानी स्थापित की उसके तीन पुत्र अश्वथामा, सोनिंग और अज हुए।[75]

जिस समय राव सीहा ने गुहिल राजपूतों पर आक्रमण किया था उसी समय सिन्ध की तरफ से आगे बढ़ती हुई तुर्क सेना ने मारवाड़ क्षेत्र पर आक्रमण किया। राव सीहा ने बड़ी बहादुरी से इस सेना का सामना किया। परन्तु थकी हुई अल्पसंख्यक राठौड़ सेना मुसलमानों की बहु–संख्यक ताजादम फौज के सामने अधिक समय तक न ठहर सकी। इससे मैदान मुसलमानों के हाथ रहा और वीरवर सीहाजी इसी युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए।[76]

राव सीहा की मृत्यु के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र अश्वथामा (आसथान जी) उसका उत्तराधिकारी हुआ। कुछ समय जन–धन से अपनी स्थिति सुदृढ़ कर लेने के बाद अश्वथामा ने डोभी के राजपूतों से मैत्री संबंध

स्थापित किए तथा उनसे सहयोग प्राप्त कर गुहिल के क्षत्रियों से खेड़ का राज्य छीन लिया। इस सफलता के बाद उसने ईडर के राजा सामलिया खोड को मारकर वहाँ पर भी अधिकार कर लिया तथा ईडर का क्षेत्र अपने छोटे भाई सोनग को दे दिया। ईडर के क्षेत्र पर सोनग का अधिकार होने के बाद सोनग के वंशज ईडरिया राठौड़ कहे जाने लगे। अश्वथामा के तीसरे भाई अज ने ओखामंडल के शासक चावड़ा भोजराज को मारकर वहाँ पर अपना अधिकार स्थापित किया। राव अश्वथामा की मृत्यु के बाद उसका बड़ा पुत्र रावधूहड़ ने शासन सत्ता संभाली और अपनी कार्य कुशलता से अपने पैतृक राज्य में 140 गाँवो पर अधिकार कर क्षेत्र में वृद्धि किया। जिन पड़िहारों को हराकर राव धूहड़ ने मंडोर पर अधिकार किया था, उन्ही पड़िहारों से युद्ध करते समय राव धूहड़ की मृत्यु हो गयी। राव धूहड़ के बाद राव रायपाल गद्दी पर बैठा जो अपने पिता का सबसे बड़ा पुत्र था। राव रायपाल ने बाड़मेर की तरफ के पँवारो को परास्तकर उनके अधिकृत क्षेत्रों को अपने राज्य में मिला लिया। राव रायपाल की मृत्यु के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र राव मनपाल उत्तराधिकारी हुआ। उस समय महेवे का सारा प्रान्त इनके अधिकार में होने से इनके राज्य की और जैसलमेर राज्य की सीमाएँ मिली हुई थी।[77] राव कनपाल की मृत्यु के बाद उसका द्वितीय पुत्र जालणसी गद्दी पर बैठा क्योंकि उसके बड़े भाई की मृत्यु निस्सन्तान हो चुकी थी। राव जालणसी के ब्राद उसका बड़ा पुत्र राव

छाड़ाजी उत्तराधिकारी हुआ। इसके बाद राव तीड़ा व राव सलखा गद्दी पर बैठे। सलखा का तृतीय पुत्र वीरम मंडोर का मालिक हुआ। राव बीरम के बाद उसका द्वितीय पुत्र चूंड़ा शासक बना। इस समय दिल्ली पर तुगलक वंश का शासन था तथा चूंड़ा ने नागौर पर अधिकार कर लिया था। राव चूंडा के बाद उसका छोटा पुत्र राव कान्हा गद्दी पर बैठा। राव कान्हा ने जागलू से साखला राजपूतों पर फतह हासिल की। राव चूंड़ा का ज्येष्ठ पुत्र राव रणमल्ल महाराणा गोकल की सहायता से गद्दी पर बैठा। रणमल्ल ने धीरे–धीरे मेवाड़ पर अपना अधिकार मजबूत किया।

रणमल्ल की मृत्यु का समाचार सुनकर उसका बड़ा पुत्र जोधा अपने राठौड़ सैनिकों संग चित्तौड़ से भाग निकला। राव चूंड़ा ने महाराणा कुम्भा की ओर से जोधा का पीछा किया और मार्ग में दोनों पक्षों में कई स्थानों पर भयंकर संघर्ष भी हुआ परन्तु जोधा अपने कुछ साथियों के साथ किसी प्रकार बच निकला।[78] अपनी शक्ति संचित करने में जोधा को टॉड के अनुसार पन्द्रह वर्ष तथा मारवाड़ी इतिहास के अनुसार सात वर्ष लगे और पुनः राजधानी मंडोर पर अधिकार कर सका। राव जोधा द्वारा बसाए गए नगर जोधपुर ही मारवाड़ राज्य की राजधानी बना। राव जोधा के पुत्र बीका ने बीकानेर नामक नए राज्य की स्थापना की। जोधा ने अपने जीवनकाल में ही बीका को उसके द्वारा स्थापित राज्य (बीकानेर) का स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया था।[79] राव जोधा के बाद उसका बड़ा पुत्र सांतल मारवाड़ की गद्दी का उत्तराधिकारी बना और सांतल के बाद राव सूजा मारवाड़ का शासक बना। राव जोधा ने सोजत का प्रबन्ध राव

सूजा को सौंपा था। राव सूजा की मृत्यु के बाद राव गंगा ने मारवाड़ की शासन सत्ता संभाली। राव गंगा राव सूजा के पौत्र और राजकुमार बाघा के द्वितीय पुत्र थे।[80] राव गंगा के शासन काल में ही भारत मे बाबर द्वारा मुगल साम्राज्य की स्थापना की गई।

राजपूताने के विभिन्न राज्य आपसी मतभिन्नता के शिकार थे। इसलिए किसी भी विदेशी सत्ता का संयुक्त मुकाबला करना इनके बस में नहीं था। राणा संग्राम सिंह अंतिम राजपूत संघ के नेता थे जिन्होंने मुगल साम्राज्य के संस्थापक बाबर से खानवा के युद्ध में मुकाबला किया था। लेकिन खानवा की जंग में राणा की हार ने राजपूत राज्यों को अलग दिशा में सोचने के लिए बाध्य कर दिया। सभी राज्य अलग–अलग होकर ताकतवर और साम्राज्यवादी होना चाहते थे। इसलिए उनकी आपस में कोई सामन्जस्य नहीं था और राजपूत राज्यों की फूट का लाभ दिल्ली सल्तनत उठाने के लिए हमेशा तैयार रहता था और मुगलों के आक्रमण और साम्राज्य संचालन में राजपूत राज्य ही बड़ी बाधा थे। दिल्ली की तख्त पर बैठने वाला हर मुगल सम्राट मुगल साम्राज्य के हित के लिए राजपूत राज्य के सम्बन्ध में नीति बनाता। सम्बन्ध सकारात्मक हो या नकारात्मक मुगल सम्राट के लिए राजपूतों की अनदेखी करना कभी भी भारी पड़ सकता था। राजपूत राज्यों के साथ बनने वाले संबधो पर ही मुगल साम्राज्य की आर्थिक और धार्मिक नीति कुछ हद तक टिकी थी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. नियामत उल्लाह "मखजने अफगाना" (अनु.)पृ0 77; रिजवी, "मुगल कालीन भारत" (बाबर). पृ0 448–49
2. डॉ0 राधेश्याम, मुगल सम्राट बाबर, पृ0 253, इलाहाबाद
3. बाबरनामा (अनु.) भाग.1. पृ0 441; फिरिश्ता, "तारीख–ए–फिरिश्ता" (मूलग्रन्थ). पृ0 202; ब्रिग्स. दि हिस्ट्री आफ दि राइज आफ दी मुहमडन पावर इन इण्डिया "भाग–2 पृ0 38
4. डॉ0 के0 एस0 लाल; टवाईलाइट आफ दि देहली सल्तनत (एशिया). पृ0 222
5. मुन्तखब–उत–तवारीख (अनुवाद) भाग–1, पृ0 442
6. राधेश्याम, मुगल सम्राट बाबर, पृ0 277(इलाहाबाद)
7. टॉड, भाग–1; ओझा, भाग–1, पृ0 1–2; जयसिंह पृ013; जसवन्त सिंह पृ0 1; अजीत सिंह, पृ0 1
8. इम्पीरियल, भाग–21, पृ082–83; ओझा, भाग–1, पृ0 1–3; जसवन्त सिंह पृ0 1; अजीतसिंह, पृ0 1
9. आईन, भाग–2, पृ0 129 व 273; सरन, पृ0 126–8; पूर्व, 67–8; जयसिंह पृ013; जसवन्त सिंह, पृ0 1; अजीत सिंह, पृ01
10. टॉड, भाग–1, पृ0 1; ओझा, भाग–1, पृ0 1–2; पूर्व, पृ0 67–8; जयसिंह, पृ0 13; जसवन्त सिंह, पृ0 1; अजीत सिंह, पृ0 1
11. इ0 गजे0; पृ0 21, पृ083–84; परमात्माशरण. पृ0 23
12. इ0 गजे0; पृ0 21, पृ0 119–126,128–130; परमात्माशरण. पृ0 23,125
13. ओझा (राजपूताने का इतिहास, भाग–1), पृ0 3
14. राठौड़ो के प्रभुत्व में आने से पूर्व बीकानेर राज्य का इलाका जांगलू प्रदेश के नाम से विख्यात था। यह प्रदेश मारवाड़ के उत्तर में स्थित था। महाभारत काल में इसे जांगलू देश कहते थे
15. संगीता चंदोला, पृ0 195

16. जयसोम—कर्मचन्द्र वंशोत्कीर्तनं काव्यम्, श्लोक 213—22; चंदोला, पृ0 197
17. अबुल फजल आइने अकबरी (लोचमन द्वारा अनुवादित), भाग—1, पृ0 357
18. अबुल—फजल—अकबरनामा, भाग—2, पृ0159; निजामुद्दीन—तबकात—ए—अकबरी; इलियट, भाग—5,पृ0 265
19. अबुत फजल—अकबरनामा, भाग—2, पृ0 172
20. टॉड, भाग—2, पृ0 145
21. तुजुके जहाँगीरी, रोजर्स एण्ड बैवरीज (अनुवाद), भाग—1
22. लाहौरी, मूल खण्ड—1, पृ0 308
23. मनूची, भाग—2, (अनुवाद विलियम इरविन), पृ0 19
24. चंदोला, पृ0 204
25. वही, पृ0 205
26. वही, पृ0 207
27. मआसिर (हिन्दी), पृ0 90; ओझा, भाग—5, खण्ड—1, पृ0 244,254—60; पूर्व, पृ0124; टॉड, भाग—2, पृ0146; अजीत सिंह, पृ0 2
28. वीर, पृ0 100
29. टाड, पृ0 173
30. अरस्किन् मेमोयर्स ऑफ बाबर, पृ0 112
31. तुजुके बाबरी, (बेवरीज—अनुवाद), भाग—1, पृ0 223
32. चंदोला, पृ0 111
33. वही, पृ0 123
34. वही, पृ0 131
35. वही, पृ0 151
36. एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, भाग—12, पृ0 869
37. मआसिर (अनुवाद बेवरिज एवं बेनी प्रसाद) जिल्द—2, पृ0 400—11
38. चंदोला, पृ0 154
39. टॉड, भाग—2, पृ0 289

40. आर0एन0प्रसाद, मानसिंह ऑफ आंबेर, पृ0 42
41. तुजुके–जहाँगीर, भाग–1, पृ0 45
42. चंदोला, पृ0 160
43. जयपुर के पत्र, पत्र नं0 17, फारसी पाठ्य, पृ0 77
44. जयपुर रिकार्ड्स, नवम्बर 17, पृ0 265–67
45. मआसिरूल–उमरा, अनुवाद बेवरीज एवं बनारसी प्रसाद, पृ0 731–34
46. डॉ0 श्याम सिंह, पृ0 230
47. वही, पृ0 233
48. गहलोत, भाग–1, पृ0 674–6, रेऊ, भाग–1, पृ0 157, 217–8, जसवन्त सिंह, पृ0 36, 58–9; अजीत सिंह, पृ0 3
49. गहलोत, राजपूताने, भाग–1, पृ0 676–8; टॉड भाग–2, पृ0 210–1; रेऊ, भाग–1, पृ0 231, जसवन्त सिंह, पृ0 106–7; अजीत सिंह, पृ0 3
50. राज प्रशस्ति 5, पृ0 25; राजस्थान, पृ0 100, शर्मा, पृ0 149; ओझा (उदयपुर–2) पृ0 523
51. अजीत सिंह, पृ0 4
52. राजप्रशस्ति 5, पृ0 18–19; राजस्थान, पृ0 100; शर्मा, पृ0 149; ओझा (डूंगरपुर का इतिहास), पृ0 106–113; गहलोत (राजपूताना), पृ0 411–412
53. ओझा, भाग–3, खण्ड–1, पृ0 113–7; गहलोत राजपूताने, भाग–1, पृ0 412–3
54. ओझा, भाग–3, भाग–3, पृ0 131, 143–4, 154, 155–8 व 177; गहलोत (राजपूताने) भाग–1, पृ0 522
55. राज प्रशस्ति 5, पृ0 27–28; राजस्थान, पृ0 100; शर्मा, पृ0 149; ओझा (बाँसवाड़ा राज्य का इतिहास), पृ0 92–103; गहलोत (राजपूताना 1), पृ0 468–9; ओझा (उदयपुर–2), पृ0 523–524
56. ओझा, भाग–3, खण्ड–2, पृ0 94–99 व 104–5; गहलोत (राजपूताने), भाग–1, पृ0 468–9
57. चंदोला, पृ0 212; जसवन्त सिंह, पृ0 4

58. चंदोला, पृ0 213
59. टॉड, भाग–2, पृ0 388–390; जसवन्त सिंह, पृ0 36; अजीत सिंह, पृ0 7
60. चंदोला, पृ0 215
61. आईन–2, पृ0 276
62. राज. गजे. 3ए, पृ0 43; ओझा (जोधपुर) पृ0. 2
63. रेगिस्तान, पहाड़, सघनवन, नदी और वीर पुरुषों की भुजाएँ ये सब देशों के रक्षक माने जाते हैं, क्योंकि इनके कारण शत्रु उनमें आसानी से प्रवेश नहीं कर सकता।

    – देशांस्तान्धन्व शैल द्रुमस (ग) हनसरिन्द्वीर बाहूपगूढ़ान.....।

    – डॉ0 फ्लीट; गुप्ता इन्स्क्रिप्शन्स; पृ0 146
64. ओझा 1 (जोधपुर), पृ0 1
65. भागवत, अध्याय, भाग–1, संस्करण–35
66. EI, I, P.23
67. भार्गव, पृ0 2; रेऊ, भाग–1, पृ0 1; आसोपा, पृ0 1
68. ओझा (जोधपुर), पृ0 2; राज. गजे.3.ए, पृ0 43; इ0 गजे. 14, पृ0 179; रेऊ 1, पृ01
69. इ0 गजे0, 14, पृ0 179–180; ओझा (जोधपुर), भाग–1, पृ0 3–5; मनूची, भाग–2, पृ0 432; राज0 गजे. 3ए, पृ0 50, 99
70. ओझा (जोधपुर), भाग–1, पृ0 13–14
71. वही, पृ0 14
72. रेऊ, भाग–1, पृ0 14
73. श्री मदभगवत में लिखा है– "मरूधन्वमितक्रम्य सौवीरामीरयोः परान्"

    – (भागवत, स्कन्ध 1, अ0 10, श्लोक 35)

    इससे अनुमान होता है कि 'मरू' और 'धन्व' दो भिन्न देश थे। इससे प्रतीत होता है

    कि शायद मारवाड़ का दक्षिणी भाग 'धन्व' कहलाता होगा।

74. चंदोला, पृ0 36
75. टॉड, राजस्थान, जि0. 2, पृ. 939–42; ओझा (जोधपुर) भाग–1, पृ0 99
76. रेऊ (मारवाड़), भाग–1, पृ0 44
77. वही, पृ0 56
78. रेऊ (मारवाड़), भाग–1, पृ0 83; ओझा (जोधपुर) भाग–1, पृ0 236; चंदोला, पृ0 38
79. ओझा (जोधपुर), भाग–1, पृ0 250; चंदोला, पृ0 38
80. रेऊ (मारवाड़), भाग–1, पृ0 114

द्वितीय अध्याय

मुगल–मारवाड़ सम्बन्ध

(1526 ई0 से 1657 ई0 तक)

अध्याय–2

मुगल मारवाड़ संबंध

(1526 ई० से 1657 ई० तक)

हिन्दुस्तान को जीतने का ख्वाब मुगलों ने वर्षो से पाल रखा था। तभी तो सल्तनत काल में तुर्की और गैर तुर्की सुल्तानों के सामने सबसे बड़ी चुनौती मंगोलों ने ही खड़ी की थी। मंगोल आक्रान्ताओं से पूरा विश्व भयभीत था। कभी इल्तुतमिश की बुद्धिमानी, बलबन की सैन्य संगठनात्मक क्षमता अलाउद्दीन खिलजी का मंगोलों को उन्हीं की भाषा में जवाब मंगोल आक्रमणों से हिन्दुस्तान की हिफाजत करती रही। जिस हिन्दुस्तान को फतह करने का सपना चंगेज खाँ, हलाकू, कुतलुग ख्वाजा जैसे महान योद्धा पूरा नहीं कर पाए, उसको उनके वंशज बाबर ने पूरा किया। बाबर के साम्राज्य स्थापना में सबसे बड़ी बाधा राजपूत शक्ति की ही थी। विदेशी आक्रमणकारी के विरूद्ध संपूर्ण राजपूताना महाराणा संग्राम सिंह के नेतृत्व में उठ खड़ा हुआ। भले ही वे खानवा के युद्ध में परास्त हुए हो लेकिन उन्होंने मुगलों को यह बता दिया कि बिना राजपूतों से सम्बन्ध बनाए, हिन्दुस्तान में सत्ता स्थापना का ख्वाब देखना असंभव है। बाबर के पास विजेता होने का गुण उसके पूर्वजों से मिला था, लेकिन अपने घुमन्तु जीवन के दौरान उसमें प्रशासनिक क्षमता का विकास नहीं हो सका। बाबर के पूर्व जितने भी शासकों ने हिन्दुस्तान पर शासन करने का सोचा, उनकों राजपूतों से लोहा लेना पड़ा। बाबर ने जंग तो जीत ली थी लेकिन उसे अपने आप को प्रमाणित करना था। मुगलों ने हिन्दुस्तान को फतेह करने

के लिये जंगजुओं की फौज तैयार कर ली थी।

बाबर का मारवाड़ के साथ संबंध :–

21 अप्रैल 1526 ई0 को पानीपत के मैदान से भारत में एक नए युग का सूत्रपात हुआ। भारत ने सत्ता परिवर्तन तो अनेक बार देखा परन्तु पहली बार ऐसा हुआ कि भारत में सत्ता परिवर्तन के लिए पंजाब के सूबेदार दौलत खाँ लोदी ने काबुल से बाबर को भारत पर आक्रमण करने के लिए आमन्त्रित किया। इस समय दिल्ली का सुल्तान इब्राहिम लोदी था जिसके कार्यों के फलस्वरूप अफगान विद्रोही बन रहे थे। सुल्तान में न तो उनको प्रभुत्व में रखने का ढंग था और न उनको कुचलने की शक्ति।[1] अतः बाबर ने पंजाब के अफगानों को सहायता देने का आश्वासन दिया। पानीपत के मैदान में इब्राहिम लोदी की करारी हार के बाद बाबर पंजाब से आगे बढ़ने का विचार करने लगा तो राणा सांगा चिन्तित हो उठा। क्योंकि राणा सांगा ने सोचा था कि बाबर दिल्ली में लोदी वंश को समाप्त कर वापस लौट जाएगा तब वह दिल्ली पर बिना किसी कठिनाई के अधिकार कर सकेगा इसीलिए राणा सांगा ने इब्राहिम लोदी पर सम्मिलित आक्रमण का प्रस्ताव भेजा[2] और पानीपत के मैदान में सहयोग करने का आश्वासन दिया था। पर मैदान में राणा सांगा ने कोई सहायता नहीं की तो बाबर ने सांगा पर वादा खिलाफी का दोषारोपण किया था। इतिहासकारों ने भी बाबर के इस कथन को सही माना है।[3] अंततः बाबर और राणा सांगा के बीच खानवा का युद्ध हुआ जिसमें राणा सांगा की हार हुई। इस युद्ध में मारवाड़ राज्य ने मेवाड़ के राणा की सहायता की।

बाबर के भारत आग मन के समय मारवाड़ पर राव गंगा का शासन

था। राव गंगा, सूजा के स्वर्गीय ज्येष्ठ पुत्र बाघा का दूसरा पुत्र था, परन्तु सूजा की मृत्यु होने पर राज्य के सरदारों ने उसके बड़े भाई वीरम के जीवित रहते हुए भी उसके स्थान पर गंगा को ही 8 नवम्बर 1515 ई0 को जोधपुर के राज्यसिंहासन पर बैठाया।[4] राव गंगा के शासनकाल में मुगल सम्राट बाबर के विरूद्ध जब मेवाड़ के राणा संग्राम सिंह ने युद्ध की घोषणा की तो इसने भी रत्न सिंह के नेतृत्व में चार हजार सैनिक भेजकर यथासाध्य राणा की सहायता की।[5] संगीता चंदोला ने लिखा है कि खानवा के युद्ध के समय भी राव गंगा ने अपने पुत्र मालदेव को सांगा की सहायता के लिए भेजा था तथा रणभूमि से बाहर निकालने में भी मालदेव शामिल था।[6]

हुमायूँ के साथ मारवाड़ का सम्बन्ध :–

बाबर की मृत्यु के बाद उसका पुत्र हुमायूँ मुगल सम्राट बना तो मारवाड़ में राव गंगा की मृत्यु के बाद 1531 ई0 में मालदेव मारवाड़ की गद्दी पर बैठा।[7] मालदेव के विषय में सभी तत्कालीन फारसी इतिहासकारों ने लिखा है कि "मालदेव हिन्दुस्तान का सबसे प्रभावशाली राजकुमार था।"[8] जिस समय मालदेव ने मारवाड़ की शासन सत्ता संभाली थी उस समय उसके अधिकार क्षेत्र में सिर्फ दो जिले मांडोर और सोजत के साथ जोधपुर शहर राजधानी था। ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय पूरे राजस्थान का माहौल मारवाड़ की सीमाओं में विस्तार करने के अनुकूल था क्योंकि उस समय मेवाड़ के राणा संग्राम सिंह और गुजरात के शासक बहादुरशाह की मृत्यु से पड़ोस के दो प्रतिद्वन्दी समाप्त हो गए तो जोधपुर राज्य की शक्ति और प्रतिष्ठा में अपूर्व वृद्धि हुई।[9] मेवाड़ राज्य

में राणा संग्राम सिंह की मृत्यु के पश्चात् ऐसा कोई उत्तराधिकारी नहीं हुआ जो मेवाड़ की स्थिति पुनः सुदृढ़ कर सके तथा मुगल सम्राट बाबर की मृत्यु के बाद उसका बेटा हुमायूँ मुगल साम्राज्य का कर्ताधर्ता बना परन्तु हुमायूँ के व्यक्तित्व में नेतृत्व की उस क्षमता का अभाव था जिससे वह नवनिर्मित मुगल साम्राज्य के सुदृढ़ीकरण में अपना योगदान दे पाता। ऐसी परिस्थिति ने मालदेव को पूरा मौका दिया कि वह राजस्थान में अपना प्रभाव क्षेत्र बढ़ा सकता था। हुमायूँ के सम्राट बनते ही कठिनाइयों ने उसे अपना शिकार बनाया। भारत में तैमूर वंशी दुश्मन हुमायूँ की कमजोरी का फायदा उठाने के लिए धीरे–धीरे अपना सिर उठा रहे थे तथा दूसरी तरफ गुजरात का शासक बहादुरशाह तथा बिहार का शेरखाँ मारवाड़ में मालदेव को अपनी स्थिति मजबूत करने का स्वर्ण अवसर प्रदान कर रहे थे। ऐसी स्थिति में मुगल साम्राज्य की नींव का कमजोर होना तथा मालदेव द्वारा मारवाड़ राज्य की नींव का मजबूत होना परिस्थिति जन्य स्थिति प्रतीत होता है। इस तरह मालदेव ने गद्दी प्राप्त होते ही बहादुरशाह और हुमायूँ के बीच हो रहे संघर्ष से फायदा उठाकर राजपूताना के अनेक क्षेत्रों को अपने तलवार के दम पर अधिकृत किया।

जिसमें सिंधाल के भद्रजून[10] और जालौर के बिहारी पठान[11] शामिल थे। कुछ समय बाद सिवाना[12] और संचोर[13] के किलों पर भी अधिकार कर लिया। ऐसा प्रतीत होता है कि मालदेव ने मुगलों और अफगानों से मारवाड़ राज्य की सुरक्षा की दृष्टि से पूर्वी और दक्षिणी सीमाओं पर मजबूत किलों की एक श्रृंखला तैयार कर ली थी तथा इस श्रृंखला में मालदेव ने कुछ समय पश्चात् फलोदी[14] के भाटी राजपूतों को भी शामिल

कर लिया था। अब मालदेव के पास पूर्ण अवसर था कि वह अन्य सीमाओं को भी मारवाड़ राज्य से जोड़े। अतः उसने मेड़ता के बीरमदेव तथा बीकानेर के राव जैतसी को भी मारवाड़ की अधीनता स्वीकार करायी जो कि राजपूताना के सम्मानित राज्यों मे जगह बनाए हुए थे।

1537 ई0 में बहादुर शाह की मृत्यु के बाद हुमायूँ के एक बड़े शत्रु का अन्त हुआ। लेकिन अब तक हुमायूँ का जीवन पूर्णतः सुरक्षित न हो सका। यद्यपि बहादुर शाह के रूप हुमायूँ की एक बड़ी कठिनाई का अन्त हो चुका था परन्तु उससे बड़ी कठिनाई हुमायूँ का बेसबरी से इन्तजार कर रही थी। शेरखाँ और हुमायूँ के मध्य वास्तविक संघर्ष का प्रारम्भ तो अब हुआ था और इस संघर्ष का अन्त 17 मई 1540 ई0 में बिलग्राम के युद्ध में हुमायूँ की हार से हुआ। इस हार के बाद हुमायूँ लाहौर की तरफ चला गया। मालदेव ने हुमायूँ की हार का समाचार सुनकर उसके भक्कर में रहते हुए उसके पास इस आशय से पत्र भेजे कि मैं तुम्हारी सहायता करने को तैयार हूँ।[15] मालदेव ने हुमायूँ को सहायता पहुँचाकर दिल्ली का साम्राज्य वापस दिलाने और इस प्रकार अपने भविष्य को उज्जवल बनाने के विचार से हुमायूँ को आमंत्रित किया परन्तु हुमायूँ की हीन दशा और शेरशाह की बढ़ती हुई शक्ति देखकर उसने अपना विचार बदल दिया और हुमायूँ सिन्ध की ओर लौट गया।[16] इसी बीच शेरशाह को अपनी फौज के साथ बंगाल के हाकिम के विरुद्ध जाना पड़ा था।[17] संभवतः इसी समय हुमायूँ और मालदेव के बीच पत्रों का आदान–प्रदान हुआ हो। परन्तु हुमायूँ ने मालदेव के द्वारा भेजे गए प्रस्ताव को गंभीरता से न लिया, क्योंकि उसे ठट्टा के शासक शाहहुसैन अर्घुन से सहायता मिलने की आशा थी क्योंकि

हुमायूँ उस समय गुजरात पर विजय प्राप्त करने पर विचार कर रहा था। इस सम्बन्ध में उसने शाहहुसैन को लिखा भी, पर वह छः मास तक टालमटोल करता रहा।[18] शाह हुसैन की तरफ से कोई जवाब न आने पर निराश होकर हुमायूँ ने सात मास तक शेवान के किले पर घेरा डाले रहा परन्तु उससे भी कोई लाभ प्राप्त होता न दिखाई दिया तो उसने भक्कर जाना उचित समझा परन्तु उसने वहाँ पर भी उसके द्वार अपने लिए बन्द पाए, क्योंकि यादगार नासिर मिर्जा भी उसका विरोधी बनकर शाहहुसैन से मिल गया था।[19] जब हुमायूँ ने सिन्ध में अपनी स्थिति का पूर्ण आकलन कर लिया तो उसने कहा–बहुत अच्छा : मुझे राजा मालदेव के पास जाना होगा।[20] तब उसने मारवाड़ जाने के लिए भक्कर छोड़कर 7 मई 1542 ई0 को चला तथा उच्छ होते हुए जुलाई 1542 ई0 को कुल–ए–जोगी पहुँचा।[21] बीकानेर से 12 कोस पर पहुँचा तो हुमायूँ के नौकरों ने उसे मालदेव के प्रति आगाह किया और मालदेव पर विश्वास न करने की सलाह भी दी। इस पर हुमायूँ ने मीर समन्दर को मालदेव के पास भेजा, और लौट कर हुमायूँ को सूचित किया कि मालदेव ऊपर से तो बादशाह हुमायूँ के सहायतार्थ कार्य करता है परन्तु ऐसा प्रतीत हो रहा है कि आपके प्रति मालदेव का मन साफ नहीं है। ऐसी सूचना प्राप्त होने के बाद हुमायूँ ने रायमल सोनी को मालदेव के पास भेजा और यह तय हुआ कि यदि वहाँ पर लिखने का अवसर प्राप्त न हो सका तो संदेश–वाहक को इशारे में अपनी बात व्यक्त करना है। निश्चित इशारे तय किये गए कि यदि मालदेव के मन में सच्चाई हो तो वापस आकर उसकी पाँचों अंगुलियाँ एक साथ पकड़े और यदि धोखा हो तो केवल कनिष्ठिका

पकड़े।[22] हुमायूँ ने फलोदी पहुँचकर अत्काखाँ को मालदेव के पास भेजा। उसने बादशाह के आने की सूचना मालदेव को दी परन्तु मालदेव ने तो पहले से ही तय कर रखा था कि हुमायूँ के साथ अब कैसा व्यवहार करना उचित होगा। अतः मालदेव ने स्वयं न जाकर अपने कुछ साथियों को हुमायूँ की सेवा में भेजना तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार उचित समझा। इसके बाद बादशाह जोगी तालाब पर पहुँचा, जहाँ रहते समय रायमल सोनी के पास से सन्देशवाहक ने आकर उसकी कनिष्ठिका पकड़ी, जिससे उसे मालदेव के कपट का पूरा विश्वास हो गया।[23] इन बदलती हुई परिस्थितियों में मालदेव बिन बुलाए मेहमान का स्वागत करने के लिए तैयार न था। ऐसा प्रतीत होता है कि मालदेव समझ चुका था कि हुमायूँ की मदद लेकर भी इस समय शेरशाह की बढ़ती हुई शक्तियों को रोकना मालदेव के कार्य क्षमता से बाहर है। अतः वह हुमायूँ की मदद कर शेरशाह को मारवाड़ मे आमन्त्रण नहीं देना चाहता था।

निजामुद्दीन अहमद ने लिखा है कि "जब मालदेव को हुमायूँ की कमजोरी और शेरशाह से मुकाबिला करने योग्य सेना का उसके पास न होना ज्ञात हुआ तो उसे भय हुआ, क्योंकि उसके पास स्वयं शेरशाह से लड़ने योग्य सेना का अभाव था। इसी बीच स्वयं शेरशाह ने एक दूत भेजकर उसे बड़ी–बड़ी आशाएँ दिलाई, जिससे मालदेव ने संभव हो सका तो हुमायूँ को पकड़कर उसके पास भेज देने का वादा कर लिया। नागोर और उसके आस–पास के स्थल पर शेरशाह का अधिकार स्थापित हो चुका था, अतएव मालदेव को यह आशंका थी कि कहीं रूष्ठ होकर वह हुमायूँ के विरूद्ध होने पर एक बड़ी सेना उसके राज्य में न भेज दे।[24] कुछ

लोग ऐसा भी कहते थे कि पहले मालदेव की भावना हुमायूँ के प्रति शुद्ध थी, और वह उसकी सेवा भी करना चाहता था। बाद में या तो हुमायूँ की सेना भी बुरी दशा और अल्प संख्या देखकर अथवा शेरशाह के झूठे वादों एवं बढ़ती हुई शक्ति के कारण मालदेव बदल गया। संभवतः इसका कारण शेरशाह का भय हो। जो भी हो वह हुमायूँ का विरोधी हो गया था। लोगों का बहुमत फिर भी इसी ओर था कि प्रारम्भ से अन्त तक मालदेव का सहायता का वचन देना और इस सम्बन्ध में बादशाह (हुमायूँ) को लिखना कपटपूर्ण था।[25] तत्कालीन निर्मित सभी परिस्थितियाँ हुमायूँ को मारवाड़ से अमरकोट जाने के लिए बाध्य कर रहीं थी। अतः हुमायूँ ने अमरकोट जाने का निश्चय किया। हुमायूँ के मारवाड़ क्षेत्र के छोड़कर जाने के लगभग 18 महीने बाद शेरशाह ने मारवाड़ राज्य को अधिकृत करने के लिए प्रयास शुरू किए। शेरशाह द्वारा मारवाड़ राज्य को अधिकृत किए जाने के सन्दर्भ में आधुनिक इतिहासकारों ने अपने विभिन्न मत प्रस्तुत किए जिनमें से कुछ महत्वपूर्ण मत निम्न है–

i. शेरशाह, मालदेव से नाखुश रहने लगा था क्योकि हुमायूँ के प्रति मालदेव का प्रारम्भिक व्यवहार शेरशाह के विरूद्ध था और शेरशाह की इच्छानुसार मालदेव ने हुमायूँ को कैद कर शेरशाह के सुपुर्द करने का कार्य भी नहीं किया था इसलिए शेरशाह मारवाड़ राज्य को पूर्णतः अपने साम्राज्य में मिलाने की इच्छा रखता था।

ii. राजपूताना में मालदेव उस समय एक शक्तिशाली तथा प्रभावशाली शासक था जो कभी भी शेरशाह के साम्राज्य के लिए खतरा उत्पन्न कर सकता था और शेरशाह के साम्राज्य की उत्तर–पूर्वी सीमा

मारवाड़ राज्य से सिर्फ 50 मील की दूरी पर था। मारवाड़ राज्य का अधिक दिनों तक स्वतन्त्र रहना दिल्ली के लिए कभी भी मुश्किल खड़ा कर सकता था। अतः दिल्ली की सुरक्षा को दृष्टिगत रखते हुए शेरशाह के लिए यह अत्यन्त आवश्यक हो गया था वह मारवाड़ राज्य की स्वतन्त्रता को समाप्त करता।

iii. मालदेव ने मेड़ता और बीकानेर राज्य पर अधिकार कर लिया था। अतः मेड़ता के बीरमदेव तथा बीकानेर के कल्याणमल ने मालदेव के विरूद्ध शेरशाह से सहायता मांगी। इन सारी परिस्थितियों को देखते हुए शेरशाह ने मारवाड़ पर आक्रमण करने का फैसला लिया।

फलतः एक विशाल फौज के साथ शेरशाह आगरा से मारवाड़ को अधिकृत करने के लिए चला।[26] बीकानेर का राव कल्याणमल भी मार्ग में शेरशाह की सेना के साथ शामिल हो गया।[27] शेरशाह की सेना द्वारा मार्ग में अपनी सुरक्षा की दृष्टि से जहाँ–जहाँ पर ठहरती थी वहाँ पर खाईयाँ खोद दी जाती थी।[28] इस संदर्भ में अब्बास खाँ ने लिखा है कि–'एक दिन उसकी सेना का पड़ाव रेतीले मैदान में हुआ, जहाँ प्रयत्न करने पर भी रेत की अधिकता के कारण खाई न खोदी जा सकी। शेरशाह इस सम्बन्ध में बड़ा चिन्तित हुआ। उस समय उसके पोते महमूदखाँ ने सम्मति दी कि सेना की रक्षा के लिए रेत से भरवाकर बोरियों की आड़ कर दी जाए तो अच्छा होगा। शेरशाह को यह सलाह पसंद आई और इसके लिए उसने महमूदखाँ की प्रशंसा की। फिर उसने आज्ञा दी कि रेत से भरकर बोरियाँ सेना के चारो ओर जमा दो।[29] मार्ग में अपनी सेना की सुरक्षा का पूर्ण प्रबन्ध करते हुए वह नागोर और अजमेर के राजा (मालदेव) के राज्य में

पहुँचा।[30] जब मालदेव को शेरशाह के यहाँ तक आने की सूचना प्राप्त हुई तो उसने भी समय व्यर्थ करना उचित नहीं समझा और मालदेव भी एक बड़ी सेना लेकर शेरशाह का सामना करने के लिए चल पड़ा। एक मास तक दोनों सेनाएँ एक–दूसरे के सामने पड़ी रही, परन्तु युद्ध न हुआ।[31] ऐसा प्रतीत होता है कि यह युद्ध दो बड़ी सेनाओ में नहीं हो रहा था बल्कि एक तरफ मालदेव की विशाल सेना थी तो दूसरी तरफ शेरशाह का कूटनीतिक दिमाग। मालदेव की विशाल सेना को देखकर शेरशाह पीछे हटने का विचार कर सकता था पर सुरक्षित स्थान से पीछे हटना मतलब युद्ध क्षेत्र में करारी हार सिद्ध हो सकता था। दूसरी तरफ मालदेव की विशाल सेना के साथ युद्ध करना भी साम्राज्य के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकता था। ऐसी विषम परिस्थिति में न तो युद्ध ही किया जा सकता था और न ही युद्ध क्षेत्र से पीछे हटने के विषय में सोचा जा सकता था। तब शेरशाह ने अपनी कूटनीतिक दिमाग का उपयोग युद्ध की धारा को अपनी तरफ मोड़ने के लिए किया। मालदेव के साथ के सरदारों में से अनेक को मालदेव ने अपने तलवार के बल पर अधीन बनाया था। अतः शेरशाह ने मारवाड़ी भाषा में उन सरदारों की तरफ से अपने नाम इस आशय से जाली पत्र लिखवाए–'राजा के अधीनस्थ बन जाने के कारण हम उसके साथ आ तो गए है, परन्तु गुप्त रूप से हमारा उससे वैर बना हुआ है। यदि आप हमारा अधिकार पुनः हमें दिला दें तो हम आपकी सेवा करने और आपकी अधीनता स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत है।' इन पत्रों के एक सिरे पर फारसी भाषा में लिखवाया–'भय न करो, प्रयत्न करते रहो और विश्वास रखो कि तुम्हारी आशाएँ पूरी की जाएंगी।" फिर कुछ पत्र मालदेव

के खेमे में इस तरह ऐसे स्थान पर डलवाए कि जहाँ पर ये पत्र मालदेव को आसानी से मिल सकें। ऐसा प्रतीत होता है कि युद्ध शुरू होने से पहले ही इस युद्ध का परिणाम लिखा जा चुका था। जिस दिन मालदेव ने शत्रु सेना पर आक्रमण करने की योजना बना रखी थी उसी दिन इन पत्रों पर मालदेव की नजर पड़ी तथा इन पत्रों को पढ़ते ही उसकी सारी योजना, सिर्फ योजना बनकर ही रह गयी। इन पत्रों को पढ़ने के बाद मालदेव का अपने सरदारों की तरफ से आशंकित होना स्वाभाविक ही था। अब्बास खाँ के अनुसार पत्र का आशय इस प्रकार था–'बादशाह को चिन्तित होने और सन्देह करने की आवश्यकता नहीं। युद्ध के समय हम मालदेव को आपके सुपुर्द कर देंगे।'[32] बदायूँनी ने लिखा है कि– 'बादशाह को युद्ध के समय स्वयं सैन्य संचालन करने की कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि हम इस शर्त पर कि हमें अमुक–अमुक जागीरें दी जावें, मालदेव को स्वयं पकड़कर आपके सुपुर्द कर देने को तैयार है।[33] शेरशाह की इस चाल ने मालदेव की सारी योजना को ध्वस्त कर दिया और मालदेव ने भी प्रत्यक्ष रूप से युद्ध करना उचित न समझा। मालदेव के युद्ध न करने के फैसले पर उसके सरदार उसे युद्ध के लिए प्रेरित करने लगे तो सरदारों के प्रति मालदेव की शंका, वास्तविकता में बदल गया। इस घटना के चौथे दिन मालदेव ने अपनी सेना को पीछे हटने का आदेश दिया।[34] राव कूंपा को समय रहते शेरशाह की चाल का सही–सही पता चल चुका था अतः उसने यह सच्चाई मालदेव को बताने का प्रयास किया लेकिन उसकी शंका ने उसके मन में इस तरह से घर बना लिया था कि उस समय उसे कुछ भी सुनाई नहीं दे रहा था। इस स्थिति में कूंपा ने कहा–'सच्चे

राजपूतों में ऐसा विश्वासघात पहले कभी नहीं सुना गया। मैं राजपूतों की प्रतिष्ठा पर लगाए गए इस कलंक को अपने रक्त से धोऊँगा अथवा शेरशाह को अपने थोड़े से सैनिकों की सहायता से पराजित करूगा।[35] इसी संकल्प के साथ कूंपा ने अपने दस–बारह सैनिकों के साथ शेरशाह पर आक्रमण किया तब शेरशाह ने भी अपनी सेना के साथ मुकाबला किया। कूंपा के सैनिको का आक्रमण इतना आक्रामक था कि एक बार तो शेरशाह को सेना सहित पीछे हटना पड़ा। परन्तु इसी समय जलाल खाँ जलावनी अपनी सहायक सेना के साथ युद्ध क्षेत्र में आ पहुँचा जिससे कूंपा की सेना छिन्न–भिन्न हो गई। यह युद्ध जीतना शेरशाह के लिए इतना दुरूह हो गया था कि युद्ध के अन्त में शेरशाह ने कहा–'एक मुठ्ठी ज्वार के लिए मैं पूरे हिन्दुस्तान की बादशाहत खो देता।[36]

हिन्दुस्तान के इतिहास में यह युद्ध निर्णायक युद्धों में से एक था क्योंकि इस युद्ध ने सूरवंश को कमजोर कर दिया जिससे सूर वंश का शासन भारत में ज्यादा दिनों तक न टिक सका। इस युद्ध के अन्त होने पर शेरशाह ने अपनी सेना का कुछ भाग जोधपुर, मालदेव को पकड़ने के लिए[37] तथा दूसरी सेना को अजमेर की तरफ भेजा। स्वयं अजमेर होते हुए मेड़ता वापस लौट गया तथा मेड़ता पर अधिकार करने के बाद उसे बीरम देव को दे दिया। शेरशाह के अजमेर पहुँचने पर आसानी से वहाँ पर अधिकार हो गया। वहाँ से उसने जोधपुर की तरफ प्रस्थान किया। मालदेव उसका आगमन सुनते ही वहाँ से भागकर सिवाना के पहाड़ी किले में चला गया।[38] जोधपुर पर अधिकार करने के बाद लगभग 1 साल तक जोधपुर पर शेरशाह का अधिकार रहा।[39] इस बीच किले के भीतर एक

मस्जिद बनी और गोल का रास्ता आदि भी बना।[40] मारवाड़ पर अधिकार के बाद शेरशाह ने बीरमदेव को मेड़ता और कल्याणमल को बीकानेर का राज्य सौंपा।[41]

हि.स.952 ता.10 रबीउलअव्वल (वि.सं. 1602 ज्येष्ठ सुदि 11 ई.स. 1545 ता. 22 मई) को शेरशाह की मृत्यु हो गयी।[42] मारवाड़ राज्य पर अधिकार छीन जाने के बाद मालदेव यद्यपि अपने राज्य से बेदखल हो गया था परन्तु वह शान्ति से बैठने वाले शासकों में नहीं था। वह तो बस सुअवसर की ताक में था। शेरशाह की मृत्यु का समाचार पाते ही मालदेव पुनः सक्रिय हो गया, क्योंकि जिस अवसर का वह इन्तजार कर रहा था, वह उसे शेरशाह की मृत्यु से प्राप्त हो गया। जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है–'शेरशाह जोधपुर से जाते समय भांगेसर के थाने पर अपने सवार रख गया था। शेरशाह के मरने पर मालदेव ने बाहर आकर उनको मार डाला। अनन्तर उसने वि0सं0 1602 (ई0सं0 1545) में जोधपुर पर भी कब्जा कर लिया।[43]

शेरशाह की मृत्यु के बाद हुमायूँ भारत लौटा तो उसने पाया कि जिस मालदेव का अधिकार क्षेत्र इतना विस्तृत था, अब वह क्षेत्र बहुत ही सीमित हो चुका था। पूरा राजस्थान छोटे और कमजोर क्षेत्रों में बँट चुका था। अब तक मालदेव अपने पड़ोसी राज्यों का विश्वास खो चुका था तथा कोई भी राज्य इतना शक्तिशाली नहीं रह गया था जिसमें अपनी सीमा विस्तार करने की क्षमता हो। लेकिन हुमायूँ के भारत लौटने के बाद वह अधिक समय तक जीवित न रह सका और भारत का साम्राज्य अपने पुत्र अकबर के लिए छोड़ कर गया, वो भी जब अकबर की उम्र सिर्फ 13 वर्ष

ही थी।

अकबर का मारवाड़ के साथ सम्बन्ध :–

अकबर के सिंहासनारोहण के समय मेवात (अलवर) पर शेरशाह शाह सूरी के एक शक्तिशाली गुलाम हाजी खाँ का अधिकार था। मेवात पर मुगल अधिकार स्थापित करने के उददेश्य से अकबर ने पीरमुहम्मद सरवानी को वहाँ भेजा। पर पीर मुहम्मद के वहाँ पहुँचने से पूर्व ही हाजी खाँ वहाँ से भागकर अजमेर चला गया।[44] इसी समय मालदेव ने भी हाजी खाँ का पीछा करने के लिए पृथ्वीराज को भेजा।[45] इस समय हाजी खाँ की सामर्थ्य इतनी नहीं थी कि वह एक तरफ अकबर की सेना का मुकाबला करे तो दूसरी तरफ मालदेव की सेना का। ऐसी विषम परिस्थिति में हाजी खाँ ने राणा उदयसिंह और बीकानेर के राव कल्याणमल से सहायत माँगना उचित समझा। हाजी खाँ के सहायतार्थ महाराणा 5000 फौज के साथ अजमेर की ओर बढ़ा तो रावकल्याण मल ने भी ठाकुर अर्जुनसिंह, रावत किशनदास और नारण की अध्यक्षता में सेना भेजी। लेकिन विपरीत परिस्थितियों मे मालदेव की सेना बिना लड़े ही लौट गई। राणा तथा कल्याणमल के सरदार भी अपने–अपने स्थानों को चले गए।[46]

स्वयं बादशाह अकबर के आने की खबर सुनकर हाजी खाँ अपनी जान बचाकर गुजरात की तरफ भाग गया। हाजी खाँ के गुजरात चले जाने के बाद निशापुर के मुहम्मद कासिमखाँ ने अजमेर पर अधिकार कर लिया। तब बादशाह के लिए वहाँ पर शाही फौज भेजना आवश्यक हो गया। शाह कुलीखाँ के साथ गयी शाही फौज ने कुछ समय की लड़ाई के बाद जैतारण पर मुगल अधिकार स्थापित किया।[47]

छठें राज्य के अन्तिम दिनों में अकबर ने अजमेर भी प्रस्थान किया। यात्रा के दौरान बादशाह अकबर सांभर में कुछ समय के लिए रूका था। बादशाह के सांभर पहुँचने पर शरफुद्दीन हुसैन मिर्जा बादशाह की सेवा में उपस्थित होकर बादशाह से भेंट की। बादशाह ने शरफुददीन को मेड़ता पर अधिकार करने का शाही आदेश दिया। उसकी सहायतार्थ बादशाह ने तरसूं मुहम्मद खाँ, शाह बुदाग और उसके बेटे अब्दुल मतलब को आदि कई निकट जागीरदारों को मिर्जा की सहायता के लिए नियुक्त किया।[48] इस समय मेड़ता पर मालदेव का अधिकार था। मालदेव ने यह किला जगमाल को दे रखा था उसकी सहायता के लिए राठौड़ देवदास को 500 सैनिकों के साथ किले की सुरक्षा तथा जगमाल को सहयोग करने हेतु नियुक्त किया था। मुगल सेना के किले तक पहुँचने पर राठौड़ो ने किले में शरण लिया।[49] बाहर भीषण युद्ध शुरु हो चुका था। दोनो दलों के बीच चल रहे भीषण युद्ध में देवीदास अपनी जान की सुरक्षा न कर सका। इस पराजय के बाद दूसरे राजपूत सरदार गढ़ छोड़कर चले गए और मेड़ते पर शाही अधिकार हो गया।[50] इस युद्ध के बाद राव मालदेव ने मेड़ते पर कोई सेना न भेजी।[51]

इस घटना के बाद अकबर ने जोधपुर किले पर अधिकार करने की योजना बनाई जो उस समय हिन्दुस्तान के मजबूत किलों में से एक था। अकबर ने बिना समय व्यर्थ किए जोधपुर किले पर अधिकार करने हेतु व्यवस्थित सेना को भेजा। 7 नवम्बर 1562 ई0 को मालदेव की मृत्यु हो चुकी थी।[52] मालदेव वास्तव में अपने समय के शक्तिशाली शासकों में स्थान बनाए हुए था।[53]

राव चन्द्रसेन अपने पिता मालदेव की मृत्यु के बाद 31 दिसम्बर 1562 ई0 को मारवाड़ की गद्दी पर बैठा।[54] मालदेव ने ही अपनी मृत्यु के पूर्व ही मारवाड़ की गद्दी का अधिकार राव चन्द्रसेन को सौंपा था। अतः राव चन्द्रसेन अपने पिता की इच्छानुसार ही गद्दी पर बैठा।[55] मालदेव की मृत्यु के समय चन्द्रसेन सिवाणें में था। वहाँ से सिंहासनारूढ़ होने के लिए जब वह जोधपुर आया तो उसकी माँ झाली स्वरुप दे सती होना चाहती थी, परन्तु चन्द्रसेन ने झाली रानी को सती होने से रोक दिया तथा अपनी माँ को यह समझाया कि उसके सिंहानारुढ़ होने पर उसके बड़े भाई स्वाभाविक रुप से उसका विरोध कर सकते है। अतः झाली रानी उसके बड़े भाइयों को समझाने तथा चन्द्रसेन को मारवाड़ की गद्दी का टीका दिलवाने के बाद सती हुई।[56] चूँकि चन्द्रसेन, मालदेव का चौथा पुत्र था अतः जोधपुर राज्य के सरदार चन्द्रसेन से अप्रसन्न रहने लगे। तब इन सरदारों ने तीनो बड़े भाइयों के गद्दी प्राप्त करने के लिए प्रेरित करने लगे। इन सरदारो से प्रेरणा प्राप्त कर इन भाइयों ने अपने क्षेत्रों में विद्रोह शुरू कर दिया। चन्द्रसेन के सबसे बड़े भाई राम ने सोजत में, दूसरे भाई रायमल्ल ने दूनाड़ा में तथा तीसरे भाई उदयसिंह ने गांगाणी और बावड़ी पर अधिकार कर लूट–मार आरम्भ कर दिया। इन्हीं सरदारों ने चन्द्रसेन के बडे भाई राम को उकसाया और मुगल सम्राट अकबर से सहायता मांगने के लिए तैयार कर लिया। तब राम, ने सहायता प्राप्त करने के उद्देश्य से बादशाह अकबर से भेंट की। बादशाह अकबर ने राम की प्रार्थना स्वीकार कर उसकी सहायतार्थ शाही सेना को मुजफ्फर खाँ के साथ भेजा तथा साथ ही नागोर के शाही हाकिम हुसैनकुली को भी आदेश

दिया कि जोधपुर का किला राव चन्द्रसेन से हस्तगत कर लिया जाए तथा सोजत को राव राम को दे दिया जाए। राव राम ने एक बार पहले ही अपनी सहायतार्थ हुसैन कुली बेग के पास जा चुका था। हुसैन कुली भी राव राम की सहायतार्थ कई दिनों तक जोधपुर के किले को घेर रखा था। तब रावचन्द्रसेन ने सोजत का परगना रामसिंह को देना और हुसैन कुली को सेना का खर्च देना स्वीकार कर संधि कर लिया। पर यह संधि ज्यादा दिनों तक न टिक सकी तब रामसिंह ने स्वयं बादशाह अकबर से सहायता मांगी। हुसैनकुली के पास शाही आदेश पहुॅचते ही उसने जोधपुर किले को घेरने में देर न की। कई दिनों तक किले पर घेरा डाले रहने के बाद जब कोई सफलता मिलती न दिखाई दिया तो रानीसर नामक तालाब के रास्ते से किले के भीतर घुसने का प्रयास करने लगे (इसी तालाब से किले में पानी पहुँचाने का मार्ग था।) लेकिन उसमें भी सफलता न मिली। इधर कई महीनों से किले पर घेरा पड़े रहने के कारण किले के भीतर खाने–पीने की कमी भी होने लगी। ऐसी परिस्थिति में राव चन्द्रसेन के सरदारों ने उसे किले को छोड़कर जाने की सलाह दी। राव चन्द्रसेन ने अधूरे मन से इस सलाह को स्वीकार कर अपने परिवार सहित भाद्राजूण की तरफ जा उस परिस्थिति में उचित समझा। इस तरह राव चन्द्रसेन के किले से बाहर जाते ही किले पर शाही अधिकार हो गया। इस विषय में अकबरनामा में लिखा है कि मिर्जा शरफुददीन हुसैन की तरफ से छुट्टी पाकर बादशाह ने जोधपुर विजय करने की तरफ ध्यान दिया, जो उन दिनों वहाँ का सबसे मजबूत किला था। यह किला मालदेव की, जो भारत के बड़े राजाओं में से एक था, राजधानी था। मालदेव के मरने के बाद

उसका छोटा पुत्र चन्द्रसेन वहाँ का स्वामी हुआ। अफसरों के उसपर चढ़ाई करने पर मालदेव का ज्येष्ठ पुत्र राम उनसे जा मिला, जो पीछे से शाही सेवा में प्रविष्ट हो गया। बादशाह ने मुइनुद्दीन अहमदखाँ, फरंखूदी और मुजफ्फर मोगल आदि को हुसैन कुलीखाँ की सहायतार्थ भेज दिया। फल स्वरुप थोड़े समय में ही किला फतह हो गया।[57]

अपने राज्य के पन्द्रहवें वर्ष 1570 ई0 में अकबर ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह पर जियारत करने की मंशा से अजमेर की तरफ प्रस्थान किया। बादशाह के अजमेर पहुँचने पर राव चन्द्रसेन ने बादशाह की सेवा में उपस्थित होकर मुगल साम्राज्य की अधीनता स्वीकार की।[58] बादशाह अकबर के अजमेर में रहते हुए ही राव चन्द्रसेन का बड़ा भाई उदयसिंह जो काफी दिनों से फलोधी में रह रहा था, बादशाह से भेंट कर उसने भी अधीनता स्वीकार की। परन्तु जोधपुर राज्य की ख्यात में उदयसिंह का अपने पुत्र रायसिंह को शाही सेवा में छोड़कर भाद्राजूण जाना लिखा है।[59] मारवाड़ राज्य की ख्यातों में लिखा है कि इसके बाद ही बादशाही सेना ने भाद्राजूण को घेर लिया था। कुछ ही दिनों में खाद्य सामग्री का अभाव हो जाने के कारण इनको सिवाने की तरफ जाना पड़ा। वहाँ पहुँचने पर चन्द्रसेन ने सिवाना को केन्द्र बनाकर अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने का प्रयास करने लगा। बादशाह को जब यह समाचार मिला तो उसने बिना समय व्यर्थ किए कुछ सरदारों को चन्द्रसेन की बढ़ती हुई शक्ति को सीमित करने के लिए तथा उसे दण्डित करने के लिए भेजा। इस समय सोजत पर कल्ला का अधिकार था। जब कल्ला ने शाही सेना को सोजत की तरफ आते देखा तो वह घबड़ाकर सिरियारी की तरफ भाग

गया। लेकिन जब शाही सेना ने वहाँ भी उसका पीछा किया तो वह भागकर गारम की पहाड़ियों में छिपना ज्यादा मुनासिब समझा। कल्ला के चले जाने से चन्द्रसेन की शक्ति भी घटाने का भरसक प्रयत्न किया। इसके बाद शाही सेना सिवाना पहुँची तब चन्द्रसेन ने निश्चय किया कि इस समय किले के भीतर सुरक्षित रहना संभव नहीं है, तब उसने राठौड़ पत्ता के नेतृत्व में सिवाना का किला छोड़कर वहाँ से चले जाना उचित समझा। शाही सेना ने लम्बे समय तक किले को घेरे रखा परन्तु मनमाफिक परिणाम सामने न आने पर रायसिंह ने अजमेर में बादशाह से भेंट की तथा शाही सैनिकों को भेजने की प्रार्थना की। रामसिंह की प्रार्थना को स्वीकार कर बादशाह अकबर ने तय्यब खाँ, सैयदबेग तोकवाई, सुमानकुली, तुर्क खुर्म, अजमतखाँ तथा शिवदास आदि सरदारों को रायसिंह की सहायतार्थ भेजा तब चन्द्रसेन ने गंभीर परिस्थितियों में पहाड़ों में चले जाने का फैसला लिया। अतः चन्द्रसेन को इधर–उधर पहाड़ों में भागना पड़ा। चन्द्रसेन के भाग जाने को ही अपने कार्य की इति समझ बिना बुलाए ही शाही अफसर वापस लौट गए, जिससे बादशाह उनसे बड़ा नाराज हुआ।[60] इसके बाद चन्द्रसेन को अधीन बनाने हेतु जलालखाँ को सिवाना जाने का शाही आदेश दिया तथा उसके साथ सैयद अहमद, सैयद हाशिम, शिमालखाँ आदि अमीर भी भेजे गए।

इधर कई महीनों से चन्द्रसेन का पीछा करते हुए शाही सैनिक भी थक गए थे जिससे अब उनका भी मनोबल धीरे–धीरे टूटने लगा था तथा उस पहाड़ी क्षेत्र में खाने–पीने की पूरी व्यवस्था न होने के कारण सैनिकों के साथ–साथ घोड़े भी दुर्बल होने लगे थे। सेना की स्थिति ठीक न

जानकर अकबर ने इन्हें वापस आने का आदेश दे दिया। वापस आते समय जब जलालखाँ रास्ते में ही था तभी उसे सिवाने के शाही सेना के सरदार रामसिंह, सुल्तानसिंह और अलीकुली ने संदेश भेजा कि ये लोग बादशाह की आज्ञानुसार चन्द्रसेन को अधीन बनाने के लिए प्रयासरत है परन्तु उसके पहाड़ों मे छिप जाने के कारण इस कार्य में सफलता नही मिल पा रही है। अतः आप संभव हो तो शीघ्र ही सहायतार्थ यहाँ आ जाए। इस संदेश के प्राप्त होते ही जलालखाँ के सिवाना जाने की सूचना प्राप्त होते ही जलालखाँ ने सिवाना की तरफ प्रस्थान किया। जब चन्द्रसेन को जलालखाँ के सिवाना जाने की सूचना प्राप्त हुई तो वह इनपर मार्ग में धोखे से वार करने की तैयारी करने लगा परन्तु चन्द्रसेन की इन तैयारियों का पता शीघ्र ही शाही सैनिकों को भी चल गया। चन्द्रसेन ने काणूजा की पहाड़ियों में शरण लेकर शाही सेना पर आक्रमण किया पर इसमें उसके बहुत से आदमी मारे गए और उसे पहाड़ों में वापस जाना पडा।[61] इस पर भी कुछ समय तक तो वह पहाड़ों से निकल कर शाही सेना का सामना करता रहा।[62] इधर शाही सेना रामगढ़ के किले में पड़ाव डाले हुए थी कि ठाकुर देवीदास नामक एक व्यक्ति ने आकर शाही सेना के साथ समय व्यतीत कर रहा है। शाही सैनिकों के वहाँ पहुँचने पर कल्ला ने चन्द्रसेन के वहाँ होने की खबर को मानने से इन्कार कर दिया तब शाही सेना वापस आ गयी परन्तु वापस लौटने पर शिमालखाँ देवीदास के गलत सूचना देने पर उससे काफी रूष्ठ हो गया था अतएव उसने देवीदास को बहाने से बुलाकर बंदी बनाने की योजना बनाई परन्तु यह योजना भी सफल न हो सकी और देवीदास अपनी योग्यता से वहाँ से भागने में

सफल हो गया। परन्तु वह इस घटना को भूला नहीं और शिमालखाँ से बदला लेने को आतुर हो गया। देवीदास ने एक दिन चन्द्रसेन के साथ मिलकर शाही को आचानक घेर कर उस पर आक्रमण कर दिया। देवीदास ने यह आक्रमण शिमालखाँ को मारने की मंशा से किया था। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि देवीदास ने यह आक्रमण बहुत ही जल्दबाजी में किया था, तभी तो उसने शिमाल खाँ के स्थान पर जलालखाँ को मार दिया। इस घटना के बाद शीघ्र ही देवीदास और चन्द्रसेन पुनः भागने में सफल हो गए।

इस घटना से शाही सेना का बल और भी टूट गया। यह देख कल्ला देवकोर के किले में चला आया और आस–पास के राजपूतों को एकत्रित कर शाही सेना से एक बार फिर युद्ध करने की तैयारी करने लगा। इससे उस सेना के मार्ग में नवीन बाधा उठ खड़ी हुई और वह लाचारी के कारण सिवाना की तरफ का ध्यान छोड़कर देवकोर के किले पर आक्रमण करने में लग गई।[63]

जैसे ही इस पूरे घटनाक्रम की जानकारी अकबर को मिली उसने तुरन्त ही शाहबाजखाँ को वहाँ जाने का आदेश दिया। जहाँ शाहबाज खाँ देवकोर पहुँचा तो उसने देखा कि शाही सेना ने किले को घेर रखा था परन्तु सभी आक्रमण विफल हो रहे थे तभी शाहबाजखाँ वहाँ अचानक पहुँच गया और एकाएक किले पर चढ़ाई कर दी। इससे शाही सेना का गिरता हुआ मनोबल फिर से उठ खड़ा हुआ और कल्ला के थोड़े बहुत सैनिकों ने जल्द ही शाही सेना के सामने घुटने टेक दिए और अंततः इस किले पर शाही अधिकार हो गया। शाहबाजखाँ के समुचित प्रबन्ध और

प्रबल हमलों के कारण अन्त में उन्होंने आत्मसमर्पण कर गढ़ शाही अफसरो के हवाले कर दिया।[64]

इन घटनाक्रमों के बीच राव चन्द्रसेन का परिवार पोकरण में रह रहा था। 1575 ई0 के अक्टूबर महीने में जैसलमेर के रावल हरराज ने 7000 सेना के साथ जाकर पोकरण को घेर लिया। चन्द्रसेन ने रकम लेकर पोकरण भाटियों को सौप दिया।[65] जैसलमेर के इतिहास से पाया जाता है कि जैसलमेर के रावल हरराज के छोटे पुत्र सुरतानसिंह के बाद अकबर की सेवा में उपस्थित होने पर उसने पोकरण और फलोदी के प्रदेश, जो चन्द्रसेन ने ले लिए थे, पुनः भाटी राज्य के अधिकार में करा दिए।[66] लक्ष्मीचन्द–लिखित 'तवारीख जैसलमेर' में लिखा है कि बादशाह ने फलोदी का परगना कुंवर सुरतान सिंह को दिया। चन्द्रसेन ने पोकरण का ठिकाना 10,000 सोनइया लेकर गिरवी रखा था जिस पर उसकी फौज आई, तुरन्त हारकर लौट गई।[67]

अकबर के 25 वें राज्य वर्ष 1580 ई0 में चन्द्रसेन ने पहाड़ों के बीच से निकलकर अजमेर तथा आस–पास क्षेत्रों को परेशान करना तथा लूटमार करना प्रारम्भ कर दिया। चन्द्रसेन के इस उपद्रव की खबर मिलते ही अकबर ने पाइन्दा मुहम्मदखाँ मुगल, सैयद, हाशिम, सैयद कासिम को चन्द्रसेन का उपद्रव शान्त करने तथा उसे दण्डित करने का आदेश देकर भेजा। हर बार की तरह इस बार भी चन्द्रसेन ने शाही सेना का सामना कर उन्हें हराने की कोशिश कर रहा था लेकिन इस बार भी चन्द्रसेन अपने इरादों में कामयाब नहीं हो सका, और उसकी पराजय हुई।[68]

7 जुलाई 1580 ई0 को राव चन्द्रसेन ने कठिनाई से थोडी सेना का

संगठन कर सोजत पर आक्रमण कर दिया तथा अधिकार हो जाने पर सारण के पहाड़ियों को अपना निवास स्थान बनाया[69] तथा इन्हीं पहाड़ियों में 11 जनवरी 1581 ई0 में राव चन्द्रसेन की मृत्यु हो गयी।[70] चन्द्रसेन की मृत्यु के बाद जोधपुर राज्य को खालसा में परिवर्तित कर दिया गया।

तीन साल तक जोधपुर राज्य को खालसा में रखने के बाद अकबर ने जोधपुर राज्य की गद्दी का अधिकार चन्द्रसेन के बड़े भाई तथा मालदेव का ज्येष्ठ पुत्र उदयसिंह को सौंप दिया तथा राजा का खिताब से भी नवाजा। उदयसिंह उस समय मुगल साम्राज्य की सेवा में था तथा अगस्त 1583 ई0 को जोधपुर राज्य में प्रवेश कर सिंहासनारूढ़ हुआ।[71]

इसके बाद ही समावली से सारा राज–परिवार भी जोधपुर आ गया।[72] उदयसिंह अपने विद्यार्थी जीवन से ही 'मोटा राजा' के नाम से प्रसिद्ध था। वीर विनोद और ओझा ने लिखा कि उदयसिंह जरूरत से ज्यादा मोटा था, इसलिए 'मोटाराजा' नाम पड़ा।[73] कुछ लोग ऐसा मानते है कि इसने चारणों, बाह्मणों आदि की भूमि छीन ली थी, जो एक बुरा कृत्य था। लोग ऐसे व्यक्ति का नाम लेना उचित नहीं समझते थे, जिससे उसे 'मोटाराजा' कहने लगे।[74]

राव चन्द्रसेन की मृत्यु के बाद उसका सबसे छोटा बेटा रायसिंह अपने पिता की मृत्यु के बाद आगरा से जोधपुर आया और जोधपुर पर अधिकार कर लिया। लेकिन उसके अधिकार क्षेत्र में सिर्फ सोजत का क्षेत्र ही शामिल था।[75] ऐसा प्रतीत होता मोटाराजा उदयसिंह के गद्दी संभालते ही मारवाड़ के राजनैतिक इतिहास में एक नया युग प्रारम्भ हो गया क्योंकि मारवाड़ राज्य पर मुगल साम्राज्य का अधिकार बढ़ रहा था। जब

उदयसिंह को पता चला कि उसके पिता मालदेव ने उसे अपनी विरासत में हिस्सा नहीं दिया तो वह मुगल दरबार में चला गया तथा अकबर की सेवा स्वीकार की तथा 1570 ई0 से वह मुगल सेवा में ही रहा। 1577 ई0 में अकबर के 22 वें वर्ष में राजा मधुकर बुंदेले के खिलाफ शाही भेजी गई जिसमें मोटाराजा उदयसिंह भी शामिल था।[76]

इधर गुजरात में मुजफ्फरखाँ ने अपने सैनिक के साथ मिलकार काफी सम्पत्ति एकत्र कर ली थी जिसके कारण पट्टन के अफसरों को वहाँ से जाना पड़ा। वहाँ से जाने के बाद अफसरों ने मुज्फ्फर खाँ पर आक्रमण करने का मन बनाया तथा उसपर आक्रमण करने के लिए प्रस्थान किया। इस सेना में मिर्जा खाँ, सुरताण राठौड़ आदि सेना के माध्य भाग में थे, मुहम्मद हुसैन, फीरूजा, मीर हाशिम आदि दाहिनी तरफ और मोटाराजा उदयसिंह रायदुर्गा बायीं ओर थी। शाही सेना के युद्ध के लिए प्रस्थान करने की सूचना पाते ही मुजफ्फरखाँ ने अपनी सेना को उस्मानपुर में व्यवस्थित किया। परन्तु इस युद्ध में मुजफ्फर खाँ अधिक देर तक नहीं टिक सका और मामूरा बाद होता हुआ महीन्द्री की तरफ चला गया। शाही सेना के इस विजय की सूचना अकबर को 4 फरवरी 1584 ई0 में पहुँचा।[77] अगले वर्ष ज्येष्ठ मास में उदयसिंह ने जोधपुर के गढ़ पर चढ़ आने वाले भाद्राजूण के मीणा हरराजिया को उसके सोलह साथियों सहित मारा।[78]

उदयसिंह की सेवाओं से प्रसन्न होकर अकबर ने 1584 ई0 में सोजत का प्रानत भी उदयसिंह को दे दिया। इसी वर्ष सैयद दौलखाँ ने खंभात पर अधिकार कर लिया। अकबर ने शाही अमीरों और सरदारों को

दौलतखाँ पर आक्रमण करने की आज्ञा दी तथा इस सेना में उदय सिंह भी शामिल था। मोटाराजा उदयसिंह अत्यधिक बहादुरी से लड़े तथा सैयद दोलत खाँ पर विजय हासिल किया।[79]

1587 ई0 में उदयसिंह ने अपनी पुत्री मानबाई का विवाह शाहजादे सलीम के साथ किया था।[80]

सुरताण के साथ लड़ाई होने पर रायसिंह मारा गया तब बीजा (हरराजोत) अकबर की सेवा में गया तथा अकबर को प्रसन्न कर सिरोही राज्य पर अधिकार प्राप्त कर लिया। बादशाह सुरताण के व्यवहार से रूष्ठ हो चुका था अतः बादशाह ने उदयसिंह और जामबेग को उसके विरूद्ध भेजा और बीजा को भी उनके साथ भेजा। शाही सेना के आगमन की सूचना मिलते ही सुरताण सिरोही को छोड़कर आबू पर्वत की ओर भाग खड़ा हुआ। युद्ध शुरू होने पर बीजा मारा गया। आबू पर्वत पर विजय हासिल न होने पर शाही सेना लौट आयी। तदनन्तर देवड़ा कल्ला को सिरोही की गद्दी पर बिठाकर उदयसिंह शाही फौज के साथ लौट गया, परन्तु उदयसिंह के वापस होते ही सुरताण ने पुनः सिरोही पर आधिकार कर लिया।[81]

राव मालदेव के पुत्र रायसिंह को बादशाह ने सिवाना का क्षेत्र दिया था। उसकी मृत्यु के बाद सिवाना क्षेत्र का अधिकार उसके पुत्र कल्याणदास (कल्ला) को मिला। उसने एक बार आपस की लड़ाई में एक छोटे मनसबदार की हत्या कर दी थी। बादशाह को इस घटना की सूचना मिलते ही बादशाह ने उदयसिंह को आदेश दिया कि वह तुरन्त सिवाना की ओर रवाना हो जाए तथा कल्ला को मारकर सिवान को सुरक्षित करे।

2 जनवरी 1589 ई0 को उदयसिंह ने गढ़ में प्रवेश किया। कल्ला ने युद्ध प्रारम्भ होने पर बड़ी ही वीरता से शाही सेना का सामना किया। परन्तु वह ज्यादा देर तक शाही सेना का सामना करने में सक्षम नहीं था। अंततः उदयसिंह का सिवाना पर अधिकार हो गया तथा इस युद्ध में कल्ला मारा गया।[82]

24 जुलाई 1592 ई0 को बादशाह अकबर ने कश्मीर की यात्रा के लिए प्रस्थान किया तथा रावी नदी पार करने के बाद बादशाह ने कलीजखाँ के साथ मोटा राजा उदयसिंह को भी लाहौर का प्रबंध करने के लिए नियुक्त किया।[83]

11 जुलाई 1595 ई0 में लाहौर में ही दिल का दौरा पड़ने से मोटाराजा उदयसिंह की मृत्यु हो गयी।[84] उदयसिंह की मृत्यु के समय जोधपुर राज्य में सोजत, सिवाना, फलोदी, सतलमेर और जैतारण परगना सम्मिलित थे। मृत्यु के समय उदयसिंह ने अपने बेटे सूरजसिंह के लिए मारवाड़ की 'गद्दी' सुरक्षित कर दी थी।

अपनी मृत्यु के समय उदयसिंह को 1500 का मनसब प्राप्त था जबकि उसके पुत्र को प्रारम्भिक जीवन में ही 2000 जात तथा सवार का मनसब प्राप्त था।[85]

मोटाराजा उदयसिंह की मृत्यु के बाद उनका छठा पुत्र सूरसिंह को अपने पिता की इच्छानुसार जोधपुर की टीका मुगल सम्राट अकबर द्वारा दिया गया। अकबर द्वारा टीका देने की रस्म 23 जुलाई 1595 ई0 को सम्पन्न किया गया।[86] इसी अवसर पर सूरसिंह को 2000 जात तथा सवार का मनसब भी अकबर द्वारा प्रदान किया गया। उदयसिंह की मृत्यु के

समय बादशाह अकबर स्वयं उदयसिंह की हवेली में सूरसिंह को सान्त्वना देने गया था।[88]

बादशाह ने सूरसिंह को मारवाड के नौ परगने, गुजरात के चार परगने, मालवा का एक परगना, दक्षिण का एक परगना और मेवाड़ का एक परगना कुल मिलाकर 16 परगनों का अधिकार सूरसिंह को सौंपा था।[89]

इसके कुछ दिनों बाद ही जब गुजरात से शाहजादा मुराद और खानखाना को दक्षिण की तरफ जाना पड़ गया तो अकबर ने गुजरात का क्षेत्र खाली हो जाने के कारण राजा सूरसिंह को गुजरात प्रबंध के लिए भेजा।[90] साथ ही अकबर ने काजी हसन और अनेक शाही अफसरों को भी सूरसिंह के साथ गुजरात जाने का आदेश दिया।[91]

अकबर के 24 वें राज्य वर्ष 1597 ई0 जब सभी प्रमुख सरदार दक्षिण में व्यस्त थे तभी मुजफ्फर गुजराती के पुत्र बहादुर ने जिसका पिता राजपीपला के स्वामी भी शरण पाए हुए था, उपद्रव प्रारम्भ कर धन्धुका नगर में लूट–पाट मचाया। जैसे ही इस घटना का समाचार सूरसिंह को प्राप्त हुआ उसने बिना समय गवाए बहादुर पर आक्रमण कर दिया और बहादुर को वहाँ से भागने पर मजबूर किया।[92]

अकबर के 44 वें शासकीय वर्ष 1599 ई0 में उसने अहमदनगर को विजित करने के उद्देश्य से शहजादा मुराद को दक्षिण की ओर भेजा परन्तु मार्ग में जाते समय ही मिरगी की बीमारी से मुराद का देहान्त हो गया। इन विकट परिस्थितियों में बादशाह ने तुरन्त मुराद के स्थान पर दानियाल को दक्षिण भेजना उचित समझा।[93] साथ ही सूरसिंह को भी

जल्द से जल्द दक्षिण पहुँचने का आदेश दिया गया।[94] इस विषय पर जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है–'दक्षिण जाते समय राजा सूरसिंह मार्ग में सोजत में रूक गया और आगे बढ़ने में ढ़िलाई करने लगा। यह खबर बादशाह को लगने पर वह उससे बड़ा नाराज हुआ और बादशाह ने सोजत का पट्टा उसके भाई शक्तिसिंह के नाम कर दिया। इस पर भंडारी मान, जो सोजात में था, वहाँ का अधिकार शक्तिसिंह भंडारी मान को सौंप कर जोधपुर चला गया। एक वर्ष तक सोजत पर शक्तसिंह का अधिकार रहा। इसी बीच बादशाह के बुरहानपुर में रहते समय भाटी गोयंददास तथा राम राठौड़ (रतनसिंह होत) ने उनके पास उपस्थित हो सोजत का पट्टा पुनः राजा के नाम लिखवा लिया, जिससे शक्तसिंह को वहाँ का अधिकार छोड़ना पड़ा। इसके पूर्व ही राजा सूरसिंह की सेना ने सोजत पर घेरा डाल दिया था। शक्तिसिंह की तरफ से विशनदास ने मुकाबला किया पर उसकी पराजय हुई।[95]

बादशाह अकबर के 45 वें शासकीय वर्ष 1600 ई0 में मियां राजू दक्षिणी के नाम से प्रसिद्ध निजामशाही राज्य के एक बड़े भाग का स्वतन्त्र स्वामी ने उपद्रव करना प्रारम्भ किया। स्वतन्त्र स्वामी बनने से पूर्व वह सआदतखाँ का चाकर था तथा सआदतखाँ के शाही अधीनता स्वीकार कर लेने के बाद राजू ने सआदतखाँ के साथियों को अपने साथ मिलाने के साथ ही राजू ने उसके हाथियों को लूट कर अपनी शक्ति को सुदृढ़ किया। उसके बाद नासिक तथा आस–पास के क्षेत्रों में उपद्रव कर उन क्षेत्रों को अधीकृत किया। इस घटना की खबर मिलते ही शाहजादे दानियाल ने दोलतखाँ को 5000 फौज का नेतृत्व देकर राजू के उपद्रव

को शांत करने के उद्देश्य से भेजा। इस शाही सेना के साथ दानियाल ने राजा सूरसिंह सआदत बारहा, शहबाजखाँ, बुरहानुलमुल्क आदि को जाने का आदेश दिया। राजा सूरसिंह ने बड़ी ही वीरता से शत्रु का समना किया तथा मिंया राजू द्वारा अधीकृत क्षेत्रो पर शाही अधिकार स्थापित किया।[96]

बादशाह के 47 वें शासकीय वर्ष 1602 ई0 में खुदाबन्द खाँ हब्शी ने पातरी और पाटन की सरकार में विद्रोह की अग्नि भड़काई। इस घटना की जानकारी प्राप्त होते ही खानखाना ने सूरसिंह और जालोर के गजनीखाँ की अध्यक्षता में एक सेना उसे दण्ड देने के लिए भेजी। सूरसिंह और गजनी खाँ के नेतृत्व में भेजी गई शाही सेना ने वहाँ पहुँच कर शत्रु का दमन किया और शांति स्थापित की।[97]

कुछ समय बाद यह सूचना मिली कि निजामुलमुल्क का सेना पति मलिक अम्बर जो जाति का हब्शी और अहमदनगर का प्रधानमंत्री था, तिलंगाना पहुँच गया है। इस संकट को खत्म करने के लिए खान–खाना ने अपने पुत्र ईरिज को उधर के बखेड़े का अन्त करने के लिए भेजना उचित समझा। वहाँ पहुँच कर ईरिज ने मीर मुर्तजा और शेरख्वाजा के साथ मिलकर शुत्र पर आक्रमण करने की योजना बनाई। शाही अधिकारियों की इस योजना का पता लगने पर अम्बर ने कान्धार की तरफ सही समझा। तभी हब्शी फरहाद भी अपने दो–तीन हजार सवारों के साथ मलिक अम्बर भी सहायतार्थ पहुँच गया था। दोनो सेनाएँ आमने–सामने आने पर युद्ध के लिए उद्यत हो रही थी। शाही सेना में ईरिज अपने पिता के सैनिको और मनसबदारो के साथ बीच में रहा। सेना के अग्रभाग

(हरावल) में सूरसिंह, बहादुरूलमुल्क, पर्वतसेन खत्री, मुकुन्दराय, रायमल दरबारी का पुत्र गिरधरदास आदि थे तथा दाहिनी तरफ मीर मुर्तजा के साथ बाई ओर अली मर्दान बहादुर आदि से शाही सेना सुसज्जित थी। युद्ध का आरम्भ होने पर शाही सेना ने बड़े ही जोश के साथ शुत्र सेना पर आक्रमण किया लेकिन शाही सेना के दाहिनी तथा बाई तरफ के शाही सैनिकों की जरा सी लापरवाही के कारण मलिक अम्बर और हब्शी फरहाद युद्ध क्षेत्र से भागने में सफल हो गए। इन दोनों के भागने के पश्चात् शाही सेना ने शुत्र सेना के सामानों पर अधिकार कर लिया। इस विजय के बाद शाहजादा दानियाल ने प्रसन्न होकर बादशाह को भी पत्र द्वारा इस विजय की सूचना दी।[98] बादशाह ने इस विजय का समाचार पाकर विजयी अधिकारियों के मनसब में वृद्धि कर उन्हे घोड़े और सिरोपाव आदि पुरस्कार में दिए।[99] साथ ही सूरसिंह को शाही नक्कारा भी उपहार में दिया।[100] इसी समय बादशाह अकबर ने शाहजादा दानियाल को लिखा कि सूरासिंह बहुत दिनों से दक्षिण में रहने के कारण अब दरबार में हाजिर होने और अपने देश के कार्यो की देख–रेख के लिए जाने को उत्सुक है, अतएव गोविन्ददास भाटी और उसके साथ की सेना को अपने पास रखकर सूरसिंह को दरबार में आने और स्वदेश जाने की छुट्टी दे।[101] बादशाह से आज्ञा प्राप्त कर सूरसिंह 1604 ई. में जोधपुर चले गए। इस अवसर पर बादशाह ने इन्हें सवाई राजा' के खिताब के साथ मेड़ता का आधा प्रान्त तथा जैतारण जागीर में दिए थे।[102]

जहाँगीर का मारवाड के साथ संबध :–

15 अक्टूबर 1605 ई. को बादशाह अकबर से देहान्त हो गया तथा उसका ज्येष्ठ पुत्र सलीम जहाँगीर के नाम से दिल्ली के तख्त पर बैठा।[103]

जिस समय जहाँगीर दिल्ली के तख्त पर आसीन हुआ था उसी समय गुजरात में भी विद्रोह के स्वर मुखर हो रहे थे। यह विद्रोह लालमिंया के नेतृत्व में संगठित हो रहा था। इस पर जहाँगीर ने सूरसिंह को गुजरात जाने का आदेश दिया। सूरसिंह ने गुजरात पहुँचकर विद्रोही लालमिंया का दमन किया तथा साथ ही मांडव को अधीन किया। व्रिदोही लालमिंया का दमन करने में सूरसिंह की सेना के राठौर सूरजमल जेतमालोत चांपावट, राठौर, गोपालदास मांडणोत चांपावट, राठौर हरीदास चांदावत, राठौर, गोपालदास ईडरिया आदि कई सरदार मारे गए। वहाँ का विद्रोह शांत कर सूरसिंह 23 फरवरी 1607 ई. को जोधपुर वापस आ गया।[104]

1 अप्रैल 1608 ई. जहाँगीर के तीसरे शासकीय वर्ष में सूरसिंह जहाँगीर की सेवा में दरबार में उपस्थित हुआ। इसी वर्ष बादशाह ने खानखाना को एक रत्नजटिल तलवार और सिरोपाव आदि देकर उसे दक्षिण के कार्य पर जाने का आदेश दिया तथा साथ ही सूरसिंह को भी खानखाना के साथ दक्षिण में भेजने का निश्चय कर सूरसिंह का मनसब बढ़ाकर 3000 जात तथा 2000 सवार कर दिया गया।[105]

1609 ई. में जहाँगीर ने मेवाड़ के राणा अमरसिंह का दमन करने के लिए महाबतखाँ को मेवाड़ के अभियान पर भेजा। महाबतखाँ जब मोही पहुँचा तो उसे पता चला कि राणा का पूरा परिवार सूरसिंह के इलाके सोजत में शरण लिए हुआ था। तब राणा के परिवार का पता लगाने के

लिए महाबतखाँ ने कर्मसेन को सोजत का अधिकार सौंपा। सूरसिंह को इसकी सूचना मिलते ही सूरसिंह ने गोविन्ददास भाटी को भेजा। महाबतखाँ से बातचीत का भी परिणाम न निकला तो गोविन्ददास कुँवर गजसिंह के पास चला गया। कुछ समय बाद महाबतखाँ की जगह अब्दुल्लाखाँ की नियुक्ति हुई। अब्दुल्लाखाँ ने वहाँ पहुँचकर कुँवर गजसिंह तथा गोविन्ददास से मुलाकात कर नाडोल और सोजत का अधिकार उन्हें सुपुर्द कर दिया। सोजत और नाडोल का अधिकार मिलने के बाद गजसिंह ने वहाँ से कर्मसिंह और गजनी खाँ को निकालकर सोजत और नाडोल पर अधिकार कर लिया।[106]

सितम्बर 1613 ई. में जहाँगीर स्वयं अजमेर गया और सूरसिंह मुगल सम्राट के बुलाने पर उनसे मिलने गया।[107] इस अवसर पर सूरसिंह को फलोदी का परगना दिया गया और दिसम्बर 1613 ई. में मेवाड़ को अधिकृत करने के लिए खुर्रम के साथ सूरसिंह को भी नियुक्त किया।[108] राणा के विरूद्ध जाते समय मेवाड़ के पहाड़ों के क्षेत्रों का ज्ञान खुर्रम ने सूरसिंह से प्राप्त किया क्योंकि सूरसिंह को इन क्षेत्रों की विस्तृत जानकारी थी जिसका उपयोग शाहजादा खुर्रम ने मेवाड़ अभियान के दौरान किया। सूरसिंह की सलाह पर ही खुर्रम ने विभिन्न सैनिक डाक स्थापित किए तथा सदरी का थाना राजकुमार गजसिंह को सुपुर्द किया।[109] महाराणा अमरसिंह को सूचना प्राप्त हुई कि शाही सेना लूटमार करती हुई आगे बढ़ रही है तो धीरे–धीरे महाराणा का भी कार्य क्षेत्र संकुचित होने लगा। तब अमरसिंह ने मुगल सम्राट से संधि करने की पहल की। इस सन्धि को मूर्त रूप देने के लिए जब अमरसिंह का पुत्र करनसिंह खुर्रम के दरबार में गया

जो उस समय गोगुन्डा में था, तब वहाँ पर सूरसिंह भी उपस्थित था।[110]

जहाँगीर के 10वें शासकीय वर्ष में सूरसिंह को 5000 जात तथा 3000 सवार का मनसब दिया गया।[111] मुगल सम्राट द्वारा किसी राजपूत को दिया गया यह मनसब अब तक का सबसे अधिक मनसब था।

सूरसिंह को एक बार फिर दक्षिण का अधिकार सुपुर्द किया गया और उसके दक्षिण जाते समय बादशाह द्वारा उसे एक कश्मीरी शाल और हीरों का हार भेंट किया गया। इस अवसर पर सूरसिंह ने भी बादशाह को 43,000 रू० की वस्तुएँ उपहार स्वरूप दी तथा मार्च 1615 ई. में ही 100 मुहरें व्यक्तिगत रूप से बादशाह को भेंट की। अप्रैल 1615 में 7 हाथी जिसमें प्रसिद्ध हाथी रानावत भी शामिल था; सूरसिंह ने बादशाह को दिए।[112] दक्षिण रवाना होने के कुछ समय बाद सूरसिंह जोधपुर चला आया। जल्द ही सूरसिंह पुनः मुगल दरबार में अपने पुत्र गजसिंह के साथ उपस्थित हुआ। जहाँगीर ने उसका मनसब बढ़ाकर 5000 जात तथा 3300 सवार का कर दिया।[113] इसी अवसर पर सूरसिंह को खान जहाँ के साथ दक्षिण में नियुक्त किया गया।[114]

जालोर की जागीर जिस पर बिहारी पठानों का अधिकार था, बादशाह जहाँगीर ने उसे सूरसिंह के पुत्र गजसिंह को सौंप दिया[115] तथा यह सख्त आदेश दिया कि उन बिहारी पठानों को वहाँ से खदेड़ कर बाहर करे। उसने तुरन्त ही मारवाड़ राज्य के अमीरों को पत्र लिखकर बुलवाया तथा जालोर के विरूद्ध अभियान में शामिल होने के लिए लिखा। अपने अमीरों की सहायता से गजसिंह ने जालोर के किले को घेर लिया तथा 1619 ई. के अन्त तक गजसिंह ने जालोर पर अधिकार कर लिया।

1618 ई. में बादशाह जहाँगीर ने सूरसिंह को दक्षिण में भेजना तय किया।[116] बादशाह के आदेशानुसार सूरसिंह ने बुरहानपुर की तरफ प्रस्थान किया तथा गजसिंह, राठौर राज सिंह, खीवावत, नाथू व्यास और भंडारी लूना को जोधपुर का प्रशासन संभालने का आदेश देकर जोधपुर रवाना किया।[117]

महकर में रहते समय सूरसिंह को बीजापुरियों ने घेर लिया था। कुम्भकर्ण ने पाँच सवारों के साथ जाकर बीजापुर वालों पर आक्रमण किया तो सूरसिंह और खान–खाना ने भी उनपर चढ़ाई कर दी और उन्हें वापस भागने पर विवश कर दिया। इस विजय के उपरान्त सूरसिंह ने जेतावत आसकरण देवीदासोत से बगड़ी जब्तकर कुम्भकर्ण को दे दी और उसे देश जाने की भी इजाजत दे दी।

दक्षिण में रहते हुए महकर के थाने पर ही 7 सितम्बर 1619 ई. में राजा सूरसिंह ने अन्तिम सांस ली।[118] तुजुक–ए–जहाँगीरी से पाया जाता है कि सूरसिंह के मृत्यु का समाचार बादशाह जहाँगीर के पास शनिवार 18 सितम्बर 1619 को पहुँचा था।[119] जिस समय सूरसिंह की मृत्यु हुई उस समय उसके अधीनता में मारवाड़ राज्य के 16 परगने[120] शामिल थे– 1. जोधुपर, 2. सिवाना, 3. जैतारण, 4. जालोर, 5. सतलमेर, 6. सोजत 7. मेड़ता 8. फलोदी 9. संचोर 10. तेखाड़ा 11. मेरवाड़ा, 12. नाडोल के साथ गोरवाड़ा 13. मालावा का रमताल 14. मालावा का भाड़नगर 15. दक्षिण का कोरगाँव 16. गुजरात का राधनपुर।

अपने जीवन के अन्तिम दिनों मे सूरसिंह ने अकबर और जहाँगीर के समय में सभी महत्वपूर्ण सैनिक अभियान में हिस्सा लिया था। बीते दो

दशकों में बादशाह द्वारा दक्षिण में भेजने गए सभी अभियानों में सूरसिंह को भेजा गया था। सूरसिंह के काल मे मारवाड़ की प्रतिष्ठा तथा क्षेत्र में मुगल सम्राटों की सेवा से काफी वृद्धि हो गयी थी। मुगल सम्राट ने सूरसिंह की सेवा से प्रसन्न होकर ही 'राजा' की उपाधि से सम्मानित किया जो मारवाड़ के लोगों के लिए गौरव की बात थी।[121]

सूरसिंह की मृत्यु के बाद उनका पुत्र गजसिंह मारवाड़ की गद्दी पर बैठा। जिस समय महकर में सूरसिंह ने अन्तिम सांस ली उस समय गजसिंह जोधपुर की व्यवस्था को संभाल रहा था। पिता की मृत्यु का समाचार पाकर उसने तुरन्त जोधपुर से बुरहानपुर की तरफ प्रस्थान किया तथा जोधपुर का किले और जोधुपर की सरकार का कार्य अपने एक विश्वसनीय अमीर राजसिंह कूंपावत को सौंप दिया था।[122] बादशाह जहाँगीर ने अब्दुल रहीम खानखाना के पुत्र दाराब खाँ के हाथों गजसिंह के लिए 'टीका' भेजा था। तब दराबखाँ ने उसे 5 अक्टूबर 1619 ई. में बुरहानपुर में टीका दिया।[123] सूरसिंह ने अपनी जीवित अवस्था में ही अपना सारा राज कार्य गजसिंह को ही सौंप दिया था। गजसिंह की योग्यता को ध्यान में रखते हुए जोधपुर राज्य के सात परगने–जैतारण, सोजत सिवाना, सतलमेर, जोधपुर, तेरवाड़ा और गोरवाड़ा परगनो के साथ 3000 जात और 2000 सवार का मनसब के अतिरिक्त 'राजा' की उपाधि भी गजसिंह को दिया गया।[124]

सूरसिंह की मृत्यु के बाद मुगल बादशाह जहाँगीर ने फलोदी जालोर, संचोर और मेड़ता के क्षेत्र वापस ले लिया। फलोदी का क्षेत्र गजसिंह के छोटे भाई सबल सिंह को, जबकि जालोर, संचोर और मेड़ता

का अधिकार शाहजाद खुर्रम को दे दिया।[125]

मुगल सम्राट द्वारा टीका मिलने के बाद गजसिंह को दाराब खाँ के साथ महकर के थाने पर भेजा गया। गजसिंह के महकर पहुँचने के कुछ दिनों बाद अहमद नगर राज्य से अमरचंपू के नेतृत्व में सेना ने महकर के शाही सैनिकों को घेर लिया। तीन माह लम्बे चले इस युद्ध में गजसिंह ने शाही सेना के हरोल में रहकर कई लड़ाईयाँ लड़ीं। 2000 शाही सैनिकों के साथ गजसिंह ने अहमदनगर की सेना को हराकर महकर का थाना सुरक्षित किया।[126] दक्षिण के क्षेत्रों में गजसिंह की सेवाएँ देखकर जहाँगीर ने प्रसन्न होकर उसे 'दलथमन' की उपाधि दी।[127] साथ ही एक हजार जात तथा एक हजार सवार के मनसब की वृद्धि की।[128]

इस विजय के बाद दाराब खाँ के स्थान पर शाहजादा खुर्रम को दक्षिण भेजा गया। गजसिंह शाहजादा से आदेश लेकर आगरा होते हुए जोधपुर की तरफ रवाना हो गए। गजसिंह के जोधपुर रवाना होने से पूर्व ही खुर्रम ने अमरचंपू से सन्धि कर ली।[129] जोधपुर जाने के रास्ते में गजसिंह आगरा में बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ। जहाँगीर ने गजसिंह को 4000 जात तथा 3000 सवार का मनसब दिया तथा साथ ही जालोर और संचोर का अधिकार भी गजसिंह को सौंपा।[130]

दक्षिण में रहते हुए ही शाहजादा खुर्रम ने भी अपने पिता बादशाह जहाँगीर के विरूद्ध विद्रोह का बिगुल बजा दिया। इस विद्रोह की सूचना मिलते ही जहाँगीर ने गजसिंह को विद्रोह शान्त करने के लिए भेजा। 1 मई 1623 ई. को गजसिंह जोधपुर से वापस होकर चात्सु में मुगल दरबार में उपस्थित हुआ।[131] जहाँगीर ने शाहजादा परवेज और महाबत खाँ

के साथ गजसिंह को दक्षिण की तरफ रवाना होने का आदेश दिया।[132] दक्षिण की तरफ रवाना होने से पूर्व जहाँगीर ने गजसिंह को फलोदी का अधिकार दिया तथा 5000 जात 4000 सवार का मनसब देकर गजसिंह को प्रसन्न किया। शाही सेना के दक्षिण पहुँचने का समाचार प्राप्त होते ही खुर्रम का विद्रोह धीरे–धीरे दम तोड़ने लगा और बिलोचपुर के युद्ध में खुर्रम के विद्रोह को अन्तिम रूप से शाही सेना द्वारा खत्म कर दिया गया। इस युद्ध में शाही सेना के विजयी होने पर खुर्रम अपनी हार के बाद उदयपुर की तरफ चला गया।[133] इस घटना के बाद शाहजादा खुर्रम राणा करण के भाई भीम सिसोदिया के साथ बिहार जाना उचित समझा। खुर्रम के बिहार जाने की खबर मिलते ही गजसिंह और महाबत खाँ को खुर्रम से संधि करने के उद्देश्य से भेजा गया। 16 अक्टूबर 1624 ई. को गंगा नदी के किनारे, पटना के पास हाजीपुर नामक स्थान पर पुनः शाही सेना और खुर्रम के मध्य युद्ध हुआ। खुर्रम के साथ उदयपुर से बिहार गए भीम सिसोदिया के बड़ी ही वीरता पूर्वक युद्ध में शामिल होने के बाद भी खुर्रम की हार हुई और उसे पटना होते हुए दक्षिण की तरफ वापस लौटने पर विवश होना पड़ा।

शाहजहाँ का मारवाड़ के साथ सम्बन्ध :–

अपने शासन 27वें शासकीय वर्ष 1627 ई. में कश्मीर से लौटते समय राजोरी नामक स्थान पर जहाँगीर ने अन्तिम साँस ली। जहाँगीर के मृत्यु के पश्चात् उसके दोनों पुत्रों शहरयार और खुर्रम में सत्ता के लिए संघर्ष शुरू हो गया। सत्ता संघर्ष में शाहजादा खुर्रम विजयी रहा और

शाहजहाँ के नाम से सिंहासनारूढ़ हुआ। 1628 ई. में ही गजसिंह ने जोधपुर से चलकर मुगल दरबार में उपस्थित होकर बादशाह से भेंट की। शाहजहाँ ने गजसिंह के दरबार में उपस्थित होने के बाद उन्हें सम्मानित किया तथा जहाँगीर के समय का पाँच हजारी जात तथा पाँच हजारी सवार का मनसब गजसिंह का स्वीकार किया।[134]

1630 ई. में दक्षिण में हो रहे विद्रोहों को खत्म करने तथा निजामुलमुल्क और खाँजहाँ लोदी को दण्ड देने के लिए तीन सेनाएँ बालाघाट की तरफ भेजी गई। जिसमें से एक सेना का नेतृत्व गजसिंह को सौंपा गया। इस अभियान पर गए गजसिंह ने विद्रोह को सफलतापूर्वक दमन करते हुए अपने कार्यों से शाहजहाँ को प्रसन्न किया। शाहजहाँ ने गजसिंह को वापस बुला लिया और इसी वर्ष जड़ाऊ पट्टेवाली एक खासी तलवार देकर दक्षिण की तरफ भेजा।[135]

1631 ई. में बीजापुर के शासक आदिल खाँ को दण्ड देने के उद्देश्य से आसफखाँ के नेतृत्व में एक सेना की बुरहानपुर से रवाना होने का आदेश दिया। हमेशा की तरह गजसिंह को भी दक्षिण के इस अभियान पर भेजा गया तथा उसके साथ मिर्जाराजा जयसिंह तथा पहाड़सिंह को शाही सेना के साथ जाने का आदेश दिया गया। शाही सेना गुलबर्ग होते हुए बीजापुर पहुँची और बीजापुर को चारों ओर से घेर लिया गया। परन्तु शाही सेना के बीजापुर पहुँचने से पूर्व ही यह इलाका वीरान हो चुका था। जिससे शाही सेना को घेरा उठाकर वापस लौटना पड़ा। इस अवसर पर बीजापुर के पन्द्रह हजार सवारों ने उसका पीछा किया।[136]

कान्धार की लड़ाई में गजसिंह अपने पुत्र अमरसिंह के साथ शामिल

हुआ। शाहसफी ने कान्धार के हाकिम अलीमर्दान खाँ के कार्यो से अप्रसन्न हो गया तथा अलीमर्दान पर सेना भेज दी। तब अलीमर्दान खाँ गजनी के सेनापति एवज खाँ एवं काबुल के हाकिम के पास सहायता की प्रार्थना करने अपने आदमी भेजे। कुछ दिन बाद अलीमर्दान खाँ ने किला शाही सेना के सुपुर्द कर दिया और बादशाह के नाम का खुतबा पढ़ा और अधीनता स्वीकार की। मुंशी देवीप्रसाद ने लिखा है कि सियायूश[137] के साथ की लड़ाई में सईदखाँ की तरफ गजसिंह और अमरसिंह दोनों ही विद्यमान थे, जिन्होंने अच्छी बहादुरी दिखलाई।[138]

6 मई 1638 ई. को आगरे में ही राजा गजसिंह का देहान्त हो गया।[139] गजसिंह की मृत्यु के समय जसवन्त सिंह बूंदी में था।[140] इस समाचार को सुनते ही वह आगरे की तरफ रवाना हो गया। 25 मई 1638 ई. में बादशाह शाहजहाँ ने जसवन्त सिंह[141] को 'टीका' दिया। साथ ही खिलअत, जड़ाऊ जमधर, चार हजार जात और चार हजार सवार का मनसब, राजा का खिताब, झंड़ा, नक्कारा, सुनहारी जीन का घोड़ा और खासा हाथी प्रदान किया।[142] मारवाड़ के पाँच परगने, जोधपुर, फलोदी, सोजत, सिवाना और मेड़ता जसवन्त सिंह को अधिकृत किया गया।[143] राज्यप्राप्ति के समय जसवन्त सिंह सिर्फ 12 वर्ष का था। अतः शाहजहाँ ने ठाकुर राजसिंह कूंपावत को जोधपुर का दीवान नियुक्त किया था।[144] गजसिंह ने अपने मृत्यु से पूर्व ही जसवन्त सिंह को मारवाड़ का उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था।

1639 ई. में बादशाह ने अपनी वर्षगाँठ के अवसर जसवन्त सिंह के मनसब में 1000 जात तथा 1000 सवार की वृद्धि की[145] तथा इसी अवसर

पर जसवन्त सिंह को जैतारण का परगना भी दिया गया।[146] 1639 ई. में बादशाह ने जसवन्त सिंह को साथ लिया तथा नोशहरा होता हुआ बादशाह शाहजहाँ पेशावर पहुँचा तथा अपनी सेना और जसवन्त सिंह को वहीं छोड़ बादशाह जमरूद की ओर बढ़ने लगा क्योंकि वह रास्ता सभी के जाने के लिए उपयुक्त नहीं था। अतः बादशाह ने ऐसा आदेश दिया तथा चिनाब नदी के किनारे जसवन्त सिंह को देश जाने का आदेश दिया।

जोधपुर पहुँच कर 30 अप्रैल 1640 ई. को जसवन्त सिंह गद्दी पर बैठा।[147] 1641 ई. में जसवन्त सिंह बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ। इससे कुछ समय पहले ही बादशाह द्वारा नियुक्त किए गए दिवान राजसिंह की मृत्यु हो गयी थी। अतः बादशाह ने महेशदास को उसके स्थान पर नियुक्त किया।

1642 ई. में ईरान के शाह सफी ने रूम के शासक से सन्धि कर कांधार को हड़पने का या अधिकार करने की योजना पर कार्य रहा था तथा इस कार्य को पूर्ण करने हेतु उसने अपने सिपहसालार रुस्तम गुर्जी को अपनी मंशा पूरी करने के उद्देश्य से कांधार की तरफ रवाना किया। कांधार पर आई मुसीबत को दूर करने के लिए बादशाह ने स्वयं कांधार जाने का निश्चय किया परन्तु शाहजादा दाराशिकोह ने बादशाह को लाहौर में ही रोककर स्वयं ही उस ओर प्रस्थान किया। इस अवसर पर बादशाह ने दारा को बीस हजार जात तथा बीस हजार सवार का मनबस देकर कांधार जाने का आदेश दिया। दाराशिकोह के साथ इस अभियान पर राजा जसवन्त सिंह, राव अमरसिंह राव, शुत्रशाल, राजा जयसिंह, राजा रायसिंह आदि लोग भेजे गए। परन्तु शाही सेना के गजनी पहुँचने से पूर्व

ही शाहसफी की मृत्यु हो गयी तब शाही सेना को वापस आने का आदेश दिया।[148] इस घटना के बाद 19 जून 1643 ई. को बादशाह से आज्ञा प्राप्त कर जसवन्त सिंह जोधपुर की ओर रवाना हो गया।

1645 ई. में लाहौर जाते समय बादशह ने खिलअत देकर जसवन्त सिंह का सम्मान किया तथा अकबराबाद के सूबेदार शेख फरीद के आने तक आगरे के देख–रेख की जिम्मेदारी संभालने का आदेश दिया।

1648 ई. में जब शाहजहाँ लाहौर में रूका हुआ था तभी कांधार से सूचना आई कि शाह अब्बास ने 50,000 सेना के साथ कांधार के किले को चारों ओर घेर लिया था। इस परिस्थिति में बादशाह ने औंरगजेब को वहाँ भेजना उचित समझा तथा औरंगजेब को तुरन्त ही मुल्तान से कांधार आने का आदेश दिया। इस अवसर पर बादशाह ने जसवन्त सिंह, सादुल्लाखाँ, बहादुरखाँ, कुलीचखाँ, राजा विठ्ठल दास गौड़ के साथ 132 शाही अधिकारियों के साथ 50,000 सवारों को औरगजेब के साथ भेजा गया। बादशाह ने स्वयं भी परिस्थितियों को देखते हुए काबुल की तरफ प्रस्थान किया। चार महीने के घेरे के बाद भी कांधार का अभियान सफल नहीं हुआ।

शाहजहाँ ने शासन के 26 वें वर्ष में जसवन्त सिंह का मनसब छः हजार जात और पाँच हजार सवार (दो अस्पा और से अस्पा) हो गया।[149] 1655 ई. में पुनः मनसब में वृद्धि होने के पश्चात् 6 हजार जात तथा 6 हजार सवार हो गया। इसी समय बादशाह शाहजहाँ द्वारा जसवन्त सिंह को महाराजा का खिताब भी दिया।[150]

स्पष्ट है कि मुगल दरबार में जसवन्त सिंह का प्रभाव व कीर्ति दिनों

दिन बढ़ रही थी। अपने अधिकांश जीवनकाल में जसवन्त सिंह मुगल सेवा में मारवाड़ के बाहर ही रहा। मुगल सेवा में प्रशाासक का कार्य कर जसवन्त सिंह ने शाहजहाँ के काल में साम्राज्य में सुव्यवस्था स्थापित की। अतः मारवाड़ के शासन में सुव्यवस्था लाने के लिए आन्तरिक मामलों को शाहजहाँ ने स्वयं अपने हाथों में ले लिया था। जसवन्त सिंह के शासन काल में मारवाड़ की व्यवस्था और सुरक्षा सुदृढ़ हो गयी थी।

उसने शाहजहाँ की कुशल सेनानायक के रूप में व एक प्रशासक की भाँति सेवा की। उसकी सेवाओं से प्रसन्न होकर ही बादशाह शाहजहाँ ने उसके वतन जागीर में निरन्तर वृद्धि की और मनसब में वृद्धि होती गई।

6 सितम्बर 1657 ई. को शाहजहाँ बीमार पड़ गया। यह खबर सुनते ही दिल्ली की जनता के साथ–साथ शाहजहाँ- के चारों पुत्र भी विचलित हो गए तथा शाहजहाँ के जीवित रहते हुए ही चारों पुत्रों में सत्ता प्राप्ति के लिए संघर्ष आरम्भ हो गया। सत्ता प्राप्ति में भी प्रत्येक राजकुमारों को राजपूतों का सहयोग जरूरी था। राजपूत शक्ति ही हिन्दुस्तान का नया सम्राट तय करने वाली थी। इसलिए मुगलों को राजपूत संबंधों के साथ ही साम्राज्य की नीति तय करनी थी। मुगल मारवाड़ संबंध सिर्फ मुगलों का एक राज्य के साथ सम्बन्ध नहीं था बल्कि हिन्दुस्तान में आर्थिक और सामाजिक नीति तय करने का आधार भी था।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. श्यामसिंह रत्नावत, पृ. 51।
2. डॉ. सक्सेना (मुगलकालीन भारत) पृ. 16
3. रशब्रुक विलियम्स (एन एम्पायर बिल्डर आफ द सिक्सटीन्थ सेन्चुरी) पृ. 127; डी रोज (कैम्ब्रिज हिस्ट्री) भाग–3, पृ. 529; गिरिस्किन (हिस्ट्री आफ इण्डियन), भाग–1 पृ. 462
4. जोधपुर राज्य की ख्यात, जि. 1, पृ. 63; वीर विनोद भाग–2 पृ. 807; मुँहणोत नैणसी की ख्यात जि. 2 पृ. 196
5. बॉकी दास पृ. 8–9 (सं. 85–103); रेऊ, भाग–1 पृ. 104–112; ओझा (राजपूताना) 4,1, पृ. 251–274; वीर भाग–2 पृ. 807; टॉड, भाग–2 पृ. 18।
6. चंदोला, पृ. 39
7. बाँकीदास ख्यात, पृ. 12; टाड, भाग–2 पृ. 953; ओझा (जोधपुर), भाग 1 पृ. 84; रेऊ, भाग–1 पृ. 116; आसोपा पृ. 130; भार्गव. पृ. 20
8. आइन ॥ पृ. 248; बदायूँनी । पृ. 562; तबकात, I, पृ. 83; जहाँगीर ॥ पृ. 99; फरिश्ता ॥ पृ. 121
9. बॉकीदास पृ. 12 (सं. 120–126); नैणसी, 2 पृ. 157; वीर–2 पृ. 483; टॉड, 2 पृ. 19–20
10. जोधपुर ख्यात, । पृ. 68; कविराजा ख्यात, ॥ पृ. 51; बॉकीदास ख्यात, पृ. 12, वीर पृ. 808; टॉड ॥ पृ. 954; ओझा (जोधपुर) भाग । पृ. 285; महाराजकुमार, पृ. 27; रेऊ पृ. 116; भार्गव पृ. 21
11. नैणसी ॥ पृ. 160; तारीख–ए–पालनपुर । पृ. 74–75; टॉड ॥ पृ. 954; ओझा, (जोधपुर) । पृ. 288; रेऊ । पृ. 122
12. जोधपुर ख्यात । पृ. 68; बाँकीदास ख्यात, पृ0 12; टॉड ॥ पृ. 954; वीर, पृ. 809; ओझा । पृ. 288; रेऊ । पृ. 121–22
13. तारीख–ए–पालनपुर । पृ. 75; आसोपा पृ. 130–31
14. मालदेव ने फलोदी 1547 ई. में जीता था–जर्नल आफ एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल, 12, पृ. 90–91 (1916)

15. तबकात–ए अकबरी पृ. 205; इलियट (हिस्ट्री आफ इण्डिया) जि. 5 पृ. 211
16. आर.पी. त्रिपाठी पृ. 103; भार्गव (मारवाड़) पृ. 25–27
17. कानूनगों, शेरशाह, पृ. 266
18. तबकात ए–अकबरी (अनुवाद इलियट) जि. 5 पृ. 207
19. कानूनगो, शेरशाह पृ. 268–9
20. गुलबदन, पृ. 153
21. जौहार पृ. 37; आईन । पृ. 372; देवी प्रसाद (हुमायूँनामा) पृ.66–69; कानूनगो पृ. 271; ओझा । 295; ईश्वरी प्रसाद पृ. 211
22. अकबरनामा (बेवरीज भूत अनुवाद) जि. 1 पृ. 371 मुंशी देवी प्रसाद पृ. 66–69
23. अकबरनामा (बेवरीज अनुवाद) जि. । पृ. 373; हुमायँनामा, पृ. 69
24. तबकात–ए–अकबरी (इलियट) जि. 5, पृ. 211–2; हुमायूँनामा (बेवरीज अनुवाद) पृ. 154
25. अकबरनामा (बेवरीज अनुवाद) जि. 1, पृ. 373
26. ब्रिग्ज, फरिश्ता, जि. पृ. 121; अब्बास खाँ (इलियट) जि. 4 पृ. 404
27. दयालदास की ख्यात, जि.2, पत्र 19; मुंशी देवी प्रसाद (राव कल्याणमल जी का जीवन चरित्र) पृ. 92
28. ब्रिग्ज फरिश्ता जि.2, पृ. 121; अब्बास खाँ (इलियट) पृ. 405; तबकात–ए–अकबरी पृ. 231
29. तारीख–ए–शेरशाह (इलियट हिस्ट्री ऑव इण्डिया) जि. 4 पृ. 405
30. तबकात–ए–अकबरी पृ. 232; जोधपुर राज्य की ख्यात जि.–1 पृ. 70
31. तबकात–ए–अकबरी पृ. 232
32. तारीख–ए–शेरशाही (इलियट अनुवाद) जि.–4 पृ. 405
33. मुंतखब–उत्त–तवारीख (रैकिंग अनुवाद) जि.1 पृ. 478
34. जोधपुर राज्य की ख्यात में इस पत्रों के प्राप्त होने के पूर्व ही मालदेव द्वारा सेना के पीछे हटाए जाने का वर्णन है जो सही प्रतीत नहीं होता है। (जि.1 पृ. 70)

35. जोधपुर राज्य भी ख्यात (जि.1 पृ. 70)
36. ब्रिग्ज फरिश्ता जि.2 पृ. 121–3
37. तारीख–ए–दाउदी पृ. 158; ओझा । पृ. 308
38. कानूनगो शेरशाह पृ. 331; किसी ख्यात में पीपलोद की पहाड़ी में और किसी में घूंघरोट की पहाड़ी में भाग जाना लिखा है।
39. जोधपुर राज्य की ख्यात में शेरशाह का जोधपुर में एक वर्ष तक रहना लिखा है (जि.1, पृ. 75) दयालदास की ख्यात में 4 मास लिखा है (जि. 2 पत्र 19 बाँकीदास की ख्यात में भी एक वर्ष रहना लिखा है (ऐतिहासिक बातें, संख्या 827)
40. बांकी दास (ऐतिहासिक बातें) सं. 827–28; जोधपुर राज्य की ख्यात, जि.1 पृ. 73
41. जोधपुर राज्य की ख्यात, जि. 1 पृ. 72; दयालदास की ख्यात, जि.2 पृ. 19–20
42. कानूनगो शेरशाह पृ. 338–41; तारीख–ए–शेरशाही में भी यही तारीख दी है (इलियट, हिस्ट्री आव् इण्डिया जि. 4 पृ. 409) पर इसके विपरीत फरिश्ता (ब्रिग्ज अनुवाद जि.2 पृ. 124) बील (ओरिएन्टल ब्रायोग्राफिकल डिक्शनरी पृ. 381) तथा वीर विनोद भाग–2 पृ. 138, ने शेरशाह की मृत्यु की तारीख 12वी–उल–अव्वल को मानी है।
43. जोधपुर की ख्यात, जि.1 पृ. 73–74; बांकी दास, ऐतिहासिक बांते, सं. 828 और 1550; वीर विनोद, भाग–2, पृ. 811–12; मुँहणोत–नैणसी की ख्यात में भी राव मालदेव का मांगेसर के थाने पर सैन्य भेजना लिखा हैं। इस ख्यात के अनुसार (जैसावत) जोधा का पुत्र रामा और (जैसावत) वणवीर के पुत्र तेजसी और बीसा भी उस सेना के साथ थे। (जि.2 पृ. 400, 429–30)
44. अकबरनामा (इलियट) जि. 6 पृ. 21–2
45. बांकीदास ऐतिहासिक बातें, सं. 12908
46. दयालदास की ख्यात, जि.2 पृ. 23; मुंशी देवीप्रसाद (राव कल्याणमल जी) पृ. 98–9

47. अकबरनामा (बेवरीज अनुवाद) जि.2, पृ. 102—103
48. अकबरनामा (बेवरीज अनुवाद) जि. 2, 240—243
49. बांकीदास ने लिखा है कि बादशाही सेना की प्रबलता देखकर मालदेव का पुत्र चन्द्रसेन तो लौट गया, पर देवीदास लड़ने के उद्देश्य से किले में जा बैठा। (ऐतिहासिक बाते, सं. 1305—06)
50. अकबरनामा (बेवरीज) जि. 2 पृ. 248—50 वीर विनोद, भाग—2 पृ. 812—3
51. बांकीदास ऐतिहासिक बातें सृ. 1508—9
52. जोधपुर राज्य की ख्यात, भाग—1 पृ. 68; बांकीदास की ख्यात पृ. 18; वीर विनोद, पृ. 813; ओझा, भाग—1 पृ. 325; रेउ, भाग—1 पृ. 141; आसोपा, पृ. 141; महाराजकुमार, पृ. 44
53. सूरज प्रकाश पृ. 36

    —हाक जिण श्रांण सुण हिरण खौडा हुवै।

54. जोधपुर राज्य की ख्यात, जि. 1 पृ. 85; बांकीदास, ऐतिहासिक बातें, संख्या 394
55. जोधपुर राज्य की ख्यात, जि. 1 पृ. 85; कविराज ख्यात, भाग—2 पृ0 67; बांकीदास ख्यात, पृ. 20; ओझा, भाग—1, पृ. 85; रेउ, भाग—1, पृ. 148; आसोपा, पृ. 143; महराजकुमार, पृ. 44
56. जोधपुर राज्य की ख्यात, जि.1 पृ. 115
57. अबुलफजल, अकबरनामा (बेवरीज कृत अनुवाद) जि.2 पृ. 305
58. उमराए हनूद, पृ. 48; अकबरनामा (बेवरीज कृत अनुवाद) जि. 2, पृ. 518; मुन्तखब—उत—तवारीख (ब्लाकमैन कृत अनुवाद) जि. 2, पृ. 137; मआसिर—उल—उमरा (हिन्दी), पृ. 452
59. जोधपुर राज्य की ख्यात, जि. 1, पृ. 88
60. अकबरनामा (बेवरीज कृत अनुवाद) जि.3, पृ. 113—4 और 155
61. ओझा (जोधपुर), जि.1, पृ. 228
62. अकबरनामा, भाग—3, पृ. 158—159

63. अकबरनामा (बेवरीजकृत अनुवाद) जि. 3, पृ. 167
64. वही पृ. 237–38
65. जोधपुर राज्य की ख्यात, जि.1, पृ. 89–90
66. जैसलमेर राज्य का इतिहास, पृ. 90
67. तवारीख जैसलमेर, पृ. 54
68. अकबरनामा (बेवरीज कृत अनुवाद), जि. 3, पृ. 466
69. रेउ, भाग–1, पृ. 154
70. जोधपुर राज्य की ख्यात, जि.1, पृ. 121; बांकीदास, ऐतिहासिक बातें, संख्या 394
71. जोधपुर राज्य की ख्यात, भाग–1 पृ. 97; कविराजा ख्यात, भाग–2, पृ. 76; वीर विनोद, पृ. 815; ओझा, भाग–1, पृ. 354; रेउ, भाग–1, पृ. 172; आसोपा पृ. 150
72. जोधपुर राज्य की ख्यात, जि.1, पृ. 97
73. वीर विनोद, पृ. 816; ओझा, भाग–1, पृ. 355; इस तथ्य को 'पुस्तक प्रकाश' की एक पेंटिग तथा अजित चरित्र के लेखक ने भी प्रमाणित किया है।
74. ओझा (जोधपुर), भाग–1, पृ. 236
75. जोधपुर ख्यात, भाग–1, पृ. 92–93; बांकीदास की ख्यात, भाग–2, पृ. 22; वीर विनोद, पृ. 814; ओझा, भाग–1, पृ. 352; रेउ, भाग–1, पृ. 167; आसोपा पृ. 149
76. अकबरनामा (अनुवाद), जि.3, पृ. 294–95; मुंशी देवी प्रसाद, अकबरनामा, पृ. 91
77. अकबरनामा, पृ. 631–36
78. जोधपुर राज्य की ख्यात, जि. 1, पृ. 98; बांकीदास, ऐतिहासिक बातें, 864
79. अकबरनामा, दफ्तर 3, पृ. 436–437
80. जोधपुर राज्य की ख्यात, जि. 1, पृ. 99; बांकीदास, ऐतिहासिक बातें, संख्या 800–801 । उमराए हनूद में पाया जाता है कि मानमती 'जगतगुसाइन' के नाम प्रसिद्ध थी। उसका विवाह 27 जून 1586 ई. में राजा के घर ही हुआ था।

81. जोधपुर राज्य की ख्यात, जि.1, पृ. 100; मुँहणोत नैणसी की ख्यात, भाग–1, पृ. 134; बांकीदास, ऐतिहासिक बातें, संख्या 871 ओझा, सिरोही राज्य का इतिहास, पृ. 224–25
82. जोधपुर राज्य की ख्यात, जि. 1, पृ. 99–100; वीर विनोद, भाग–2, पृ. 815; बांकीदास, ऐतिहासिक बातें, संख्या 869–70
83. तबकात–ए–अकबरी, इलियट, हिस्ट्री आव् इंडिया, जि. 5, पृ. 462
84. आइन, 3 पृ. 1027; मासिर–उल–उमरा, भाग–3 पृ. 915; जोधपुर ख्यात भाग–1, पृ. 105; कविराजा ख्यात, भाग–2, पृ. 76; बांकीदास ख्यात, पृ. 23; ओझा, भाग–1, पृ. 105; आसोपा, पृ. 155; वीर विनोद पृ. 815
85. तबकात, भाग–2, पृ. 671; मासिर–उल–उमरा, भाग–2, पृ. 916
86. जोधपुर राज्य की ख्यात, जि. 1, पृ. 122
87. वहीं पृ. 122
88. आइन, पृ. 1027; मासिर–उल–उमरा, भाग–2, पृ. 916; जोधपुर ख्यात, भाग–1, पृ. 123; बांकीदास ख्यात, पृ. 25; टॉड, पृ. 969; वीर विनोद, पृ. 816–17; ओझा, भाग–1, पृ. 364; रेउ, भाग–1, पृ. 181; आसोपा, पृ. 158
89. जोधपुर राज्य की ख्यात, भाग–1, पृ. 122; कविराजा ख्यात, भाग–2, पृ. 88; आसोपा, पृ. 158
90. अकबरनामा (बेवरीज कृत अनुवाद), जि.3,- पृ. 1043; मुंशी देवीप्रसाद अकबरनामा, पृ. 238
91. जोधपुर राज्य की ख्यात, जि. 1, पृ. 123
92. अकबरनामा (बेवरीज कृत अनुवाद), जि. 3, पृ. 1083; जोधपुर राज्य की ख्यात, जि. 1, पृ. 123–24; मुंशी देवी प्रसाद, अकबरनामा, पृ. 248; मआसिर–उल–उमरा, पृ. 454
93. अकबरनामा (बेवरीज कृत अनुवाद), जि. 3, पृ. 1126
94. वीर विनोद, भाग–2, पृ. 817; मआसिर–उल–उमरा, पृ. 454; उमराए हनूद, पृ. 254

95. जोधपुर राज्य की ख्यात, जि. 1, पृ. 124–125
96. अकबरनामा (बेवरीज कृत अनुवाद), जि. 3, पृ. 1154; मुंशी देवी प्रसाद, अकबरनामा, पृ. 270; वीर विनोद, भाग–2, पृ. 817; मआसिर–उल–उमरा, पृ. 454; उमराए हनूद, पृ. 254
97. अकबरनामा (बेवरीज कृत अनुवाद), जि. 3, पृ. 1211; मुंशी देवी प्रसाद, अकबरनामा, पृ. 291; मआसिर–उल–उमरा, पृ. 454; जोधपुर राज्य की ख्यात, भाग–1, पृ. 124; ओझा, भाग–1, पृ. 368; रेउ, भाग–1, पृ. 185; आसोपा, पृ. 159; भार्गव, पृ. 64
98. मआसिर–उल–उमरा, भाग–2, पृ. 182
99. अकबरनामा (बेवरीज कृत अनुवाद), जि. 3, पृ. 1212–13; मुंशी देवी प्रसाद, अकबरनामा, पृ. 291–92; वीर–विनोद, भाग–2, पृ. 817; कविया करणीदान, सूरज प्रकाश, पृ. 85–87
100. अकबरनामा, भाग–3, पृ. 1229; वीर–विनोद, भाग–2, पृ. 817
101. अकबरनामा (बेवरीज कृत अनुवाद), जि. 3, पृ. 1229; मुंशी देवी प्रसाद, अकबरनामा, पृ. 302
102. जोधपुर राज्य की ख्यात, जि.1, पृ. 125
103. तुजुक–ए–जहाँगीरी (रोजर्स और बेवरीज कृत अनुवाद) जि. 1, पृ. 1
104. जोधपुर राज्य की ख्यात, जि. 1, पृ. 125–26
105. तुजुक–ए–जहाँगीरी (अनुवाद), जि. 1, पृ. 140–41; मुंशी देवी प्रसाद, जहाँगीरनामा, पृ.102–103; वीर विनोद, भाग–1, पृ.217 मआसिर–उल–उमरा, पृ. 454; उमराए हनूद, पृ. 255 में चार हजार जात तथा दो हजार सवार का मनसब मिलना लिखा है।
106. जोधपुर राज्य भी ख्यात, जि. 1, पृ. 126–27
107. तुजुक–ए–जहाँगीरी, पृ. 253 एवं 257; जोधपुर राज्य की ख्यात, भाग–1, पृ. 127–28; वीर–विनोद, पृ. 818
108. कम्बू, पृ. 70; मासिर–उल–उमरा, भाग–2 पृ. 916; जोधपुर ख्यात, पृ. 127–28; बांकीदास ख्यात, पृ. 26; वीर विनोद, पृ. 818; ओझा (उदयपुर), भाग–1, पृ. 799–800; रेउ, भाग–1, पृ. 190; भार्गव, पृ. 66

109. कम्बू, पृ. 72; लाहौरी, भाग–1, पृ. 171–172; जोधपुर राज्य की ख्यात, भाग–1, पृ. 128; वीर विनोद, पृ. 818; रेउ, भाग–1, पृ. 190
110. जहाँगीरनामा, फोलियो 67 (ब)
111. तुजुक–ए–जहाँगीर, भाग–1, पृ. 301
112. देवी प्रसाद, जहाँगीरनामा, पृ. 102, 199 एवं 201
113. तुजकु–ए–जहाँगीरी, भाग–1, पृ. 300–301; मासिर–उल–उमरा, भाग–2, पृ. 917; देवी प्रसाद जहाँगीरनामा, पृ. 205; वीर विनोद, पृ. 818; रेउ, भाग–1, पृ. 194
114. तुजुक–ए–जहाँगीरी, भाग–1, पृ. 300–301; वीर विनोद, भाग–1, पृ. 194; आसोपा, पृ. 162; भार्गव, पृ. 67
115. मासिर–उल–उमरा, भाग–2, पृ. 917; जोधपुर राज्य की ख्यात, भाग–1, पृ. 139; टॉड, भाग–2, पृ. 970; तारीख–ए–पालनपुर, भाग–1, पृ. 103; ओझा, भाग–1, पृ. 383–84; रेउ, भाग–1, पृ. 194–95; आसोपा, पृ. 162; भार्गव, पृ. 67
116. जोधपुर राज्य की ख्यात, भाग–1, पृ. 144; ओझा, भाग–1, पृ. 385; रेउ, भाग–1, पृ. 196
117. वहीं
118. जोधपुर राज्य की ख्यात, भाग–1, पृ. 146; बांकीदास की ख्यात, पृ. 26; वीर विनोद, पृ. 818; ओझा, भाग–1, पृ. 386; रेउ, भाग–1, पृ. 197; आसोपा, पृ. 162; सूरजप्रकाश, पृ. 30–31; उमराए हनूद, पृ. 256
119. तुजुक–ए–जहाँगीरी, भाग–2, पृ. 99; जहाँगीरनामा, पृ. 389
120. जोधपुर ख्यात, भाग–1, पृ. 146
121. गुणरूपक बंध, पृ. 126
122. जोधपुर राज्य की ख्यात, भाग–1, पृ. 150
123. जोधपुर राज्य की ख्यात, जि. 1, पृ. 150; बांकीदास, ऐतिहासिक बातें, 1933; टॉड, राजस्थान, जि. 2, पृ. 972

124. तुजुक–ए–जहाँगीरी, भाग–2, पृ.99; मुंडीयार ख्यात, एफ. 4 (a); मासिर–उल–उमरा, भाग–1, पृ. 570; बांकीदास ख्यात, पृ. 27; टॉड, भाग–2, पृ. 972; वीर विनोद, पृ. 819; ओझा, भाग–1, पृ. 388–89; रेउ, भाग–1, पृ. 199

125. मुण्डियार ख्यात एफ 5 (बी); जोधपुर राज्य की ख्यात, भाग–1, पृ. 1, 5

126. मुण्डियार ख्यात, एफ 8 (a) (b); जोधपुर राज्य की ख्यात, भाग–1, पृ. 155; वीर विनोद, पृ. 819; कविराजा ख्यात, भाग–2, पृ. 92; बांकीदास की ख्यात, पृ. 27

127. मुण्डियार ख्यात, एफ 10 (a); टॉड, भाग–2, पृ. 973; वीर विनोद, पृ. 819; ओझा, भाग–1, पृ.390; रेउ, भाग–1, पृ. 200; आसोपा, पृ. 165; भार्गव, पृ. 71

128. जोधपुर राज्य की ख्यात, जि. 1, पृ. 155–56; वीर–विनोद, भाग–2, पृ. 819

129. बांकीदास, ऐतिहासिक बातें, संख्या 893

130. तारीख–ए–पालनपुर, भाग–1, पृ. 112

131. जोधपुर की ख्यात, भाग–1, पृ. 156–57; मुण्डियार की ख्यात, 12 (a); ओझा, भाग–1, पृ. 392

132. तुजुक–ए–जहाँगीरी, भाग–2, पृ. 259; मासिर–उल–उमरा, भाग–1, पृ. 570; बेनी प्रसाद, पृ. 309

133. गोपीनाथ शर्मा, पृ. 144; भार्गव, पृ. 72

134. बादशाहनामा, भाग–1, पृ. 158–159; मुंशी देवी प्रसाद, शाहजहाँनामा, पृ. 10; उमराए हनूद, पृ. 309–10; वीर विनोद, भाग–2, पृ. 819

135. बादशाहनामा, जि.1, पृ. 315

136. मुंशी देवी प्रसाद, शाहजहाँनामा, भाग–1, पृ. 95–61; उमराए हनूद, पृ. 310

137. डॉ0 बेनी प्रसाद, हिस्ट्री आव शाहजहाँ, पृ. 214–18; शाहजहाँनामा, भाग–2, पृ. 9–10

138. सियायूश कोल्लर अकासी को फारस के शाहसफी ने अलीमर्दान की जगह हाकिम बनाकर भेजा था।

139. बादशाह, भाग–2, पृ. 97

140. जोधपुर ख्यात, भाग–1, पृ. 194; बांकीदास ख्यात, पृ. 29; ओझा, भाग–1, पृ. 413; रेउ, भाग–1, पृ. 210

141. लाहौरी, भाग–2, पृ. 97; कम्बू, भाग–2, पृ. 291; मासिर–उल–उमरा, भाग–1, पृ. 754; कविराजा ख्यात, भाग–2, पृ. 97; बांकीदास ख्यात, पृ. 29; वीर–विनोद, पृ. 822; ओझा, भाग–1, पृ. 413; रेउ, भाग–1, पृ. 210; आसोपा, पृ. 174; भार्गव, पृ. 80

142. जसवन्त सिंह अपने पिता गजसिंह का छोटा बेटा था तथा बड़े बेटे का नाम अमरसिंह था।

143. जोधपुर राज्य की ख्यात, भाग–1, पृ. 195; ओझा, भाग–1, पृ. 413

144. वीर–विनोद, पृ. 822; शाहजहाँनामा, भाग–2, पृ. 43; ओझा, भाग–1, पृ. 414; रेउ, भाग–1, पृ. 210; आसोपा, पृ. 174

145. शाहजहाँनामा (मुंशीदेवी प्रसाद), पृ. 56; वीर विनोद, भाग–2, पृ. 822; जोधपुर राज्य की ख्यात, जि. 1, पृ. 195

146. जोधपुर राज्य की ख्यात, जि. 1, पृ. 195

147. जोधपुर राज्य की ख्यात, जि. 1, पृ. 196

148. शाहजहाँनामा (मुंशी देवी प्रसाद), भाग–2, पृ. 112–17; उमराए हनूद, पृ. 154; वीर विनोद, भाग–2, पृ. 338 तथा 822

149. उमराए हनूद, पृ. 156; वीर विनोद, भाग–2, पृ. 342

150. उमराए हनूद, पृ. 155; शाहजहाँनामा (मुंशी देवी प्रसाद), भाग–3, पृ. 109

तृतीय अध्याय

उत्तराधिकार के युद्ध से जसवन्त सिंह की मृत्यु तक

(1657 ई0 से 1679 ई0 तक)

अध्याय–3

उत्तराधिकार के युद्ध से जसवन्त सिंह की मृत्यु तक

(1657 ई० से 1679 ई० तक)

यद्यपि भारतीय परम्परा के अनुसार बड़ा पुत्र ही पिता का उत्तराधिकारी नियुक्त होता था लेकिन इस्लामी राजत्व में उत्तराधिकारी के लिए स्पष्ट निर्देश नहीं दिए गए हैं। किसी सुनिश्चित नियम के अभाव के कारण ही उत्तराधिकारी की समस्या का हल तलवार द्वारा ही तय किया जाता था। जिस उत्तराधिकारी में जितनी योग्यता होती थी वही सफल हो पाता था।

बाबर की मृत्यु के बाद उसके साम्राज्य का बँटवारा कर दिया गया जिसके कारण हुमायूँ को लगातार अपने भाईयों से संघर्ष करना पड़ा। अकबर के समय में भी उसका भाई मिर्जा हकीम लगातार अकबर के लिए समस्याएँ उत्पन्न कर रहा था। जहाँगीर के समय में उसका कोई भाई जीवित ही नहीं था तथा शाहजहाँ के काल में समस्या उत्तराधिकारी की नहीं थी बल्कि समस्या सत्ता को प्राप्त करने की थी। क्योंकि शाहजहाँ के काल में उत्पन्न हुई यह समस्या न तो एक पिता की मृत्यु के बाद उत्पन्न होने वाले उत्तराधिकारी की समस्या थी और न ही पिता के काल में किसी पुत्र द्वारा किया गया विद्रोह। जैसा कि अकबर के काल में सलीम का तथा जहाँगीर के काल में खुर्रम का विद्रोह था। लेकिन शाहजहाँ के काल में हुए सता के संघर्ष का स्वरूप थोड़ा भयावह बन चुका था।

शाहजहाँ के चारों पुत्र (दारा, औरंगजेब, शुजा, मुराद) सत्ता पर अधिकार करना चाहते थे, लेकिन इन चारों में दारा और औरंगजेब ही अधिक महत्वाकांक्षी थे। दारा अपने पिता का कृपापात्र था तो औरंगजेब अधिक योग्य तथा चतुर था। उसने अपनी चतुरता से दरबार के कई सरदारों को अपनी तरफ मिला लिया था। शाहजहाँ के चारों पुत्रों की महत्वाकाँक्षाओं ने ही सत्ता के इस संघर्ष को जन्म दिया था।

1657 ई0 में शाहजहाँ शारीरिक दृष्टि से धीरे–धीरे अस्वस्थ्य हो रहा था जिसके कारण 6 सितम्बर 1657 ई0 को बादशाह दिल्ली में गंभीर रूप से बीमार पड़ गया।[1] जिस समय शाहजहाँ दिल्ली में अपनी बीमारी से जूझ रहा था उस समय दारा बादशाह के साथ, शुजा बंगाल में, औरंगजेब दक्षिण में तथा मुराद गुजरात में था।[2] बादशाह का शरीर झरोखा दर्शन देने की हालत में भी न रहा गया था जिसके कारण दिल्ली में बीमार बादशाह की मृत्यु की अफवाह तेजी से फैलने लगी थी। चूँकि बादशाह का बड़ा पुत्र उस समय बादशाह के साथ था उसने कुछ करीबी सरदारों के अतिरिक्त अन्य किसी व्यक्ति को भी बादशाह से मिलने की इजाजत नहीं दी। जब सभी शाहजादों को बादशाह की बीमारी की सूचना मिली तो उन्होंने अपने–अपने क्षेत्रों से प्रस्थान करने की योजना बनाई तथा अपनी–अपनी सेनाओं के साथ सत्ता के केन्द्र दिल्ली की तरफ बढ़ने लगे।[3] शाहजहाँ की हालत अत्यधिक गंभीर हो जाने के कारण दारा ने

बादशाह को दिल्ली से आगरा ले जाना उचित समझा। ऐसा प्रतीत होता है कि बादशाह शाहजहाँ को भी अपनी बीमारी की गंभीरता का एहसास हो गया था। अतः उसने राज्य के प्रमुख सामंतों एवं सरदारों की उपस्थिति में दिल्ली की सत्ता तथा बादशाहत के सभी अधिकार अपने पुत्र दारा शिकोह को सौंप दिया[4] जिससे बादशाह के जीवित रहते हुए दारा शिकोह को दिल्ली की सत्ता को एक प्रतिनिधि के रूप में संभालने का अधिकार प्राप्त हो गया।

दारा शिकोह को प्राप्त दिल्ली की सत्ता का प्रतिनिधित्व करना दारा के लिए काँटों के ताज से कम नहीं था। क्योंकि ऐसी विषम परिस्थिति में जबकि बादशाह की बीमारी अत्यन्त नाजुक अवस्था में थी तथा उसके सभी भाई भी सत्ता प्राप्ति की मंशा लिए दिल्ली की तरफ बढ़ रहे थे, ऐसे में हिन्दुस्तान की सत्ता के लिए शाहजादों में संघर्ष होना स्वाभाविक ही था। अतः चारों शाहजादे अपनी–अपनी क्षमता अनुसार सत्ता प्राप्ति की योजनाओं पर विचार कर उसे मूर्त रूप देने का प्रयास करने लगे। वैसे तो सत्ता का यह संघर्ष शाहजहाँ के चारों पुत्रों में छिड़ गया था लेकिन मुख्य रूप से यह संघर्ष दारा और औरंगजेब के बीच सिमट गया था।

एक तरफ दारा जिसे अपने पिता से आगाध स्नेह प्राप्त था तो दूसरी ओर औरंगजेब जिसका अधिकांश जीवन युद्ध तथा अभियान में ही व्यतीत हुआ। दारा के प्रति बादशाह का प्रेम ही था जो दारा सत्ता प्राप्ति

की राह से दूर ले जा रहा था क्योंकि दरबार में रहने के कारण युद्ध और राज्य करने का कोई अनुभव प्राप्त नहीं हो सका। दारा के व्यक्तित्व को परिभाषित करते हुए सर यदुनाथ सरकार ने लिखा है कि–दारा ने कठिनाई और खतरे की कसौटी पर कसकर मनुष्य को आजमाना कभी नहीं सीखा। सेना के साथ कोई सम्पर्क न होने के कारण उत्तराधिकार के लिए होने वाले इस युद्ध में अयोग्य हो गया। पुश्तों से चली आ रही शान्ति और सम्पदा ने उसकी नसों का रक्त ठण्डा कर दिया था। परिणामस्वरूप वह बुद्धिमानी के साथ कोई संगठन या साहसपूर्वक कार्य का खतरा उठा सकने में सर्वथा अयोग्य ही था। फौजी संगठन और युद्धावश्यक व्यूह रचना तो उसकी शक्ति के बाहर की बातें थी। सच्चे जन्मजात सेनापति के समान युद्ध के समय शान्ति और पूर्ण विचार बुद्धि से उसकी विभिन्न गतियों का उपयुक्त रीति से संचालन करने का उसने कभी अभ्यास नहीं किया। युद्धकला से अनजान इस नौसिखिया योद्धा को भाग्य वशात् सिंहासन के लिए होने वाले युद्ध में औरंगजेब जैसे चतुर सिद्धहस्त सेनानायक का सामना करना पड़ा।[5]

जिस वक्त मुगल शाहजादों के बीच सत्ता के इस संघर्ष की पृष्ठभूमि तैयार हो रही थी, उस समय बीकानेर के रावकर्ण के अतिरिक्त राजस्थान के लगभग सभी राजपूत शासक और शाही मनसबदार आगरा में उपस्थित थे और उन सभी ने इस संकटपूर्ण परिस्थिति में शाहजहां के

आदेशानुसार दारा शिकोह का ही साथ देना स्वीकार किया।[6] इन राजपूतों में जयसिंह और मारवाड़ का जसवन्त सिंह भी शामिल था।

यद्यपि शाहजादों को शाहजहाँ के स्वस्थ होने का समाचार मिल चुका था तथापि शाहजादों ने बादशाह को यह निश्चय कराते हुए पत्र लिखा कि उड़ती हुई अफवाहों को सुनकर उनके हृदय विचलित हो उठे हैं, अतएव वे अपनी आँखों से पिता के दर्शन कर उसकी वास्तविक स्थिति जानने के लिए आगरा आ रहे हैं।[7] शाहजादों को यह शक था कि बादशाह द्वारा भेजे गये पत्र संभवतः स्वयं दारा द्वारा लिखा गया था क्योंकि उस समय तक संभवतः शाही मुहर भी दारा के अधिकार में आ चुका था। इन सारी राजनीतिक हलचलों के बीच बादशाह के चारों पुत्रों को सिर्फ दिल्ली ही नजर आ रहा था, जिस पर अधिकार करने के लिए कोई भी अब बादशाह की मृत्यु का इन्तजार करने के लिए भी तैयार नहीं था।

शाहजहाँ का दूसरा पुत्र तथा बंगाल का सूबेदार मुहम्मद शुजा के पास बादशाह की बीमारी से सम्बन्धित अफवाहें राजमहल पहुँची तो उसने तुरन्त ही स्वयं को मुगल सम्राट घोषित कर 'अबुल फौज नासिरूद्दीन मुहम्मद तीसरा तैमूर दूसरा सिकन्दर शाहशुजा गाजी' का नया खिताब धारण किया।[8] 24 जनवरी 1658 ई0 को राजमहल से प्रस्थान कर शुजा दिल्ली पर अधिकार करने की मंशा से बनारस तक पहुँचा। इधर शाहजहाँ

की आज्ञा से दारा ने भी अपने पुत्र सुलेमान शिकोह के नेतृत्व में शाही सेना को शुजा का सामना करने के लिए भेजा। इस शाही सेना में मिर्जा राजा जयसिंह और दिलेर खाँ जैसे अनुभवी सेनानायकों को भी भेजा गया।

बंगाल से प्रस्थान कर शुजा बनारस के बहादुरपुर[9] नामक स्थान पर पहुँचा जहाँ पर उसे शाही सेना का सामना करना पड़ा। शाही सेना का हमला इतना आक्रामक था कि शुजा के सैनिकों को अपना सब कुछ छोड़कर भागना पड़ा तथा शुजा को भी अपनी जान बचाकर भागना पड़ा। सुलेमान शिकोह ने दक्षिण–पश्चिम में सूरजगढ़ नामक स्थान तक शुजा का पीछा किया। इसी समय सुलेमान को धरमाट के युद्ध का समाचार प्राप्त हुआ तो उसने शुजा से सन्धि करना उचित समझा तथा 8 मई को उसने शुजा को बंगाल, पूर्वी बिहार और उड़ीसा का प्रदेश वापस दे दिया तथा आगरा की ओर वापस हो लिया।

दक्षिण में औरंगजेब अपनी बुद्धिमता तथा योग्यता से अपनी शक्ति में लगातार वृद्धि कर रहा था। औरंगजेब इस समय तक एक सफल कूटनीतिज्ञ भी बन चुका था। अतः उसने तत्कालीन परिस्थितियों के मद्दे नजर मुराद को अपनी ओर मिलाना उचित समझा। औरंगजेब का यह कदम दारा के लिए नई मुसीबत खड़ा कर रहा था। दारा ने औंरगजेब की शक्ति को कम करने के लिए औरंगजेब के हितैषी सहायक और मालवा के

सूबेदार शाइस्ता खाँ को शीघ्र ही राजधानी लौट आने की आज्ञा भेजी।[10] औरंगजेब और मुराद के एक साथ आ जाने की सूचना दिल्ली पहुँची तो शाही लोगों में खलबली मच गई और सभी के मन में यही प्रश्न उठ रहा होगा कि इनकी संयुक्त सेना का सामना करने की हिम्मत किसके अन्दर होगी? सभी इस अभियान पर दारा के साथ जाने को तैयार थे परन्तु अन्य किसी का नेतृत्व उन्हें स्वीकार नहीं था। इस विषम परिस्थिति में जबकि दिल्ली की सत्ता पर खतरा मंडरा रहा था तब भी बादशाह को दारा के प्रति प्रेम उमड़ रहा था कि वह दारा को खुद से दूर भेजने के लिए तैयार न हुआ। ऐसी परिस्थिति में जसवन्त सिंह ने अपनी सेवाएँ अर्पित करते हुए औरंगजेब के विरूद्ध जाने का बीड़ा उठाया तथा उसे बंदी बनाकर दरबार में लाने का वचन दिया।[11]

मुगल साम्राज्य के लिए यह समय बहुत ही कठिनाई भरा था जबकि मुगल दरबार के सरदार भी इस असमंजस में थे कि कौन शाहजादा भावी मुगल सम्राट होगा तथा इस सत्ता के संघर्ष में किसका साथ दिया जाए दारा का या औरंगजेब का। क्योंकि इस समय कोई भी सरदार अपना भविष्य संकट में डालने के पक्ष में नहीं था और इस संघर्ष से स्वयं को दूर रखने के प्रयास में लगे थे। जसवन्त सिंह ने दारा के प्रति अपनी स्वामिभक्ति का परिचय अवश्य दिया परन्तु इतना स्पष्ट है कि उसका यह कदम राजनीतिक सूझबूझ के उपयुक्त नहीं था।[12]

अन्ततः बादशाह ने जसवन्त सिंह के नाम पर मुहर लगाया और इस अभियान पर जाने का आदेश दिया। 18 दिसम्बर 1657 ई0 को जसवन्त सिंह को एक खिलअत, जड़ाऊ तलवार, 100 घोड़े, रूपहली साज के साथ एक हाथी, एक हथिनी, एक लाख रूपया, 7000 जात, 7000 सवार (5000 सवार दो अस्पा से अस्पा) का मनसब तथा मालवा की सूबेदारी देकर औरंगजेब का रास्ता रोकने के लिए राजधानी से भेजा गया।[13] अभियान पर रवाना होने से पहले जसवन्त सिंह ने बादशाह से विशेष आग्रह किया कि रतनसिंह को भी इस सेना में नियुक्त किया जाए। जसवन्त सिंह के विशेष आग्रह को बादशाह मना नहीं कर सका तथा तुरन्त ही रतमाल के रतनसिंह को दक्षिण से वापस आने तथा जसवन्त सिंह से मिलने का आदेश दिया गया।[14] रतमाल के रतनसिंह के साथ ही अर्जुन गौड़, रामपुरे का अमरसिंह चंद्रावत, मुकंद सिंह हाड़ा, मोहन सिंह हाड़ा, सुजान सिंह सीसोदिया, देवीसिंह बुंदेला, अमरसिंह सीसोदिया, दयालदास झाला तथा रायसिंह आदि को जसवन्त सिंह के साथ भेजना तय किया गया।[15] इस सेना में दो मराठा सरदारों मालू जी और परसूजी को भी नियुक्त किया गया था।

जसवन्त सिंह को अब तक यह सूचना मिल चुकी थी कि औरंगजेब और मुराद की सम्मिलित सेना शाही सेना से युद्ध के लिए आगे बढ़ रही थी। जसवन्त सिंह यह बात अच्छी तरह से समझ चुका था कि वह शायद

दोनों की संयुक्त सेना का सामना करने में सक्षम नहीं है। अतः वह उन दोनों की सेनाओं के मिलने से पूर्व ही उज्जैन पहुँच जाना चाहता था। शाही सेना दिल्ली से रवाना होकर धीरे–धीरे मालवा की तरफ बढ़ रही थी। जसवन्त सिंह जल्द से जल्द उज्जैन पहुँचना चाहता था, इसलिए शाही सेना को बीच में छोड़कर दो तीन हजार सवारों को साथ लेकर 27 जनवरी 1658 ई0 उज्जैन जा पहुँचा।[16]

दोनों ही सेनाएँ एक–दूसरे की गतिविधि जानने के लिए व्याकुल हो रही थी। औंरगजेब को जब सूचना मिली कि शाही सेना दिल्ली से उसे रोकने के लिए प्रस्थान कर चुकी है तो उसने भी व्यर्थ में समय गवाना उचित नहीं समझा तथा उसने तुरन्त ही मुराद को रवाना हो जाने के लिए संदेश भेजा तथा अपने ज्येष्ठ पुत्र मुहम्मद सुल्तान को औरंगाबाद से चलकर 18 फरवरी को बुरहानपुर जा पहुँचा।[17] मुराद के गुप्तचरों द्वारा मुराद तक यह सूचना पहुँच चुकी थी कि जसवन्त सिंह शाही सेना को बीच रास्ते ही छोड़कर केवल तीन चार हजार सैनिकों के साथ उज्जैन तक आ पहुँचा है। इसलिए उपयुक्त अवसर समझकर वह 25 फरवरी को अहमदाबाद से प्रस्थान कर 14 मार्च को मंदसौर पहुँचा।[18]

जिस वक्त दोनों सेनाएँ युद्ध के लिए पूरी तरह से तैयार हो चुकी थी तभी जसवन्त सिंह को मुराद द्वारा भेजे गए दो निशान प्राप्त हुए। पहले निशान में मुराद ने जसवन्त सिंह को अपने पास आने के लिए

आमन्त्रित किया था लेकिन जसवन्त सिंह ने इस पहले निशान का कोई उत्तर देना जरूरी नहीं समझा। जसवन्त सिंह की तरफ से कोई उत्तर न आने के कारण मुराद ने 26 फरवरी 1658 ई0 को दूसरा निशान भेजा, जिसके द्वारा उसने जसवन्त सिंह को अपनी ओर मिलाने की चेष्टा की और यह भी लिखा कि पहले उसका विचार उज्जैन से होकर विजय के बाद अकबराबाद की ओर जाने का था, परन्तु अब उसने अपनी योजना बदलकर जालौर और अजमेर के रास्ते जाने का निश्चय किया है।[19] जसवन्त सिंह को यह सूचना मिल चुकी थी कि मुराद मालवा की ओर बढ़ रहा है तब उसने भी अपनी सेना सहित उज्जैन से बाँसवाड़ की तरफ प्रस्थान किया ताकि खाचरोद पहुँचकर मुराद की सेना को रोक सकें। क्योंकि जसवन्त सिंह पूरी तरह से इस प्रयत्न में था कि अभी भी औरंगजेब और मुराद की सेनाएँ एक साथ न हो सकें। क्योंकि शाहजहाँ की यह आज्ञा थी कि अंत में विवश होकर ही इन शाहजादों से लड़ा जाए, जसवन्त सिंह के लिए एक बड़ी बाधा थी। इधर औरंगजेब सोच विचार कर अपनी बुद्धि के अनुसार ही अपनी नीति निश्चित करता था और अपने निर्णय के अनुसार चलता था, उधर बेचारा जसवन्त सिंह बड़े ही असमंजस में पड़ा हुआ था। अब शत्रु क्या करेगा यह जाने बिना वह अपनी नीति निश्चित नहीं कर सकता था।[20] जैसे–जैसे दोनों सेनाएँ एक–दूसरे के करीब आ रही थी तब मुराद को भी ये एहसास हो गया कि

अकेले ही शाही सेना से युद्ध करने की क्षमता मुराद में नहीं थी। अतः मुराद गुजरात की तरफ लौट गया तथा औरंगजेब की सेना की प्रतीक्षा करना उचित समझा।[21]

जसवन्त सिंह ने औरंगजेब की गतिविधि का पता लगाने की पूरी चेष्टा की किन्तु औरंगजेब की सतर्कता के कारण उसे उसका कोई भी समाचार न मिल सका।[22] जसवन्त सिंह की गुप्तचर व्यवस्था इतनी कमजोर थी कि न तो वह ठीक ढंग से औरंगजेब की वास्तविक स्थिति का पता कर सका और न ही मुराद के वापस लौटने के सही कारणों का ही पता लगा सका। जबकि औरंगजेब को शाही सेना में हो रहे हलचलों की पूरी जानकारी होती थी। खाचरोद में काफी समय तक पड़ाव डाले रहने के बाद भी शाहजादों की स्थिति का कुछ भी पता न चल पाने के कारण 5 अप्रैल को जसवन्त सिंह वापस उज्जैन पहुँच गया।

तत्कालीन परिस्थितियों में जबकि ऐसा प्रतीत हो रहा था कि उत्तर से दक्षिण तक का हिन्दुस्तान सत्ता के इस संघर्ष से जुड़ चुका था, औरंगजेब ने भी मुराद को अपने साथ मिलाना उचित समझा। इसी उद्देश्य से 14 अप्रैल को औरंगजेब का एक दूत मुराद से मिला और यह सूचना दी कि औरंगजेब की सेना नजदीक आ पहुँची है। यह खबर मिलते ही मुराद ने बिना समय व्यर्थ किए दूसरे ही दिन औरंगजेब से जा मिला क्योंकि वह भी तो औरंगजेब के आने का ही इन्तजार कर रहा था। दोनों

भाईयों की सम्मिलित सेनाओं ने उत्साह के साथ उज्जैन की ओर प्रस्थान किया।[23]

5 अप्रैल तक जसवन्त सिंह भी उज्जैन पहुँच चुका था लेकिन अभी तक उसे शाहजादों की सेना की किसी भी गतिविधि के बारे में कोई सूचना उपलब्ध नहीं हो सका था। जसवन्त सिंह को अचानक माँडू के किलेदार से पत्र द्वारा यह सूचना मिली कि औरंगजेब की सेना नर्मदा नदी पार कर चुकी थी तथा मांडू की तरफ ही बढ़ रही थी जिसके कारण धार का दुर्ग शाही सैनिकों द्वारा खाली कर दिया गया है। इसी समय औरंगजेब का एक ब्राह्मण दूत उज्जैन पहुँचा और जसवन्त सिंह से मुलाकात की तथा औरंगजेब ने उससे कहलवाया कि "जसवन्त सिंह के लिए यह उचित है कि वह उसका मार्ग छोड़कर अपने वतन वापस लौट जाए क्योंकि वह सिर्फ अपने पिता की बीमारी के कारण उनकी अस्वस्थता की जानकारी लेने जा रहा है।" परन्तु जसवन्त सिंह ने उसके बदले उत्तर दिया कि 'मुझे शाहजहाँ की आज्ञा का पालन करना चाहिए। इस समय वापस लौट जाना मेरे लिए अपमानजनक एवं कलंककारक होगा।'[24] औरंगजेब के संदेशों को अनसुना कर उसका रास्ता रोकने के लिए शाही सेना को पूरी तैयारी के साथ लेकर उज्जैन से चला क्योंकि वह अच्छी तरह से समझ चुका था कि अब उसे युद्ध का रास्ता अख्तियार करना पड़ेगा। गुजरात का सूबेदार कासिम खाँ भी शाही सेना के साथ चला।

उसके साथ प्रमुख राजपूत मनसबदारों में कोटा के मुकुंदसिंह हाड़ा, शाहपुरा के सुजानसिंह सीसोदिया, रणथंमौर के अर्जुन गौड़, राजा रायसिंह सीसोदिया, राजा देवीसिंह बुंदेला और रतमाल के रतनसिंह राठौड़ थे।[25] इस अभियान पर जा रहे शाही सेना के साथ एक तोपखाना भी था।[26] जसवन्त सिंह शाही सेना के साथ आगे बढ़कर धरमत नामक गाँव के समीप उसने अपना पड़ाव डाला।[27] जसवन्त सिंह ने यह भरसक प्रयास किया कि औरंगजेब और मुराद की सेनाएँ एक साथ न मिल सकें लेकिन वह अपने प्रयासों में असफल रहा और धरमत में पड़ाव डालते ही उसे सूचना प्राप्त हुई कि दोनों भाईयों की सेना एक साथ आगे बढ़ रही है। परिस्थिति और भी गंभीर दिखाई पड़ी जब उसे यह ज्ञात हुआ कि उसी दिन शत्रु सेना भी धरमत आ पहुँची है और उन्होंने भी गंभीर नदी के पूर्वतट पर धरमत के पास ही डेरा डाला है।[28]

जसवन्त सिंह को सत्ता के इस संघर्ष की सारी परिस्थितियाँ धीरे–धीरे समय में आने लगी थी और साथ ही उसे यह एहसास भी हो गया था कि अब उसे शाहजहाँ द्वारा दिए गए आदेश कि अन्य कोई रास्ता न होने पर ही युद्ध किया जाए का ही पालन करना होगा। क्योंकि अब उसे युद्ध के अलावा अन्य रास्ता दिखाई दे रहा था। इस गंभीर परिस्थिति पर चर्चा करने के लिए ही जसवन्त सिंह ने अपने समस्त राजपूत सरदारों को एकत्र कर विचार–विमर्श किया तथा सभी राजपूत युद्ध करने के

फैसले पर तैयार हुए। इसी विचार विमर्श के दौरान रतमाल के रतनसिंह ने यह प्रस्ताव रखा कि शाही सेना का नेतृत्व उसे सौंपा जाए परन्तु जसवन्त सिंह ने यह प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया।[29] आसकरण नींबावत ने भी प्रस्ताव रखा कि आधी रात में शत्रु सेना पर आक्रमण कर उनकी तोपें छीन ली जाए, लेकिन जसवन्त सिंह ने इसे भी अस्वीकार कर दिया क्योंकि शत्रु पर रात में अचानक आक्रमण करना राजपूतों की नीति के विरूद्ध और क्षत्रियों की मर्यादा को बट्टा लगाने वाला कार्य है।[30]

लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि जसवन्त सिंह में ठोस निर्णय लेने की क्षमता ही नहीं है। वह स्वयं ही यह तय नहीं कर पा रहा था कि उसे क्या करना है। जसवन्त सिंह उन विषम परिस्थितियों में अपनी ही मंशा को ठीक ढंग से समझने में असमर्थ था। इसी कारण वह असमंजस में था कि युद्ध करना सही होगा या नहीं। इस असमंजस की स्थिति से बाहर निकलने के लिए ही उसने 16 अप्रैल 1658 ई0 को औरंगजेब के पास अपना एक संदेशवाहक भेजा तथा समझौते का प्रयास करते हुए कहलवाया कि "मैं युद्ध नहीं करना चाहता और न आपके सामने शक्ति प्रयोग करने की धृष्टता कर सकता हूँ। मेरी इच्छा यह है कि आपका दर्शन लाभ कर आपकी सेवा करूँ। यदि आप मुझे क्षमा कर दें और युद्ध का विचार त्याग दें तो मैं आपकी सेवा करने के लिए तैयार हूँ।" इस समय तक जसवन्त सिंह औरंगजेब की क्षमता तथा निपुणता को पूरी तरह से समझ चुका था।

अतः औरंगजेब से युद्ध करने का साहस नहीं जुटा पा रहा था लेकिन दूसरी तरफ औरंगजेब था जिसे अपने उद्देश्य के अतिरिक्त कुछ भी नहीं दिखाई पड़ रहा था क्योंकि वह एक दृढ़ संकल्प वाला व्यक्ति था न कि जसवन्त सिंह की भाँति अधर में लटका हुआ। सत्ता के इस संघर्ष में उसे सिर्फ सत्ता का केन्द्र ही दिख रहा था और सारी परिस्थितियाँ औरंगजेब के अनुकूल होती नजर आ रही थी। अतः उसने उत्तर दिया–चूँकि मैं आगे बढ़ चुका हूँ, इसलिए विलंब का प्रश्न नहीं उठता। यदि सचमुच तुम्हारा मंतव्य वही है जो तुम कह रहे हो, तो अपनी सेना छोड़कर अकेले निजाबत खाँ के पास चले आओ। वह तुम्हें मेरे पुत्र शाहजादा मुहम्मद सुल्तान के पास पहुँचा देगा और शाहजादा तुम्हें मेरे पास लाकर तुम्हें क्षमा प्रदान करवाएगा।'[31]

ऐसा प्रतीत होता है कि युद्ध आरम्भ होने से पूर्व जसवन्त सिंह को यह विश्वास था कि शाही सेना के आगमन के नाम पर ही शाहजादों की सेना वापस लौट जाएगी और वह बिना युद्ध किए ही मैदान जीतकर वापस लौट आएगा लेकिन वह यह नहीं समझ सका कि इतनी विशाल शाही सेना को हराने के लिए औरंगजेब का कूटनीतिक दिमाग ही काफी था। तब भी औरंगजेब को रिझाने की मंशा से उसने अन्तिम प्रयास के तौर पर अपना संदेशवाहक भेजा लेकिन असफल हो गया तथा औरंगजेब ने स्पष्ट कर दिया कि अब युद्ध के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है। अन्ततः

जसवन्त सिंह के सारे प्रयास असफल हो जाने के बाद उसने आधे मन से युद्ध की तैयारियाँ शुरू कर दी।

युद्ध की मंशा से दोनों सेनाएँ आमने–सामने सुसज्जित होकर खड़ी थी। जसवन्त सिंह के साथ शाही सेना में हरावल की फौज का अफसर कासिम खाँ था, जिसके साथ मुकुन्द सिंह हाड़ा, राजा सुजान सिंह बुन्देला, अमरसिंह चन्द्रावत (रामपुरा), राजा रतनसिंह राठौड़ (रतमाल), अर्जुन गौड़, दयाल दास झाला, मोहन सिंह हाड़ा आदि थे। इनके आगे बहादुर बेग फौजबख्शी और तोपखाने के दारोगा रक्खे गए, जिनके साथ जानीबेग वगैरह थे। गिर्दावरी पर मुखलिस खाँ आदि और सहायक सेना में महेशदास गौड़, गोवर्द्धन राठौड़ आदि थे। स्वयं महाराजा जसवन्त सिंह चुने हुए 2000 राजपूतों सहित बीच में था, जिनमें भीमसिंह गौड़ आदि थे। दाहिनी तरफ राजा रायसिंह तथा सुजानसिंह सीसोदिया अपने भाईयों एवं अन्य राजपूतों सहित था, बाईं तरफ की सेना में इफ्तियार खाँ एवं शेरखाँ बारहा आदि थे और डेरो की देखरेख का कार्य मालूजी, पर्सूजी तथा राजा देवीसिंह बुंदेला के सुपुर्द था।[32] जसवन्त सिंह ने अपनी व्यूह रचना में तोपखाने को कोई महत्व नहीं दिया। उसकी यह भूल आगे चलकर उसके लिए घातक सिद्ध हुई।[33]

दूसरी तरफ औरंगजेब योग्य अनुभवी और चतुर सेनापति था। उसकी व्यूह रचना अधिक कौशलपूर्ण थी। औरंगजेब की सेना के हरावल

में उसका बेटा शुजाअखाँ, सैयद मुजफ्फरखाँ, लोदी खाँ बारहा, सैयद नसीरूद्दीन दक्षिणी, मीर अबुलफजल आदि थे और सहायक सेना में जुल्फिकार खाँ कुछ तोपखाना तथा मुहम्मद सुल्तान था, जिसके साथ निजाबत खाँ, बहादुरखाँ आदि थे। प्रधान तोपखाने का अफसर मुर्शिदकुलीखाँ था, जिसके अधीन कई फ्रांसीसी भी काम करते थे। दाहिनी तरफ शाहजादा मुराद अपनी सेना सहित तैयार था। बाईं तरफ की फौज का अफसर शाहजादा मुहम्मद आजम था, जिसके साथ राजा इन्द्रमणि धन्धेरा, कर्ण सिंह कच्छी, राजा सारंगधर आदि भी थे। स्वयं औरंगजेब के पास दाहिनी तरफ शेख तीर आदि के अतिरिक्त बीकानेर के राव कर्ण सिंह के दो पुत्र केशरीसिंह एवं पद्मसिंह, रघुनाथ सिंह राठौड़ आदि तथा बाईं तरफ सफशिकन खाँ, जादवरा, बाबाजी घोंसला (भोंसला), वीतूजी, जसवन्तराव आदि थे। बीच में स्वयं पुत्र भगवन्त सिंह तथा शुभकर्ण बुन्देला आदि थे।[34]

दोनों सेनाएं सुसज्जित होकर युद्ध शुरू होने का इन्तजार कर रही थी। आदेश मिलते ही ये दोनों एक–दूसरे से उलझ पड़ी। औरंगजेब ने अपना तोपखाना नदी के किनारे रखकर दूसरी सेना का तोपखाने की सहायता से नदी पार करने की आज्ञा दी। उसी समय औरंगजेब की सेना को शाही सेना ने आगे बढ़ने से रोक दिया और उस पर आक्रमण कर दिया तथा कासिम खाँ की फौज के मुकुन्दसिंह हाड़ा, राजा रत्नसिंह

राठौड़, दयालदास झाला, अर्जुन गौड़ आदि ने आगे बढ़कर औरंगजेब के तोपखाने पर आक्रमण किया तथा तोपखाने का अध्यक्ष मुर्शीदकुली खाँ शाही सेना के इस प्रारम्भिक आक्रमण में ही मारा गया। तोपखाने के बाद शाही सैनिकों ने औरंगजेब के हरावल पर धावा बोला तथा वहाँ घुसकर जुल्फिकार खाँ भी मार डाला। पीछे से दूसरे राजपूत भी उसकी सहायता के लिए पहुँच गए थे। अब तक इस युद्ध की गंभीरता पूरी तरह से बढ़ चुकी थी। औरंगजेब के पुत्रों आदि ने अपनी–अपनी सेना के साथ दाहिनी और बाईं तरफ से शाही सेना पर आक्रमण कर दिया। शाही सेना में औरंगजेब के आक्रमण ने हलचल मचा दी मानो तेजी से बढ़ रहे जसवन्त सिंह की सेना पर लगाम लग गया हो। फलस्वरूप जसवन्त सिंह की सेना के मुकुन्द सिंह हाड़ा, सुजान सिंह सीसोदिया, राजसिंह राठौड़, अर्जुन गौड़, दयालदास झाला तथा मोहनसिंह हाड़ा आदि औरंगजेब की सेना के बहुत से सैनिकों को मार कर मारे गए।[35] इस तरह राजपूत सेना के पहले आक्रमण का अन्त हो गया।

इसके बाद औरंगजेब की आज्ञा पाकर उसकी सेना के तोपों ने शाही सेना पर गोले बरसाना प्रारम्भ कर दिया। इन तोपों की बरसात से जसवन्त सिंह की सेना के हरावल को नष्ट कर दिया गया जिससे शाही सेना का रणक्षेत्र में ज्यादा देर तक रूकना असम्भव हो गया और रावसिंह सीसोदिया, सुजान सिंह बुंदेला और अमर सिंह चंद्रावत अपने–अपने

सैनिकों के साथ युद्ध क्षेत्र से भाग गए थे। इस स्थिति में शाही सेना के दाहिनी ओर औरंगजेब की सेना का मुकाबला करने योग्य कोई सक्षम सेनानायक नहीं बचा था। लेकिन अभी जसवन्त सिंह का साहस और धैर्य उसके साथ था तथा वह 2000 राजपूतों के साथ औरंगजेब से युद्ध करने को तैयार था। सही समय देखकर मुराद ने शाही सेना के पड़ाव पर पीछे से हमला बोल दिया। इस हमले के बाद पड़ाव की सुरक्षा के जिम्मेदार मालूजी और पर्सू जी स्वयं ही पड़ाव को असुरक्षित छोड़कर भाग खड़े हुए। देवीसिंह बुंदेला ने भी जब देखा कि पूरा पड़ाव औरंगजेब की सेना से घिर चुका है और अब सुरक्षित बाहर निकलना मुश्किल हो चुका था तो उसने भी मुराद के साथ मिल जाना उचित समझा। शाही पड़ाव को तहस–नहस कर मुराद युद्ध क्षेत्र में पहुँचा और वहाँ पर शाही सेना के बायें भाग पर हमला बोल दिया। इस भाग के इफ्तिखार खाँ ने बड़े ही साहस से मुराद के आक्रमण का सामना किया लेकिन वह भी रणक्षेत्र में ज्यादा देर तक नहीं टिक सका और अंततः उसको भी मौत के घाट उतार दिया गया। इस समय युद्ध क्षेत्र में ऐसा प्रतीत हो रहा था कि जसवन्त सिंह की सेना के सैनिक दिल्ली की सत्ता की सुरक्षा के नहीं बल्कि अपने व्यक्तिगत सुरक्षा के लिए लड़ रहे थे और धीरे–धीरे अनेक सरदार युद्ध क्षेत्र से या तो भाग गए या मारे गए। सारी सेना नष्ट हो जाने के बाद भी जसवन्त सिंह अपने कुछ सैनिकों के साथ युद्ध क्षेत्र से हटने को तैयार

नहीं था और वीरतापूर्वक युद्ध कर रहा था जबकि कासिम खाँ भी औरंगजेब की स्थिति को देखते हुए युद्ध में भाग न लेना उचित समझा और वहाँ से भागने की तैयारी करने लगा।[36]

जसवन्त सिंह को भी इन सारी परिस्थितियों को समझने में वक्त नहीं लगा कि अब विजय उसके लिए असंभव हो चुकी थी। उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वह युद्ध क्षेत्र में अकेले ही औरंगजेब और मुराद की सेना का सामना कर रहा था। उसके पास भी अब दो ही रास्ता बचा था, या तो वह राजपूतों की मर्यादा अनुसार रणभूमि में ही लड़ते–लड़ते वीरगति को प्राप्त करे या तो अन्य राजपूतों की ही तरह युद्ध क्षेत्र से भाग जाए। जसवन्त सिंह पर आक्रमण करने के लिए औरंगजेब तथा मुराद बाई ओर से तथा सफकिशन खाँ दाहिनी ओर से आक्रमण के लिए आगे बढ़ रहे थे। जसवन्त सिंह का साहस जवाब दे चुका था जिसके कारण यह विजय जसवन्त सिंह के लिए असंभव हो चुकी थी। तभी उसके राठौड़ सरदार आसकरण, महेशदास गौड़ और गोवर्धन राठौड़ ने जसवन्त सिंह को बचाना उस समय राठौड़ वंश के लिए आवश्यक समझा और उन्होंने यह फैसला लिया कि "किसी भी प्रकार से हो, अपने राजा को बचाना चाहिए। हमारा भविष्य चाहे कुछ भी हो लेकिन जसवन्त सिंह को युद्ध क्षेत्र से बाहर ले जाना होगा।" अंततः आसकरण और महेशदास गौड़ जसवन्त सिंह के घोड़े की बागडोर पकड़कर उसे युद्धक्षेत्र

से बाहर ले गए और कुछ राठौड़ सैनिकों के साथ उसे जोधपुर रवाना किया।[37] साथ ही युद्ध का सारा भार रतनसिंह को सौंपा गया। अंत में वह भी घावों में जर्जरित होकर युद्ध भूमि में गिर पड़ा और उसकी मृत्यु हो गयी। रतनसिंह की मृत्यु से ही इस युद्ध का अंत हो गया। औरंगजेब ने इस विजय के स्मरण स्वरूप इस युद्ध क्षेत्र पर एक नया कस्बा बसाने की आज्ञा दी जिसका नाम फतेहाबाद रखा गया।[38] युद्ध क्षेत्र से जसवन्त सिंह अपने बचे हुए सैनिकों के साथ सोजत पहुंचा और वहां कुछ दिन विश्राम करने के पश्चात् जोधपुर चला गया।[39]

जसवन्त सिंह के भरसक प्रयासों के बाद जसवन्त सिंह तथा शाही सेना धरमत का युद्ध नहीं जीत सके। क्योंकि पहले तो उनका सामना ही औरंगजेब जैसे योद्धा से था और दूसरे जसवन्त सिंह और शाही सेना में कुछ ऐसी कमियां थी जिसके कारण जसवन्त सिंह को रणक्षेत्र छोड़कर जोधपुर भागना पड़ा।

युद्ध आरम्भ होने के प्रारम्भिक क्षणों में ही जब राजपूत सेना हार रही थी तो उसने उनकी सहायता नहीं की थी तथा उसे सही सैन्य संचालन का ज्ञान भी नहीं था तभी तो उसने अपनी सेना को ऐसी ऊँची भूमि पर खड़ा किया था कि बहुत से सैनिकों को तो युद्ध में शामिल होने का मौका ही नहीं मिल सका। जसवन्त सिंह इतना सतर्क भी नहीं था कि सारे युद्धक्षेत्र पर निगाह रख सके और जहाँ आवश्यकता हो सहायता भेज

सके। औरंगजेब ने चतुरतापूर्वक आगे बढ़कर सहायता पहुँचाने की सारी संभावनाएँ ही समाप्त कर दी। फलतः उन पर लगातार आक्रमण होने से हताहत होने लगे और उनकी संख्या घटने लगी।

बादशाह द्वारा जसवन्त सिंह को मालवा तथा कासिम खाँ को गुजरात का सूबेदार बनाकर भेजा गया था। बादशाह ने कासिम खाँ को यह आदेश दिया था कि आवश्यकता पड़ने पर जसवन्त सिंह की सहायता करें।'[40] बादशाह के इस वक्तव्य से स्पष्ट होता है कि दोनों ही सेनाएँ स्वतन्त्र थी। अंतर केवल इतना ही था कि जसवन्त सिंह का मनसब कासिम खाँ से कुछ अधिक था।[41] सहायता की बाध्यता न होने के कारण इस युद्ध में कासिम खां ने सक्रिय भाग नहीं लिया तथा बाद में जब औरंगजेब ने जसवन्त सिंह पर आक्रमण किया तो वह युद्ध क्षेत्र से भागने की तैयारी कर रहा था।[42]

शाही सेना में शामिल राजपूतों में आपसी वंशगत ऊँच–नीच की भावना और आपसी मतभिन्नता के कारण शाही सेना का स्वरूप राष्ट्रीय नहीं था क्योंकि उन राजपूतों में एकता की भावना के साथ संगठनात्मक क्षमता का भी अभाव था जिसमें उन राजपूतों ने पूरे मन से एक–दूसरे का साथ देने के विषय में सोचा नहीं था। युद्ध क्षेत्र में विभिन्न राजपूत घरानों के सैनिक अपने नायक के नेतृत्व में ही लड़ते थे।[43] शाही सेना का स्वरूप देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था कि इन विभिन्न राजपूत वंशों के मनमुटाव

राजपूताना के क्षेत्र से बाहर निकलकर धरमत के मैदान तक आ पहुँचा था।

परन्तु जसवन्त सिंह की पराजय का सबसे बड़ा कारण था उसमें योग्य सेनापति के गुणों का अभाव और युद्ध विद्या की कमी। शाही सेना में प्रायः राजपूत और मुगल सैनिक साथ–साथ भेजे जाते थे जिनका नेतृत्व भी अलग–अलग सेनानायकों को दिया जाता था। इन सैनिकों और उनके सेनानायकों में सदैव द्वेष की भावना रहती थी। ऐसी सेना में एकात्मकता स्थापित करना और आपसी भेदभाव को भुलाकर आवश्यकता के समय उनसे अपना काम निकालने के लिए जिस राजनीतिज्ञता और कुशल अनुभव की आवश्यकता थी उसका जसवन्त सिंह में अभाव था।[44]

जसवन्त सिंह के व्यक्तिगत पराक्रम में तो किसी को कोई संदेह नहीं था, परन्तु उसमें सैन्यसंचालन और सैनिक संगठन के गुणों का अभाव था। धरमत के युद्ध में उसके पास तोपची मौजूद थे, फिर भी उनका उचित प्रयोग न कर उसने भारी भूल की। संभवतः इसका एक कारण यह हो सकता है कि अभी तक तोपों का प्रयोग राजपूतों की प्रकृति से मेल नहीं खाता था। तलवार, भाले और बरछे से लड़ने वाले राजपूत सैनिकों को गोले–बारूद की लड़ाई से लड़ने वाले राजपूत सैनिकों को गोले बारूद की लड़ाई कुछ जंचती नहीं थी। परन्तु युद्ध विज्ञान की दृष्टि से तोपों का सामना तलवार, भाले, बरछे से करना पराजय को निमंत्रित करना

था।[45]

इसके अतिरिक्त जसवन्त सिंह ने युद्ध क्षेत्र का जो चुनाव किया वह भी ठीक नहीं था। उसे इस बात का पूरा अवसर मिला था कि वह अपने अनुकूल युद्ध क्षेत्र चुन सके। फिर भी जिस मैदान पर उसने शाही सेना को खड़ा किया था, वह युद्ध के लिए उपयुक्त नहीं थी। एक तो वह इतना तंग था कि उसमें आवश्यकता पड़ने पर शाही सैनिक आसानी से इधर–उधर पहुँच नहीं सकते थे, दूसरे वह सारा स्थान ऊँचा–नीचा था, कहीं–कहीं खाईयाँ थी और कहीं–कहीं दलदल भी था। कुछ इतिहासकारों के अनुसार उसने सेना के आगे लगभग 2000 गज तक पानी से छिड़काव करवाया था जिससे कीचड़ हो गया और सेना को बड़ी असुविधा हुई। भूमि–चयन और सैन्य संचालन की वह अयोग्यता उसे काफी महंगी पड़ी।[46]

अपनी क्षमता का परिचय देते हुए औरंगजेब ने धरमत का युद्ध जीत लिया था क्योंकि शाही सेना में जिस नेतृत्व और संगठनात्मक क्षमता का अभाव था, वही क्षमता औरंगजेब में कूट–कूट कर भरी थी। इस सफलता के बाद स्वाभाविक रूप से औरंगजेब आगरा की ओर बढ़ा। दारा को यह सूचना मिल चुकी थी कि जसवन्त सिंह युद्ध क्षेत्र छोड़कर जोधपुर जा चुका था तथा युद्ध जीतकर औरंगजेब आगरे की तरफ ही बढ़ रहा था। औरंगजेब का रास्ता रोकने के लिए विशाल शाही सेना के साथ सामूगढ़

नामक स्थान पर पहुँचा। तब तक औरंगजेब भी अपनी विजयी सेना के साथ सामूगढ़ नामक स्थान पर पहुँच गया था।

दारा की सेना में लगभग 50,000 सैनिक थे। दारा की सेना में लगभग आधे तो ऐसे व्यक्ति थे जिन्हें युद्ध कला का तनिक भी ज्ञान नहीं था। सेना को सुसज्जित करते समय दारा ने सबसे आगे तोपखाना और उसके पीछे बंदूकची तथा उसके पीछे हाथी तथा सबसे बाद में घुड़सवारों की सेना को व्यवस्थित किया था।

इसके विरूद्ध औरंगजेब के साथ अनुभवी, कुशल, साहसी वीरों की सेना थी। उसके श्रेष्ठ तोपखानों की कतारों का मीरजुमला के यूरोपीय गोलन्दाज संचालन कर रहे थे और गोला–बारूद भी उसके पास पर्याप्त मात्रा में था। पूर्व आज्ञाकारिता और सुदृढ़ संगठन ही उसकी सेना की प्रधान विशेषताएँ थीं। बिना किसी हिचकिचाहट या आशंका किए आज्ञा–पालन की शिक्षा उसके सारे अधिकारियों को पूर्ण रूप से दी गई थी।[47]

29 मई 1658 ई0 को प्रातःकाल ही दोनों सेनाएँ आमने–सामने सुसज्जित हो चुकी थी और मध्यान्ह तक युंद्ध आरम्भ हो गया। इस घमासान युद्ध के बाद दारा की पूरी तौर से पराजय हुई।[48]

औरंगजेब अच्छी तरह जानता था कि यह हार दारा के लिए अन्तिम नहीं हो सकती थी तथा दारा दिल्ली जाकर पुनः औरंगजेब के विरूद्ध

षडयन्त्र करेगा। अतः औरंगजेब के लिए यह आवश्यक हो गया था कि वह तुरन्त आगरा पहुँचे और अपनी जीत को सुरक्षित करे। इसी मंशा से आगरे को सुरक्षित किया तथा 13 जून को दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर उसने मुराद की निरन्तर बढ़ती हुई अभिलाषाओं से शंकित होकर उसे गिरफ्तार कर ग्वालियर भेज दिया। इस प्रकार अपने मार्ग का कंटक दूर कर वह दिल्ली पहुँचा।[49] संभवतः दारा भी इस युद्ध के बाद औरंगजेब का सामना नहीं कर पा रहा था। इसलिए उसने भी जान बचाकर पंजाब की ओर भागना उचित समझा।

दिल्ली पहुँचकर औरंगजेब ने 21 जुलाई 1658 ई0 को अपना प्रथम राज्याभिषेक करवाया था।[50]

इधर जोधपुर में आराम कर रहे जसवन्त सिंह के लिए भी सत्ता के इस संघर्ष का चेहरा साफ हो चुका था। इस संघर्ष में औरंगजेब की विजय से संभवतः जसवन्त सिंह को औरंगजेब की स्थिति के साथ–साथ अपनी स्थिति भी समझ में आ चुकी थी। संभवतः जसवन्त सिंह के मन में यह प्रश्न उठ रहा हो कि क्या अब मुगल मारवाड़ संबंध पहले की तरह हो पाएगा? क्या फिर से उसे मुगल सेवा में जाने का अवसर मिल पाएगा या नहीं? क्योंकि उसे भय था कि औरंगजेब धरमत के युद्ध में भाग लेने के कारण उसे दण्डित करेगा।[51]

ऐसा लगता है कि जसवन्त सिंह अभी तक औरंगजेब को एक

कुशल सेनानायक के ही रूप में पहचान सका था, अभी तो बादशाह औरंगजेब की राजनीतिज्ञता और कूटनीतिज्ञता देखना बाकी था। बादशाह बनने के बाद औरंगजेब ने साम्राज्य के सभी बड़े सरदारों के साथ जसवन्त सिंह का दरबार में उपस्थित होने का फरमान भेजा।[52] औरंगजेब का फरमान पाते ही जसवन्त सिंह को ऐसा लगा कि उसे अपने भय को खत्म करने का एक मौका मिल गया था। जसवन्त सिंह ने बिना समय व्यर्थ किए जोधपुर से प्रस्थान किया और अजमेर पहुँचकर वहाँ 40 दिनों तक रूका रहा। संभवतः जसवन्त सिंह को औरंगजेब द्वारा भेजे गए फरमान पर विश्वास नहीं हो रहा था और वह अजमेर पहुँचकर दिल्ली दरबार की राजनीति जानने का प्रयास कर रहा था। दिल्ली दरबार की राजनीति की वास्तविक स्थिति जानने के बाद उसने दरबार में उपस्थित होना ही उचित समझा। अजमेर में ही उसने मियाँ फरासत के स्थान पर मुँहणोत नैणसी को जोधपुर राज्य का प्रधानमंत्री नियुक्त किया और उसे जोधपुर का कार्यभार संभालने का आदेश देकर अजमेर से चला।[53] 14 अगस्त को सतलज नदी के किनारे रूपार नामक स्थान पर वह औरंगजेब की सेवा में जा उपस्थित हुआ और मुगल सम्राट को 500 अशर्फियाँ और 2000 रूपये उसने नजर की तौर पर भेंट किया।[54] संभवतः इस वक्त जयसिंह भी औरंगजेब के दरबार में उपस्थित था तथा मिर्जा जयसिंह की सिफारिश पर औरंगजेब ने जसवन्त सिंह को क्षमा कर दिया तथा उसे मुगल सेवा का

एक और अवसर दिया, साथ ही एक विशेष खिलअत, जरी की सिली हुई झूल और चाँदी के साज सहित एक हाथी और एक हथिनी तथा एक जड़ाऊ तलवार देकर सम्मानित किया।[55] इस समय औरंगजेब, जसवन्त सिंह को मुगल सेवा का अवसर प्रदान कर उसके व्यवहार की वास्तविकता जानने का प्रयास कर रहा था। अतः औरंगजेब जब अपनी सेना लेकर सतलज नदी के किनारे व्यवस्थित करने में व्यस्त था तो उसने जसवन्त सिंह को दिल्ली की जिम्मेदारी देने का मन बनाया तथा 30 अगस्त को एक विशेष खिलअत, एक जड़ाऊ जमधर, मोतियों का एक गुच्छा तथा एक करोड़ दाम (2.5 लाख रूपये) वार्षिक आय की जागीर प्रदान की तथा दिल्ली जाने की आज्ञा दी एवं अपनी अनुपस्थिति में राजधानी की देखभाल करने का आदेश दिया।[56] जसवन्त सिंह के लिए अपनी सत्यता को प्रकट करने का एक सुनहरा अवसर मिला था। शाही आदेश प्राप्त होते ही जसवन्त सिंह तुरन्त दिल्ली की तरफ रवाना हुआ और जब दिल्ली पहुँचा तो अन्य शाही सरदारों ने भी उसका स्वागत किया और उनकी सहायता से इसने वहाँ की सुरक्षा का भार अपने हाथ में ले लिया।[57]

यद्यपि औरंगजेब को सत्ता पर अधिकार मिल गया हो, लेकिन सत्ता के संघर्ष के प्रतिद्वन्दियों के जीवित रहते सत्ता को खतरा लगातार बना हुआ था। अतः औरंगजेब अपने सबसे निकटतम प्रतिद्वन्द्वी दारा का पीछा करते हुए मुल्तान पहुँचा, लेकिन मुल्तान पहुँचते ही औरंगजेब को सूचना

मिली कि उसका अन्य दूसरा प्रतिद्वन्द्वी शुजा बंगाल से अपनी सेना लेकर दिल्ली पर अधिकार करने की मंशा से बढ़ रहा है तो औरंगजेब ने बिना देर किए दिल्ली की सुरक्षा के लिए मुल्तान से दिल्ली की ओर प्रस्थान किया।[58] बादशाह के वापस दिल्ली आने का समाचार सुनकर जसवन्त सिंह ने इब्राहिम खाँ, दानिशमद खाँ, निजाबत खां आदि सरदारों के साथ आगे बढ़कर बादशाह का दिल्ली में स्वागत किया तथा औरंगजेब ने भी जसवन्त सिंह से प्रसन्न होकर एक विशेष खिलअत और नादरी देकर सम्मानित किया।[59] दिल्ली पहुँचते ही औरंगजेब ने शुजा का रास्ता रोकने के लिए सेना भेजने की तैयारी शुरू कर दी। थोड़े ही समय बाद जुल्फिकार खाँ भी राजपूत सरदारों के साथ इलाहाबाद पहुँच गया था।[60]

शाही सेना के बनारस तक पहुँच जाने के कारण शुजा आगरे तक नहीं पहुँच सका। लेकिन जब औरंगजेब को शुजा के बनारस से आगे बढ़ने की सूचना मिली तो बादशाह भी 2 जनवरी 1659 ई0 तक कोड़ा पहुँच गया तथा यही पर मीर जुमला भी दक्षिण से आ चुका था।[61] 3 जनवरी तक बादशाह ने अपनी सेना के साथ खजुआ नामक स्थान पर पड़ाव डाला। सेना की व्यूह रचना में जसवन्त सिंह को 14,000 चुने हुए राजपूत सैनिकों के साथ सेना के दाहिने पार्श्व में नियुक्त किया गया। उसकी सहायता के लिए महेशदास राठौड़, बल्लू चौहान, रामसिंह, हरराम राठौड़, बूंदी के भाव सिंह हाड़ा, जगत सिंह, मीर अजीज बदखशी, इस्लाम

खाँ, सैफखाँ, एहतिशाम खाँ, इकराम खाँ, हिम्मत खाँ और सैयद बहादुर शाही सरदार नियुक्त किए गए। औरंगजेब की कुल सेना की संख्या लगभग 90,000 थी।[62]

4 जनवरी को युद्ध शुरू होने की घोषणा की गई लेकिन दिन–भर कोई विशेष युद्ध न हो सका तथा शाम होते–होते सभी सैनिक पड़ाव में वापस आ गये थे। सभी पड़ाव में आ तो गए थे लेकिन कोई भी विश्राम की अवस्था में नहीं था तथा सभी को पड़ाव में रहते हुए चौकन्ना रहने का आदेश दिया गया था।

4 जनवरी की रात जब कुछ ही समय में सुबह होने वाली थी ऐसा लगता है कि जसवन्त सिंह इसी समय का इन्तजार कर रहा था। जिस समय पड़ाव में सभी लोग विश्राम की अवस्था में थे तभी जसवन्त सिंह का दिमाग बहुत ही बेचैन हो रहा था क्योंकि पिछले कुछ दिनों में उसके दिमाग में कुछ योजना चल रही थी जिसे अंजाम देने का समय आ गया था। सुबह होने से पूर्व ही जसवन्त सिंह ने अपने राजपूत सैनिकों के साथ शाहजादा सुल्तान मुहम्मद के पड़ाव में लूट–मार शुरू कर दी। शाही सेना ने सोचा कि शत्रु ने आक्रमण कर दिया है, लेकिन समय रहते ही उन्हें यह पता चल गया कि आक्रमण शत्रु सेना ने नहीं बल्कि अपनी ही सेना के जसवन्त सिंह ने किया। उस समय राजपूतों ने जो सामने दिखा उसे लूटकर जसवन्त सिंह के साथ चंपत हो गए थे। जसवन्त सिंह के इस

कार्य से सेना की व्यूह रचना टूट चुकी थी तथा पड़ाव में तरह–तरह की अफवाहें फैल गयी कि कायर और विश्वासघाती सैनिक जसवंत सिंह के साथ भाग गए और कुछ शुजा से जा मिले। कई सेनानायक अपना स्थान छोड़कर अपने असबाब की रक्षा के लिए दौड़े।[63]

ऐसा करने के पीछे जसवन्त सिंह की मंशा चाहे जो भी रही हो, लेकिन शाही सेना की स्थिति काफी गंभीर हो गयी थी। यदि इसी समय शुजा ने आक्रमण कर दिया होता तो संभवतः औरंगजेब के लिए बड़ी ही विपत्ति का समय हो जाता। लेकिन यह समय औरंगजेब के लिए अच्छा था। जसवन्त सिंह ने जाने से पहले शुजा को आक्रमण करने का संदेश भेजा था, लेकिन उस समय शुजा की किस्मत अच्छी नहीं थी। उसने शाही पड़ाव में हो रहे हलचलों को भी देखा लेकिन उसने अपने पड़ाव से बाहर निकलता उचित नहीं समझा। क्योंकि उसे लगा कि संभवतः यह औरंगजेब की कोई चाल हो सकती है शुजा को कैद करने लिए।[64] इस संदेह की परिस्थितियों ने शुजा को आगे बढ़ने से रोक रखा था और उसने अपनी जीत का सुनहरा अवसर खो दिया क्योंकि यह समय शुजा के लिए सही साबित हो सकता था लेकिन शाम होते–होते खजुवा[65] का मैदान औरंगजेब की जीत के नाम रहा और शुजा की सेना बुरी परास्त हुई जिसने शुजा को वहाँ से भागने पर मजबूर कर दिया था। औरंगजेब की विजय हुई और बहुत सारी तोपें, हाथी तथा खजाने का कुछ भाग उसके

हाथ लगा।

अब प्रश्न यह उठता है कि जसवन्त सिंह ने इस तरह का व्यवहार क्यों किया वो भी तब, जब कि औरंगजेब ने उसे माफ कर फिर से विश्वास कर मुगल सेवा का अवसर दिया? क्या जसवन्त सिंह, बादशाह औरंगजेब के विश्वास के लायक था ही नहीं?

ऐसा लगता है कि जसवन्त सिंह ने औरंगजेब की सेवा स्वीकार तो कर ली थी लेकिन उसकी निष्ठा और औरंगजेब के प्रति नहीं हो पा रही थी उसे सिर्फ परिस्थितियों वश औरंगजेब के अधीन आना पड़ा था। अतः अभी तक वह असमंजस की स्थिति में था। पिछले कुछ दिनों से वह शुजा से गुप्त रूप से बातचीत कर रहा। ऐसा प्रतीत होता है कि सत्ता के संघर्ष का परिणाम जसवन्त सिंह के अनुरूप न होने से उसके मन का द्वन्द्व शान्त नहीं हो रहा था। वह अच्छी तरह से समझ चुका था कि दारा का दिल्ली वापस लौटना असंभव हो गया था, मुराद अब तक बंदी बनाया जा चुका था तथा शुजा की परिस्थिति या कमजोरी अच्छी तरह से जानता था कि वह कभी भी औरंगजेब से युद्ध नहीं जीत सकता था। इन सारी परिस्थितियों के मद्‌देनजर जसवन्त सिंह के दिमाग में एक ही बात आयी कि इस समय सम्राट शाहजहाँ जीवित है और उन्हीं को पुनः सम्राट बनाने के लिए प्रयास किया जाए तो संभवतः सभी मुगल सरदार उसका साथ देंगे। यदि शाहजहाँ फिर से बादशाह बन जाता तो संभवतः जसवन्त सिंह

की द्वन्द्व की स्थिति का अन्त हो जाता। इसी मंशा से वह शुजा से पत्र–व्यवहार कर रहा था जिससे इस कार्य में शुजा भी जसवन्त सिंह का साथ दे सके और दोनों की संयुक्त सेना जल्द से जल्द आगरा पहुँच जाए और बंदी गृह से शाहजहाँ को मुक्त करने में सफल हो सके।

युद्ध आरम्भ होने से पूर्व ही शुजा ने कुबाद नामक एक कर्मचारी को जसवन्त सिंह के पास भेजा तथा कहलवाया कि हमारे और आपके बीच जो समझौता हुआ था उसके अनुसार आप हमारे साथ सम्मिलित होकर युद्ध में भाग लीजिए। जसवन्त सिंह ने जवाब में कहलाया कि इस समय की हालत देखते हुए मेरा आपके पास आना ठीक नहीं है। आप उस समय मेरा साथ दीजिएगा।[66]

पत्रों के इन आदान–प्रदान से हम यह जान सकते हैं कि जसवन्त सिंह योजना तो बना रहा था लेकिन मन–ही–मन वह औरंगजेब से डर भी रहा था जिसके कारण वह शुजा से स्वयं मिलने नहीं जा रहा था। ऐसा लगता है कि वह अभी भी दोनों नावों में सवार होने के बारे में सोच रहा था कि अगर शाहजहाँ को कैद से नहीं छुड़ा सके तो औरंगजेब की सेवा में यथावत् बने रहें।

अन्त समय में जसवन्त सिंह की सारी योजनाएँ असफल हो गयीं। संभवतः औरंगजेब को भी यह सूचना मिल चुकी थी कि युद्ध के समय जसवन्त सिंह कोई बाधा उत्पन्न कर सकता था। औरंगजेब के

आदेशानुसार मीर जुमला को जसवन्त सिंह की योजनाएँ जानने के लिए भेजा गया और मीर जुमला ने उससे यह वादा ले लिया कि वह युद्ध में शाही सेना के दाहिने भाग रहेगा।

जसवन्त सिंह के व्यवहार का पता लगते ही औरंगजेब चाहता तो उसे तुरन्त ही दिल्ली या जोधपुर जाने की आज्ञा दे सकता था लेकिन वह एक बादशाह था जिसने अपनी क्षमता से सत्ता प्राप्त किया था और वह तुरन्त कोई भी ऐसा फैसला नहीं ले सकता था जिससे सेना का मनोबल टूट जाए या सेना में किसी प्रकार की अफवाह फैल जाए। साथ ही यह भी संभव था कि ऐसा करने से जसवन्त सिंह तुरन्त ही शुजा से मिल जाता तथा औरंगजेब की कठिनाईयों को और बढ़ा देता। अतः औरंगजेब ने ऐसा कोई भी कार्य करना उचित नहीं समझा जिससे भविष्य में उसे हानि उठानी पड़े।

खजुवा के युद्ध से भागकर जसवन्त सिंह 23 जनवरी 1659 ई0 को जोधपुर पहुँचा।[67]

जसवन्त सिंह के व्यवहार को देखने के बाद औरंगजेब के लिए यह आवश्यक हो गया था कि वह जसवन्त सिंह को उसके व्यवहार के अनुरूप दण्ड दें। जसवन्त सिंह द्वारा किए गए विश्वासघात के बाद यह स्वाभाविक ही था कि एक बादशाह एक विश्वासघाती को दण्डित करें। जसवन्त सिंह को दण्ड देने के लिए मुहम्मद अमीन खाँ की अध्यक्षता में दस हजार

सैनिकों और कुछ तोपों के साथ एक शाही सेना को 16 जनवरी 1659 ई0 जोधपुर रवाना होने का आदेश दिया। इस सेना के साथ अब्दुल्ला खाँ, हिजब्र खाँ, मुहम्मद बेग, नुसरत खाँ, शेख बीजापुरी, सैयद मसूद बारहा तथा राजा सूरजमल के साथ ही अमरसिंह के पुत्र राय रायसिंह को 'राजा की उपाधि', चार हजारी मनसब, एक लाख रूपया नकद और खिलअत देकर जोधपुर प्रस्थान करने का आदेश दिया तथा यह आदेश भी दिया गया कि जोधपुर से जसवन्त सिंह को बाहर कर जोधपुर का अधिकार रायसिंह को दे दिया जाए।[68] जसवन्त सिंह को दण्ड देने के साथ ही औरंगजेब के मन में लगातार यह शंका बनी हुई थी कि यदि खजुवा में जसवन्त सिंह, शुजा से पत्र–व्यवहार कर सकता है तो जोधपुर पहुँचकर दारा से भी सम्पर्क अवश्य करेगा। अतः औरंगजेब ने जसवन्त सिंह के पास इस आशय से संदेश भेजा कि वह किसी प्रकार के विद्रोह की चेष्टा न करे और न दारा से मिले, अन्यथा उसका पूरा परिवार नष्ट कर दिया जाएगा।[69] जसवन्त सिंह और दारा को मिलने से रोकने के लिए औरंगजेब ने स्वयं अजमेर पहुँचने की योजना बनाई।[70]

जसवन्त सिंह द्वारा किए गए विश्वासघात के बाद वह अच्छी तरह से जानता था कि औरंगजेब उसे दण्डित करेगा। इसी भय से जोधपुर पहुँचते ही उसने अपनी सेना को संगठित करना शुरू कर दिया।[71] लेकिन उसके अन्दर औरंगजेब का सामना करने की हिम्मत न बची थी इसीलिए

जैसे ही उसे शाही सेना के आने की सूचना मिली वह घबड़ा कर अपनी जान बचाने के लिए मंडौर से सिवाना के पहाड़ी दुर्ग की ओर चला गया।

काफी दिनों तक इधर–उधर भटकने के बाद दारा भी जनवरी 1969 ई० को गुजरात पहुँच गया, जहाँ शाहनवाज खाँ ने मुराद द्वारा संग्रहित कोष दारा को सौंप दिया जिससे दारा ने बाइस हजार सैनिकों को संगठित कर लिया था।[72] औरंगजेब को जिस बात की आशंका थी वही हुआ। दारा के गुजरात पहुँचने की सूचना पाते ही जसवन्त सिंह और दारा के बीच पत्र–व्यवहार प्रारम्भ हो गया तथा जसवन्त सिंह ने दारा को पूरी सहायता देने का आश्वासन दिया था। दोनों ने मिलकर जल्द से जल्द आगरा पहुँचने की योजना बनाई तथा बंदीगृह से शाहजहाँ को मुक्त कराकर औरंगजेब को समाप्त करना चाहते थे। इसी आशय से जसवन्त सिंह ने दारा के पास संदेश भेजा कि 'वह अब भी सम्राट शाहजहाँ के प्रति स्वामिभक्त हैं और उसे मुक्त करने तथा गद्दी पर बैठाने में वह दारा की पूरी–पूरी सहायता करने को तैयार हैं।' उसने दारा को अपने राज्य में आमंत्रित किया ताकि वहाँ से उनकी सम्मिलित सेना औरंगजेब का विरोध करने के लिए आगे बढ़े।[73] जसवन्त सिंह का निमंत्रण स्वीकार कर दारा अजमेर की ओर बढ़ा। इन सारी गतिविधियों की पल–पल की जानकारी औरंगजेब को मिल रही थी। सारी परिस्थितियों को जानने के बाद औरंगजेब यह समझ चुका था कि यदि दारा से युद्ध किया जाए तो संभव

है कि युद्ध क्षेत्र राजपूताना ही होगा और जसवन्त सिंह भी दारा के साथ होगा जिससे यह भी संभव हो सकता है कि राजपूताना के अन्य राजा भी उसका साथ दें। औरंगजेब की यह विशेषता रही कि उसे कूटनीति से युद्ध जीतना बहुत अच्छी तरह से आता था। इस बार अपनी कूटनीति को अंजाम देने के लिए उसने अपने विश्वस्त सरदार और चतुर कूटनीतिज्ञ मिर्जा जयसिंह को प्रेरित किया कि वह जसवन्त सिंह को दारा के पक्ष से विमुख कर अपनी ओर मिला लेने के लिए उसे पत्र लिखे।[74]

औरंगजेब के आदेशानुसार मिर्जा जयसिंह ने जसवन्त सिंह को पत्र लिखा– "आपको इसमें क्या लाभ हो सकता है कि आप इस मंदभागी राजकुमार को सहायता देने का प्रयास करें? उसकी सहायता करने से आपका तथा आपके सम्पूर्ण परिवार का नाश अवश्यंभावी है और इस प्रकार दीन–हीन दारा के हितों को भी कोई विशेष लाभ न होगा। बादशाह औरंगजेब फिर कभी आपको क्षमा न करेगा। मैं स्वयं एक राजा हूँ और आपसे विनय करता हूँ कि व्यर्थ ही राजपूतों का रक्त न बहाएँ। आप ऐसी आशा न रखें कि अन्य राजाओं को आप अपने पक्ष में मिला लेंगे, क्योंकि ऐसे किसी भी प्रयास का प्रतिकार करने में मैं समर्थ हूँ। आपके इस कार्य से समस्त हिन्दुओं का संबंध है, इसलिए आपको मैं वह अग्नि प्रज्वलित करने की अनुमति नहीं दे सकता जो शीघ्र ही सारे साम्राज्य में फैल जाएगी और जिसे फिर किसी भी प्रकार शांत न किया जा सकेगा। इसके

विपरीत, यदि दारा को आप उसके भाग्य के सहारे छोड़ दें, तो औरंगजेब पिछली सारी बातों को भुला देगा, यहाँ तक कि आपसे उस धन को भी न मांगेगा जिसे आपने खजुवा में लूट लिया था, अपितु शीघ्र ही आपको गुजरात का सूबेदार नियुक्त कर देगा। अपने राज्य की सीमा के समीप स्थित ऐसे प्रांत पर शासन करने के क्या लाभ होंगे, यह आप आसानी से समझ सकते हैं। वहाँ आपको पूरी शांति और सुरक्षा रहेगी और यहाँ पर मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि अपने इस पत्र में मैंने जो कुछ भी कहा है उसका पूर्ण रूप से पालन होगा।''[75]

इस वक्त जसवन्त सिंह को वैसे ही अपना भविष्य अन्धकारमय दिख रहा था। इस पत्र को प्राप्त करने के बाद स्थिति और भी संकटमय हो गयी। इस परिस्थिति में जसवन्त सिंह का यह सोचना स्वाभाविक था कि यदि दारा की हार हो गयी तो उसके बाद जसवन्त सिंह का क्या होगा? काफी मानसिक द्वन्द्व के पश्चात् जसवन्त सिंह ने जयसिंह का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।[76]

दारा ने अजमेर पहुँचकर जसवन्त सिंह से मिलने के लिए कई बार पत्र व्यवहार किया तथा संदेश भेजे, लेकिन जसवन्त सिंह ने इस संदेश का कोई निश्चित उत्तर न दिया और टालमटूल करता रहा। अंतिम बार जब दारा ने अपने पुत्र सिपिहर शिकोह को जसवन्त सिंह के पास भेजा लेकिन अंततः जसवन्त सिंह ने दारा को संदेश भेजा कि–''मैं तो मुगल

दरबार का सेवक हूँ। मुझ से किसी प्रकार का समझौता या सहायता की आशा करना व्यर्थ है। आपको मेरे प्रति कृतज्ञ होना चाहिए कि मैं आपका विरोध नहीं कर रहा हूँ और इस पूरे झगड़े से अपने को अलग रख रहा हूँ।" अंततः सिपिहर शिकोह निराश होकर अजमेर वापस आ गया।[77]

जसवन्त सिंह का साथ न मिलने के कारण दारा अकेले ही औरंगजेब का सामना करने की तैयारी करने लगा। ऐसा प्रतीत होता है कि अजमेर पहुँचकर वह शाही सेना द्वारा इस तरह से घेरा जा चुका था कि अब उसके बाहर निकलने की संभावना खत्म हो चुकी थी। अतः दारा के पास उस वक्त युद्ध के अतिरिक्त अन्य कोई रास्ता न बचा था।

फलतः 12 मार्च 1659 ई0 को अजमेर से लगभग साढ़े चार मील दक्षिण में देवराई नामक स्थान पर दारा और औरंगजेब की सेना के बीच घमासान युद्ध आरम्भ हुआ। तीन दिन तक लगातार लड़ाई चलती रही। अन्ततः 14 मार्च दारा पराजित होकर देवराई से अपने प्राणों की रक्षा के लिए भाग निकला।[78]

दारा की हार का समाचार मिलते ही दूसरे दिन जसवन्त सिंह 15 मार्च 1659 ई0 को औरंगजेब के समक्ष उपस्थित हुआ तथा औरंगजेब ने अपने वादे के अनुसार जसवन्त सिंह को एक खिलअत प्रदान कर 7000 जात, 7000 सवार (5000 सवार दो अस्पा से अस्पा) का उसका पहले का मनसब स्वीकार किया और उसको गुजरात की सूबेदारी पर नियुक्त कर

शीघ्र ही वहाँ पहुँचने की आज्ञा दी।[79]

एक बार पुनः औरंगजेब ने जसवन्त सिंह को माफ कर मुगल सेवा करने का अवसर प्रदान किया तथा उसे गुजरात की सूबेदारी के लिए फरमान भेजा।

जसवन्त सिंह को गुजरात की सूबेदारी के लिए जो फरमान प्राप्त हुआ था उसमें साथ ही यह भी लिखा था कि वह जल्द से जल्द गुजरात पहुंचे और दारा को गुजरात से बाहर करे। जसवन्त सिंह को यह फरमान 19 मार्च, 1659 ई0 को बालसमंद में मिला था। इस फरमान के मिलते ही जसवन्त सिंह जोधपुर की तरफ रवाना हुआ, शाही आज्ञानुसार उसने पुत्र पृथ्वीसिंह को दरबार में उपस्थित होने के लिए रवाना किया और स्वयं सालावास, जालौर और भीनमाल होते हुए सिरोही पहुँचा और वहाँ पड़ाव डाल दिया।[80]

जसवन्त सिंह के जोधपुर पहुँचते ही उसे सूचना मिली की रावल सबलसिंह ने भाटियों की सहायता से पोकरण को घेर लिया है। तब राठौड़ सबलसिंह और मुँहणोत नैणसी को सेना के साथ पोकरण भेजा गया। अंत में बीकानेर के शासक करणसिंह ने भाटियों और राठौड़ों में मेल करवा दिया और मुँहणोत नैणसी जोधपुर वापस चला गया।[81]

जसवन्त सिंह जब सिरोही में पड़ाव डाले हुए था, उसी समय 30 मार्च, 1659 ई0 को इसका विवाह सिरोही के शासक राव अखैराज द्वितीय

की पुत्री आनंदकुँवर के साथ हुआ।[82]

इसके बाद जसवन्त सिंह, मिर्जा जयसिंह और बहादुर खाँ के साथ दारा का पीछा करते हुए आगे बढ़े। 5 अप्रैल, सन् 1959 ई0 को जसवन्त सिंह शाही सेना के साथ सिंधपुर पहुँचा। जहाँ पर यह सूचना प्राप्त हुई कि दारा गुजरात से कच्छ की ओर भाग गया है। तब वहाँ से आगे बढ़कर 11 अप्रैल को जसवन्त सिंह शाही सेना के साथ अहमदाबाद पहुँचा। दूसरे ही दिन 12 अप्रैल को जयसिंह भी वहाँ पहुँच गया। अहमदाबाद पहुँचकर जसवन्त सिंह वहाँ कुछ दिन तक रूका तथा गुजरात की सूबेदारी का कार्य अपने हाथों में लिया। गुजरात की सूबेदारी संभालने के कुछ दिनों पश्चात् 10 नवम्बर 1659 ई0 को जसवन्त सिंह की सेवाओं से प्रसन्न होकर बादशाह ने उसे 'महाराजा' की उपाधि से सुशोभित किया।[83]

गुजरात की शासन सत्ता संभालते ही उसने गुजरात प्रांत की अशांति और अव्यवस्था को दूर कर वहाँ की शासन व्यवस्था में काफी सुधार किया।[84]

दक्षिण में शिवाजी के अभ्युदय से उस क्षेत्र में काफी अव्यवस्था फैल गयी थी। दक्षिण में नियुक्त शाइस्ताखाँ को शिवाजी को दबाने में पूर्ण सफलता नहीं मिल पा रही थी। अतः औरंगजेब ने जसवन्त सिंह के पास यह आज्ञा भेजी कि वह पाँच हजार सवार कुछ तोपें और सफकिशन खाँ

को साथ लेकर शाइस्ताखाँ की सहायता के लिए दक्षिण पहुँच जाए।[85]

शाही आदेश प्राप्त करते ही जसवन्त सिंह तुरन्त ही दक्षिण को रवाना हो गया तथा 11 अप्रैल 1662 ई0 तक पूना पहुँच गया था। जसवन्त सिंह के दक्षिण पहुँचने तक में शिवाजी ने दक्षिण भाग पर पूरी तरह अधिकार जमा लिया था, लेकिन साथ ही वह मुगलों की बढ़ती हुई क्षमता से चिन्तित भी रहता था। शाइस्ता खाँ ने पूना के साथ–साथ लाल महल पर अधिकार कर लिया जो कि शिवाजी का बचपन का निवास स्थान था। जसवन्त सिंह भी पूना के समीप पहुँचकर सिंहगढ़ के पास अपना पड़ाव डाल दिया।[86] इसी समय तक शिवाजी भी सिंहगढ़ पहुँच चुका था तथा मुगलों को वहाँ से खदेड़ने का रास्ता ढूँढ़ रहा था। सिंहगढ़ पहुँचने के बाद शिवाजी ने लाल महल पर अधिकार करने हेतु 5 अप्रैल 1663 ई0 को अपने विश्वस्त सरदारों के साथ सिंहगढ़ से आगे बढ़ा। यद्यपि रास्ते में जसवन्त सिंह ने पड़ाव डाल रखा था लेकिन इस सेना के बीच से ही छिपकर शिवाजी वहाँ से आगे निकलने में सफल होकर पूना तक पहुँच गया।[87]

शाही पड़ाव तक पहुँचने के बाद छिपकर कुछ समय व्यतीत करने के बाद अपने सेनिकों के शाइस्ताखाँ के निवास स्थान में प्रवेश किया। बिना किसी विरोध के बड़े ही आसानी से वह शाइस्ताखाँ तक पहुँच गया। शाइस्ता खाँ जब तक सारी परिस्थिति को समझ पाता शिवाजी उसके

सामने खड़ा था। शाइस्ताखाँ अपने अस्त्र–शस्त्रों का प्रयोग भी न कर सका और शिवाजी ने एक झटके में ही तलवार से उसका अँगूठा काट दिया। इस घटना में शाइस्ताखाँ के एक पुत्र, छः बेगमों और चालीस सेवकों को मार कर तथा खान के दो अन्य पुत्र, आठ स्त्रियों तथा स्वयं खान को घायल कर शिवाजी वापस लौट गया।[88] संभवतः लाल महल का कोना–कोना जानने के कारण शिवाजी इतनी आसानी से शाइस्ताखाँ तक पहुँच गया था।

अगले दिन इस दुर्घटना की सूचना पाकर वहाँ पर उपस्थित सभी सरदार शाइस्ताखाँ के पास सहानुभूति प्रकट करने पहुँचे जिसमें जसवन्त सिंह भी शामिल था। उसे देखते ही शाइस्ताखाँ ने व्यंग्य किया, "जब शत्रु ने मुझ पर आक्रमण किया तो मैंने सोचा कि आप पहले ही उनसे लड़ते–लड़ते मारे गए और मुझे इस विपत्ति का सामना करना पड़ा।"[89] शाइस्ताखाँ का ऐसा व्यंग्य करना उचित प्रतीत भी होता है क्योंकि यह घटना जसवन्त सिंह की असतर्कता का परिणाम था। यदि मार्ग में ही जसवन्त सिंह जागरूक होकर बारात के रूप में आए इस सेना की छानबीन करता तो संभवतः शिवाजी की पहचान कर पाता। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि जसवन्त सिंह और शाइस्ताखाँ के गुप्तचर व्यवस्था की कमियों के कारण यह घटना अंजाम तक पहुँच सका।

इस लापरवाही की सूचना औरंगजेब तक मई, 1663 ई0 तक पहुँच

चुकी थी। औरंगजेब ने तुरन्त ही शाहजादा मुअज्जम को दक्षिण का सूबेदार बनाकर जाने तथा शाइस्ता खां को बंगाल का सूबेदार नियुक्त कर तुरन्त पहुँचने का शाही आदेश दिया तथा जसवन्त सिंह को दक्षिण में रहकर मुअज्जम की सहायता करने का हुक्म दिया। लेकिन शाहजादा मुअज्जम तथा जसवन्त सिंह ने मिलकर भी दक्षिण में कोई विशेष उपलब्धि हासिल नहीं की। उधर शिवाजी ने भी मुगल सेना की निष्क्रियता को देखकर सूरत और अहमदनगर को लूट लिया था। औरंगजेब को यह सूचना मिली तो उसने 30 सितम्बर 1664 ई0 को मुअज्जम और जसवन्त सिंह को दक्षिण से वापस आने के लिए फरमान भेजा तथा उनके स्थान पर मिर्जा जयसिंह तथा दिलेर खाँ को दक्षिण जाने का शाही आदेश दिया गया।[90] जयसिंह के दक्षिण पहुँचने पर जसवन्त सिंह ने वहाँ का सारा कार्यभार उसे सौंप कर दिल्ली की तरफ प्रस्थान किया तथा दरबार में उपस्थित होकर बादशाह से भेंट की।

दक्षिण से लौटने के बाद जसवन्त सिंह दिल्ली में ही रह रहा था तथा उसका पुत्र पृथ्वीसिंह भी वही जसवन्त सिंह से मिलने पहुँचा था क्योंकि जसवन्त सिंह को जोधपुर जाने का अवसर नहीं मिल पा रहा था। 6 जुलाई, 1665 ई0 को जसवन्त सिंह अपने पुत्र पृथ्वी सिंह के साथ दरबार में उपस्थित हुआ।

22 जनवरी, 1666 ई0 को आगरे में शाहजहाँ की मृत्यु हो गयी थी।

शाहजहाँ की मृत्यु की खबर जब दिल्ली पहुँची तो उस समय जसवन्त सिंह भी दिल्ली में ही उपस्थित था। इस समय जसवन्त सिंह अपने पुत्र पृथ्वीसिंह के साथ आगरा पहुँचा।

दक्षिण में शिवाजी ने मुगलों को लम्बे समय से परेशान कर रखा था। शाहजहाँ की मृत्यु की वर्षगाँठ पर शाही शोक हेतु राजदरबार आयोजित किया गया था। इस अवसर पर शिवाजी को उपस्थित होना था तथा शिवाजी के आने की जिम्मेदारी जयसिंह के ज्येष्ठ पुत्र रामसिंह पर था। रामसिंह ने शाही आज्ञानुसार शिवाजी को दीवान–ए–खास में उपस्थित किया। लेकिन शिवाजी को उनकी इच्छानुसार सम्मान ने मिलने पर वह दरबार से चले आए। बाद में औरंगजेब द्वारा शिवाजी को बुलाया गया। जब कुछ सरदार खिलअत लेकर शिवाजी के पास पहुँचे तो उसने उत्तर दिया–"मैं यह खिलअत लेना अस्वीकार करता हूँ। सम्राट ने जानबूझकर मुझे उस जसवन्त सिंह के नीचे खड़ा किया जिसकी पीठ युद्ध भूमि से मेरे सिपाहियों ने देखी थी।"[91]

शिवाजी द्वारा किए गए व्यंग्य की सूचना प्राप्त होते ही जसवन्त सिंह ने भी औरंगजेब से प्रार्थना की कि 'शिवाजी के उद्दण्डतापूर्ण व्यवहार के लिए उसे कठोर दण्ड दिया जाय।'[92] इस प्रार्थना के बाद शिवाजी को बंदी बना लिया गया। 16 अगस्त्त 1966 ई0 तक शिवाजी बड़े ही रोचक ढंग से वहाँ से बाहर निकलकर पुनः दक्षिण की तरफ रवाना हो

गया।[93]

ईरान के शाह अब्बास द्वितीय की तरफ से मुगल साम्राज्य पर खतरा होने के कारण जसवन्त सिंह को दिल्ली से लाहौर जाने का आदेश दिया गया लेकिन ईरान की तरफ से खतरा टल जाने के कारण औरंगजेब ने उसे लाहौर से आगे बढ़ने के लिए मना कर दिया।

दरबार में वापस लौटने के बाद जसवन्त को शीघ्र ही दक्षिण जाने का आदेश दिया गया। दक्षिण की परिस्थितियों को देखते हुए 23 मार्च, 1667 ई0 को औरंगजेब ने जसवन्त सिंह और मुअज्ज्म को पुनः दक्षिण में नियुक्त कया। शाही आदेश प्राप्त कर जसवन्त सिंह ने मुअज्जम के साथ औरंगाबाद पहुँचकर मिर्जा जयसिंह से कार्यभार ग्रहण कर लिया।[94] औरंगाबाद में ही उसे सूचना मिली कि 8 मई, 1667 ई0 को आगरे में ही उसके ज्येष्ठ पुत्र पृथ्वीसिंह की मृत्यु हो गयी।[95] इस घटना के कुछ दिन बार औरंगजेब ने एक फरमान तथा सिरोपाव जसवन्त सिंह के लिए भेजा।

दक्षिण में जसवन्त सिंह की सेवाओं से प्रसन्न होकर औरंगजेब ने उसे गुजरात के थिराद और रायणपुर नामक परगने जागीर स्वरूप दिए।[96]

9 जनवरी 1671 को औरंगजेब ने बहादुर खाँ को गुजरात की सूबेदारी छोड़कर दक्षिण जाने का आदेश दिया जहाँ उसे एक शाही सेना का अध्यक्ष नियुक्त किया तथा बहादुर खाँ के स्थान पर जसवन्त सिंह को गुजरात का सूबेदार नियुक्त किया।[97]

गुजरात जाने के साथ ही जसवन्त सिंह को यह आदेश दिया गया कि जो सरकारी ऋण उसपर बाकी है, उसे वह दो लाख रूपया प्रतिवर्ष सरकारी खजाने में जमा कराए। लेकिन जसवन्त सिंह की प्रार्थना पर बादशाह ने उस वर्ष केवल 50,000 रूपया जमा करने की आज्ञा दी और यह स्पष्ट कर दिया कि अगले कुछ वर्षों में उसे किसी प्रकार की छूट नहीं दी जाएगी।[98]

अभी जसवन्त सिंह गुजरात के छोटे–मोटे स्थानीय झगड़ों को शांत करने में ही लगा हुआ था कि औरंगजेब ने 21 मई, 1671 ई0 को उसे अफगानों का उपद्रव शांत करने के लिए जमरूद का थानेदार नियुक्त किया और इस अवसर पर उसके लिए एक बरसाती खिलअत और पाँच सौ मोहरों के मूल्य का एक घोड़ा भेजा।[99] शाही आदेश प्राप्त करने के पश्चात् जसवन्त सिंह शीघ्र ही गुजरात की व्यवस्था को ठीक कर जमरूद की ओर रवाना होने की तैयारियों में जुट गया।

इस समय उत्तरी–पश्चिमी सीमा प्रान्त पर इन अफगानों का विरोध पुनः बढ़ता जा रहा था। 1677 ई0 में औरंगजेब ने अपने विश्वस्त सरदार अमीरखाँ को काबूल का सूबेदार नियुक्त किया था लेकिन सफल न हो पाने के कारण शीघ्र ही शुजात खाँ को ससैन्य पेशावर भेजा। साथ ही जसवन्त सिंह को शुजात खाँ की सहायता का आदेश दिया। शुजात खाँ के काबुल पहुँचने पर अफगानों ने उस पर आक्रमण कर दिया। इसकी

सूचना मिलते ही जसवन्त सिंह सेना सहित युद्धस्थल पर पहुँचा, लेकिन इससे पहले ही शुजात खाँ मारा जा चुका था। जसवन्त सिंह ने वहाँ युद्ध जारी रखा तथा औरंगजेब की आज्ञा प्राप्त कर वहाँ पर अनेक थाने स्थापित करवाये। औरंगजेब ने स्वयं काबूल जाने का निश्चय किया। रावलपिण्डी में जसवन्त सिंह मुगल सम्राट की सेवा में उपस्थित हुआ। जसवन्त सिंह ने अफगानों के विद्रोह को शान्त कर वहाँ शान्ति स्थापित की।[100]

जमरूद में निवास के दौरान ही जसवन्त सिंह को सूचना मिली कि 22 जनवरी, 1676 ई0 को उसके एकमात्र जीवित पुत्र जगत सिंह की मृत्यु हो गयी थी।[101] परन्तु वह कर्तव्य वश जमरूद में ही डटा रहा।

इस दुखद सूचना के प्राप्त होने पर वह अधिक दिन तक जीवित न रह सका और केवल 52 वर्ष की अवस्था में ही 28 नवम्बर, 1678 ई0 को जमरूद में ही उसकी मृत्यु हो गयी।[102]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.मुंशी देवी प्रसाद, शाहजहाँनामा, भाग 3, पृ0 169; मुन्तखब–उल–लुबाब, इलियट, हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, जि0 7, पृ0 213

2. मासूम, पृ0 6ब, 7अ, 29अ

3. मासूम, पृ0 32अ

4. सरकार, 1–2, पृ0 277–281; रतमाल, पृ0 107

5. सरकार, औरंगजेब, पृ0 31–32

6. राजस्थान, पृ0 113; सूरज प्रकाश, भाग–2, पृ0 4 (ग्रंथ सारांश)

7. सरकार, पृ0 34

8. वही, पृ0 61

9. बनारस से 5 किमी0 पूर्व की ओर गंगा नदी के किनारे स्थित है।

10. कम्बू भाग 3, पृ0 285; रतमाल, पृ0 109, जसवन्त सिंह, पृ0 53

11. फुतूहात, पृ0 19अ; सरकार, भाग 1–2, पृ0 284

12. जसवन्त सिंह, पृ0 53–54

13. कम्बू, भाग 3, पृ0 285; आलमगीर, पृ0 33; दिलकुशा, पृ0 14ब; फुतूहात, पृ0 19 ब; केवलराम, पृ0 217 अ; वीर, भाग 2, पृ0 824, 1109

14. रतमाल, पृ0 109–110

15. जैतदान, पृ0 26; वीर, भाग 2, पृ0 366–369, 374–375, 986, 1490

16. आलमगीर, पृ0 29, 33–34; वाकियात, पृ0 12; सरकार, भाग 1–2, पृ0 284, 310

17. आलमगीर, पृ0 42–49; सरकार, भाग 1–2, पृ0 344–345; रतमाल, पृ0 111

18. फैयाज, पृ0 566–567, 569, 580–585; सरकार, 1–2, पृ0 310–311; रतमाल, पृ0 112

19. फैयाज, पृ0 601, 602

20. सरकार, पृ0 40

21. आलमगीर, पृ0 56–57; सरकार, भाग 1–2, पृ0 311, 348

22. आलमगीर, पृ0 57
23. आलमगीर, पृ0 50, 52, 55, 56; वाकियात, पृ0 14; कम्बू, भाग 3, पृ0 285–86; सरकार, भाग 1–2, पृ0 312, 346–347; रतमाल, पृ0 113
24. आलमगीर, पृ0 50–51, 58–59; सादिक, पृ0 97ब; वाकियात, पृ0 14; फुतूहात, पृ019ब, 20अ; वीर, भाग 2, पृ0 345; सरकार, भाग 1–2, पृ0348–349; रतमाल, पृ0 114
25. रतमाल, पृ0 115; सरकार, भाग 1–2, पृ0 349
26. सरकार, भाग 1, 2, पृ0 357; मिलिट्री हिस्ट्री, पृ0 109; फैयाज, पृ0 590; फुतूहात, पृ0 38ब
27. आलमगीर, पृ0 56; कम्बू, भाग 3, पृ0 286; फुतूहात, पृ0 19अ, ब; सरकार, भाग 1–2, पृ0 349
28. आलमगीर, पृ0 56, 57–60; कम्बू, भाग 3, पृ0 286; फुतूहात, पृ0 19अ, ब; सरकार, भाग 1–2, पृ0 347, 349
29. वाचनिका, पृ0 14–19; रतमाल, पृ0 118–119
30. फुतूहात, पृ0 20 अ; सरकार, भाग 1–2, पृ0 354–355; रतमाल, पृ0 119
31. आलमगीर, पृ0 64; वाकियात, पृ0 14; फुतूहात, पृ0 20 अ, ब; सरकार, भाग 1–2, पृ0 350
32. आलमगीर, पृ0 65–66; वाकियात, पृ0 15; फुतूहात, पृ0 21 अ, ब; सरकार, भाग 1–2, पृ0 358–359; वीर, भाग 2, पृ0 346–347; मिलिट्री हिस्ट्री, पृ0 110
33. सरकार, भाग 1–2, पृ0 354
34. आलमगीर, पृ0 61–63; वाकियात, पृ0 15; वीर, भाग–2, पृ0 345–346; सरकार, भाग 1–2, पृ0 357–358; मिलिट्री हिस्ट्री, पृ0 109 । शाही सेना का विस्तृत वर्णन, 'जोधपुर हुकूमत री बही', में किया गया है; पृ0 6–15
35. मुंशी देवी प्रसाद, शाहजहाँ, भाग–3, पृ0 176
36. फैयाज, पृ0 591; वाकियात, पृ0 16; वीर, भाग 2, पृ0 424; रतमाल, पृ0 124–125।

37. फुतूहात, पृ0 22 अ; वीर, भाग 2, पृ0 348; सरकार, भाग 1–2, पृ0 365–366; रतमाल, पृ0126; गोपीनाथ (राजस्थान), पृ0 437–439; जसवन्त सिंह, पृ0 61–62
38. वचनिका, पृ0 47–74; रतमाल, पृ0 127; सरकार, भाग 1–2, पृ0 369; आलमगीर, पृ0 64–72; वाकियात, पृ0 15–16; सादिक, पृ0 97 अ–98 अ; हातिम खाँ, पृ0 21 ब–23 ब; कामवार खाँ, पृ0 213 अ; कम्बू, भाग 3, पृ0 286–290; मासूम, पृ0 48 अ–51 अ; जैतदान, पृ0 23–40; सूर्यप्रकाश, भाग–2, पृ0 16–23; वीर, भाग 2, पृ0 347–349; रतमाल, पृ0 123–127; मिलिट्री हिस्ट्री, पृ0 108–112 पर धरमत के युद्ध का विवरण दिया गया है।
39. राठौड़ा, पृ0 146–147; जैतदान, पृ0 39, 40; तिवारी, पृ0 9; रेऊ, भाग 1, पृ0 255; ओझा, भाग–4, पृ0 435
40. आलमगीर, पृ0 33; सरकार, भाग 1–2, पृ0 353
41. जसवन्त सिंह, 7000 जात, 7000 सवार (5000 सवार दो अस्पा से अस्पा) तथा कासिम खाँ–5000 जात तथा 5000 सवार
42. बर्नियर, पृ0 38–39; मनूची, भाग 1, पृ0 259; सरकार, भाग 1–2, पृ0 353–354, 365; रतमाल, पृ0 125
43. सरकार, भाग 1–2, पृ0 352; रतमाल, पृ0 120–121
44. जसवन्त सिंह, पृ0 65
45. वही, पृ0 65
46. जसवन्त सिंह, पृ0 65–66
47. सरकार, पृ0 47
48. मासूम, पृ0 59 अ; सरकार, भाग 1–2, पृ0 383
49. सरकार, भाग 1, 2, पृ0 406–436
50. आलमगीर, पृ0 152–153; वाकियात, पृ0 35; मआसिर, पृ0 4; सरकार, भाग 1–2, पृ0 446
51. जसवन्त सिंह, पृ0 67

52. तिवारी, पृ0 24; जैतदान, पृ0 43; दानेश्वर, पृ0 163; ओझा, भाग 4–1, पृ0 439;
53. नैणसी, भाग–2, पृ02 (वंश परिचय); गटलोत, पृ0 154; ओझा, 4–1, पृ0440
54. आलमगीर, पृ0 182; सुजानराय, पृ0 520; जयसिंह, पृ0 173; राजस्थान, पृ0 118; मआसिर, पृ0 5
55. आलमगीर, पृ0 183; मआसिर, पृ0 5; फुतूहात, पृ0 39 ब; सुजानराय, पृ0 520; कामवार खाँ, पृ0 219 ब; वीर, भाग 2, पृ0 825–27; जयसिंह, पृ0 173–74; फारूकी, पृ0 205
56. आलमगीर, पृ0 189; वीर, भाग 2, पृ0 686; तिवरी, पृ0 25; जैतदान, पृ0 44; रेऊ, भाग 1, पृ0 226
57. सुजानराय, पृ0 525; रेऊ, भाग–1, पृ0 226
58. आलमगीर, पृ0 212–213; दिलकुशा, पृ0 18; मआसिर, पृ0 5–6; मासूम, पृ0 99 ब; सरकार, भाग 1–2, पृ0 477–478
59. आलमगीर, पृ0 220; कामवार खाँ, पृ0 220 ब; वीर, भाग 2, पृ0 686; रेऊ, भाग 1, पृ0 227
60. आलमगीर, पृ0 234; वाकियात, पृ0 36; सरकार, भाग 1–2, पृ0 478
61. आलमगीर, पृ0 235–38, 241–42; मआसिर, पृ0 6; सरकार, भाग 1–2, पृ0 479; लाइफ ऑफ मीर जुमला (जगदीश नारायण सरकार), पृ0 147
62. आलमगीर, पृ0 246–250; मआसिर, पृ0 7; बख्तावर खाँ, पृ0 111 अ; कामवार खाँ, पृ0 211 ब; सुजानराय, पृ0 530; हातिम खाँ, पृ0 59 ब; खाफी खाँ, भाग–2, पृ0 48; वीर, भाग 2, पृ0 826; सरकार, भाग 1–2, पृ0 482
63. आलमगीर, पृ0 255; मासूम, पृ0 110 ब–112 अ, हातिम खाँ, पृ0 59 ब; वीर, भाग 2, पृ0 826; सरकार, भाग 1–2, पृ0 483
64. सरकार, भाग 1–2, पृ0 484; रेऊ, भाग–1, पृ0 228; आसोपा, पृ0 183; जैतदान, पृ0 46
65. खजुवा के युद्ध का विस्तृत विवरण, आलमगीर, पृ0 243–284; मासूम, पृ0 101ब–105ब; 110 अ–112 अ; वाकियात, पृ0 37–39; खाफी खाँ, भाग 2, पृ0

45–90; सरकार, भाग 1, 2, पृ0 468–495

66. फुतूहात, पृ0 41 अ, ब; पत्रों के आदान–प्रदान का वर्णन, आलमगीर, पृ0 254–55; मासूम, पृ0 110 अ, ब; मआसिर, पृ0 7; खाफी खाँ, भाग–2, पृ0 51; हातिम खाँ, पृ0 59 ब; सरकार, भाग 1, 2, पृ0 482; वीर, भाग 2, पृ0 826 में भी देख सकते हैं।

67. रूक्काते–आलमगीर, पृ0 89; बर्नियर, पृ0 78; सरकार, भाग 1, 2, पृ0 501; रेऊ, भाग 1, पृ0 228; ओझा, भाग 4, पृ0 444

68. आलमगीर, पृ0 288; हातिम खाँ, पृ0 64 अ, ब; फुतूहात, पृ0 42 अ, ब; बख्तावर खाँ, पृ0 119 अ, ब; कामवार, खां, पृ0 225 अ; सुजानराय, पृ0 537; खाफी खाँ, भाग 2, पृ0 61–62; सरकार, भाग 1, 2, पृ0 503

69. फुतूहात, पृ0 43 अ, ब

70. आलमगीर, पृ0 292–293

71. बर्नियर, पृ0 85; सरकार, भाग 1, 2, पृ0 503; राजस्थान, पृ0 119; ओझा, पृ0 444

72. वाकियात, पृ0 41; मआसिर, पृ0 10; सादिक, पृ0 108 अ; बर्नियर, पृ0 74; दारा, पृ0 132–133

73. वाकियात, पृ0 41; मआसिर, पृ0 10; बख्तावर खाँ, पृ0 121, अ; कामवार खाँ, पृ0 224 ब; सरकार, भाग 1, 2, पृ0 501–502; दारा, पृ0 133–134; जयसिंह, पृ0 178; टैवरनियर, भाग 1, पृ0 348; मनूची, भाग 1, पृ0 339; बर्नियर, पृ0 85

74. वाकियात, पृ0 42; बर्नियर, पृ0 86; वीर, भाग 2, पृ0 687; जयसिंह, पृ0 178; रेऊ, भाग 1, पृ0 230

75. बर्नियर, पृ0 86; जयसिंह, पृ0 179; दारा, पृ0 136–137; बख्तावर खाँ, पृ0 123 ब; सादिक, पृ0 108; मनूची, भाग 1, पृ0 339; टैवरनियर, भाग 1, पृ0 348; वीर, भाग 2, पृ0 687; राठौड़, पृ0 153–154; दानेश्वर, पृ0 165; जैतदान, पृ0 48; तिवरी, पृ0 27; जसवन्त सिंह, पृ0 77–78 एवं सरकार, भाग 1, 2, पृ0 503–504 में जयसिंह के पत्र का वर्णन है।

76. बर्नियर, पृ0 86; मनूची, भाग 1, पृ0 340; दारा, पृ0 137; जयसिंह, पृ0 179–180

77. वाकियात, पृ0 42–43; कामवार खाँ, पृ0 226 ब; सादिम खाँ, पृ0 108 अ; बर्नियर, पृ0 86; मनूची, पृ0 340; दारा, पृ0 137

78. आलमगीर, पृ0 312–313; वाकियात, पृ0 44–45; सरकार, भाग 1, 2, पृ0 504, 506–517; रेऊ, भाग 1, पृ0 230; ओझा, पृ0 446–447; जसवन्त सिंह, पृ0 79

79. आलमगीर, पृ0 332; मीरात, भाग 1, पृ0 244; फुतूहात, पृ0 45 अ; वाकियात, पृ0 45; फैयाज, पृ0 615–616, केवलराम, पृ0 217 अ; कामवार खाँ, पृ0 227 अ, ब; सादिक, पृ0 109 ब; नैणसी, भाग 1, पृ0 276; राठौड़ां, पृ0 154, जैतदान, पृ0 49; वीर, भाग 2, पृ0 688, 827; रेऊ, भाग 1, पृ0 230; जसवन्त सिंह, पृ0 79–80

80. जैतदान, पृ0 40–50; तिवरी, पृ0 28–29; राठौड़ां, पृ0 155; सरकार, भाग 1, 2, पृ0 324; राजस्थान, पृ0 122; रेऊ, भाग 1, पृ0 230; जसवन्त सिंह, पृ0 82

81. तिवरी, पृ0 29; ओझा, पृ0 449; रेऊ, भाग 1, पृ0 231

82. जैतदान, पृ0 50; तिवरी, पृ0 29; ओझा (सिरोही), पृ0 263; ओझा, पृ0 448

83. आलमगीर, पृ0 446; बख्तावर खाँ, पृ0 140 अ; केवलराम, पृ0 217 अ; जयसिंह, पृ0 203; जसवन्त सिंह, पृ0 84; रेऊ, भाग 1, पृ0 231

84. जसवन्त सिंह, पृ0 85

85. आलमगीर, पृ0 647; मीरात, भाग 1, पृ0 253; फुतूहात, पृ0 51 अ; बख्तावर खाँ, पृ0 163 ब; वीर, भाग 2, पृ0 691, 827, 1587

86. शिवाजी, पृ0 88; सरकार, भाग 4, पृ0 61

87. खाफी खाँ, भाग 2, पृ0 173–174; वीर, भाग 2, पृ0 1587

88. शिवाजी, पृ0 88–91; सरकार, भाग 4, पृ0 62–65; सरदेसाई, भाग 1, पृ0 171–72; शिवा छत्रपति, पृ0 42–45, 201–207; फॉरेन बायोग्राफीज, पृ0 66–70; इंग्लिश रेकर्डस, पृ0 53–56; खाफी खाँ, भाग 2, पृ0 173–75; दिलकुशां, पृ0 24 अ. ब; मनूची, भाग 2, पृ0 104–106; बर्नियर, पृ0 187–88;

रालिंसन, पृ0 209–90; वीर, भाग 2, पृ0 1587; राठौडां, पृ0 157 एवं जैतदान, पृ0 51

89. खाफी खाँ, भाग 2, पृ0 175; सरकार, भाग 4, पृ0 66; शिवाजी, पृ0 91

90. आलमगीर, पृ0 868; कामवार खाँ, पृ0 243 अ; खाफी खाँ, भाग 2, पृ0 177–178; मनूची, भाग 2, पृ0 120–121; वीर भाग 2, पृ0 698; जयसिंह, पृ0 207; जसवन्त सिंह, पृ0 91; शिवाजी, पृ0 103

91. शिवा छत्रपति, पृ0 63; सरकार, भाग 4, पृ0 103; शिवाजी, पृ0 143

92. जयपुर रिकर्ड (हिन्दी), भाग 4, खण्ड 6, पृ0 14–17; हाउस आव शिवाजी, पृ0 163

93. सरकार, भाग 4, पृ0 107–112; शिवाजी, पृ0 150–153; हाउस आव शिवाजी, पृ0 172

94. सरकार, भाग 4, पृ0 112–113; शिवाजी, पृ0 160; सरदेसाई, भाग 1, पृ0 226

95. जैतदान, पृ0 57; तिवरी, पृ0 43; राठौडां, पृ0 168; रेऊ, भाग 1, पृ0 237–38

96. ओझा, पृ0 461–462

97. मीरात, भाग 1, पृ0 276–277; सरकार, भाग 5, पृ0 222–223

98. मीरात, भाग 1, पृ0 276–277; कमसरियट, भाग 2, पृ0 168, 174; जैतदान, पृ0 57–58; ओझा, भाग 4, खण्ड 1, पृ0 464

99. मआसिर, पृ0 67–68; जसवन्त सिंह, पृ0 103–104

100. संगीता चंदोला, पृ0 67–68

101. ख्यात, पृ0 252; जैतदान, पृ0 63; दानेश्वर, पृ0 170; रेऊ, भाग 1, पृ0 241

102. राजरूपक, पृ0 17; बांकीदास, पृ0 3 (सं0 346); राठौड़ा, पृ0 174; जैतदान, पृ0 70; तिवरी, पृ0 70; वीर, भाग 2, पृ0 827; रेऊ, भाग 1, पृ0 241; गोपीनाथ शर्मा (राजस्थान), पृ0 446; फ़ुतूहात, पृ0 72 अ; दिलकुशा, पृ0 75 अ; खाफी खाँ, भाग 2, पृ0 259 में सिर्फ सन् का उल्लेख है, तिथि नहीं।



चतुर्थ अध्याय

जसवन्त सिंह की मृत्यु के पश्चात् मारवाड़ राज्य के अन्तःकलह

अध्याय–4

जसवन्त सिंह की मृत्यु के पश्चात् मारवाड़ राज्य के अन्तःकलह

ताकतवर केन्द्रीय सत्ता के कमजोर होने पर राज्य में अन्तःकलह स्वाभाविक है। महाराजा जसवन्त सिंह मुगलों की केन्द्रीय सेवा में थे और शाहजहाँ तक उनकी स्थिति काफी मजबूत थी। राजपूत राज्यों के लिए जसवन्त सिंह एक ताकतवर राजपूत नेता था, जो समय पड़ने पर मुगलों के केन्द्रीय प्रशासन के बहाने किसी भी राज्य में सीधे हस्तक्षेप कर सकता था। धीरे–धीरे जसवन्त सिंह राजपूताने में अपनी धाक बनाए रखने के लिए हस्तक्षेप करता रहता था। भले ही वह दिल्ली के केन्द्रीय सत्ता के उच्च पदाधिकारी थे लेकिन वह किसी भी तरह से वतन जागीर चाहता था ताकि राजपूत राज्यों को और संगठित किया जा सके। राजपूतों की शक्ति का उपयोग सभी मुगल बादशाह करना चाहते थे लेकिन उन्हें संगठित होने का मौका देकर अपने लिए खतरा मोल लेने के लिए तैयार नहीं थे। मुगल सम्राट औरंगजेब सीधे राजपूतों से न तो जंग कर सकता था और न ही जसवन्त सिंह को मुगल सेवा से पदच्युत करना ही उचित समझता था। मुगलों और राजपूतों के बीच स्थायी सत्ता के लिए समझौता ही नहीं बल्कि रिश्तेदारी भी थी। औरंगजेब अच्छी तरह से जानता था कि राजपूत सत्ता का केन्द्रीयकरण मुगल सत्ता के लिए खतरा है। कहीं न कहीं

उसके दिमाग में राजपूतों के बीच सत्ता और पद के लालच को बनाए रखने की योजना भी थी। जसवन्त सिंह के जीवित रहते आपसी फूट और अन्तःकलह मुश्किल था। अतः जसवन्त सिंह की मृत्यु के बाद पद और सत्ता के लोभ में नैतिक और अनैतिक सत्ता अधिकार का संघर्ष प्रारम्भ हो गया। 52 वर्ष की अवस्था में 28 नवम्बर 1678 ई0 को जसवन्त सिंह की मृत्यु हो चुकी थी। मृत्यु से पहले ही उसके दोनों पुत्रों जगत सिंह एवं पृथ्वी सिंह की मृत्यु हो चुकी थी। जसवन्त सिंह की मृत्यु के समय मारवाड़ का कोई भी उत्तराधिकारी जीवित न था जिस पर मारवाड़ राज्य की जिम्मेदारी डाली जाए।

जसवन्त सिंह की मृत्यु के समय उसकी दो रानियाँ गर्भवती थी तथा उस समय पेशावर में ही रूकी हुई थी। रानी जादम को चार मास का गर्भ तथा रानी नरूकी को छःमास का गर्भ था।[1] जसवन्त सिंह की मृत्यु के बाद मारवाड़ राज्य राठौड़ सरदारों के लिए एक राजनीतिक केन्द्र बन चुका था तथा इन सरदारों के आदेश ही धीरे–धीरे मारवाड़ राज्य पर हावी होने लगे थे। जसवन्त सिंह की मृत्यु का समाचार सुनकर सभी रानियाँ सती होना चाहती थी लेकिन राठौड़ों को तो मारवाड़ को अपनी राजनीतिक गतिविधियों का एक केन्द्र बनाना था तो वो इन गर्भवती रानियों को कैसे सती होने देते। इसलिए इस समय रानियों की जान बचाना इन राठौड़ों के लिए नितान्त आवश्यक हो गया था। चूँकि मारवाड़

राज्य का भविष्य भावी सन्तान पर ही निर्भर था, अतः चंपावत उदयसिंह लावधीरोट के नेतृत्व में राठौड़ रणछोड़ दास, गोविन्ददासोट राठौड़, संग्राम सिंह, जुझारसिंहोत, कूंपावत, सूरजमल, नाहरखांनोट, राठौड़ राजसिंह बलराभोत, जेतावत प्रतापसिंह देवकरणोत. तथा राठोड़ दुर्गादास आसकरणोत आदि ने रानियों को समझाया कि भावोद्रेक में शीघ्र प्राण विसर्जन से कोई लाभ नहीं है, अपने राज्य की सुरक्षा के लिए थोड़े दिन प्रतीक्षा करना अत्यन्त आवश्यक है।[2] इस तरह अपने राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए राठौड़ों ने गर्भवती रानियों को सती होने से रोक दिया।

जसवन्त सिंह की मृत्यु के दूसरे दिन राठौड़ सरदारों ने तय किया कि पेशावर में ही रूककर महाराजा का अंतिम संस्कार किया जाए तथा 29 नवम्बर को अंतिम संस्कार करने के बाद सभी जगह यह समाचार भेजने का कार्य शुरू किया गया। राघोदास नामक पत्र वाहक को जसवन्त सिंह की पगड़ी के साथ जोधपुर भेजा गया और साथ ही एक पत्र जोधपुर के सरदारों के लिए भेजा जिसमें कहा गया कि धैर्य और शांति से कार्य करें तथा यदि बादशाह जोधपुर के प्रशासन के लिए शाही अधिकारी भेजे तो उन्हें भी स्वीकार करके औरंगजेब को प्रसन्न बनाए रखना ही तात्कालिक परिस्थिति के लिए उपयुक्त होगा तथा जोधपुर राज्य के वकील श्यामदास जो दिल्ली में उपस्थित था, उसे आदेश दिया गया कि बादशाह को जसवन्त सिंह की मृत्यु का समाचार सुना दे तथा यदि मुगल

सम्राट राज्य का उत्तराधिकारी न होने के कारण जोधपुर न दे तो उससे सोजत व जैतारण के लिए ही प्रार्थना की जाए, ताकि रानियों के प्रसव तक बादशाह से सम्बन्ध बने रहें।[3]

राठौड़ सरदारों द्वारा इस प्रकार के पत्र लिखने से यह कहा जा सकता है कि महाराजा की मृत्यु के बाद ये मारवाड़ के सर्वेसर्वा बनने का संकेत दे रहे थे तथा इन्हें यह अच्छी तरह ज्ञात था कि यदि मुगल साम्राज्य के अधीन कोई शासन नि:सन्तान ही मर जाता है तो वह क्षेत्र तुरन्त ही शाही साम्राज्य में शामिल कर लिया जाता था। ये सरदार यह भी अच्छी तरह से जानते थे कि मारवाड़ के साथ भी कुछ ऐसा ही होगा इसलिए इन्होंने सिर्फ जोधपुर या सोजत तथा जैतारण के परगने के लिए प्रार्थना करने को कहा।

औरंगजेब को जसवन्त सिंह की मृत्यु का समाचार मिला तो उसने सैफुल्ला खाँ को यह आदेश दिया कि जसवन्त सिंह की सम्पत्ति का निरीक्षण करें तथा उस पर शाही मुहर लगाए तथा जब राठौड़ सरदार दरबार में उपस्थित होने के लिए पेशावर से प्रस्थान करे तब पेशावर का शासन सत्ता भी संभाले। कुछ दिन पश्चात् राठौड़ सरदारों के पास एक शाही फरमान भेजा गया जिसमें उन्हें सूचित किया गया कि सोजत एवं जैतारण को छोड़कर जसवन्त सिंह के सभी अधिकृत क्षेत्र शाही अधिकार में ले लिया गया है। लेकिन साथ ही औरंगजेब द्वारा उन सरदारों को यह

आश्वासन भी दिया गया कि यदि मारवाड़ के उत्तराधिकारी का जन्म हो जाता है तो वापस लिए गए सभी प्रदेश दे दिए जाऐंगे। साथ ही खर्चे के लिए 20,000 रूपये भी बादशाह द्वारा भेजे गए।[4] क्योंकि मुगल शासन में किसी सामन्त की मृत्यु पर उसका उत्तराधिकारी वंशानुगत रूप से जागीर प्राप्त नहीं कर सकता था। जागीर का स्वामित्व तत्काल ही बादशाह के अधिकार में चला जाता था और यह केवल उसी की इच्छा पर निर्भर था कि वह उसके वंशजों को कितनी जागीर दे।[5]

इस शाही फरमान के प्राप्त होने के बाद पेशावर में ठहरे हुए राठौड़ सरदारों ने इस फरमान पर विचार विमर्श करके यह तय किया कि इस समय की जरूरत बादशाह को अपने पक्ष में बनाए रखना है। अतः इन सरदारों ने सैफुल्ला खाँ, काजी और वाकयानवीस के द्वारा जसवन्त सिंह की सारी सम्पत्ति पर शाही मुहर लगवा दिया तथा बादशाह से मिलने दरबार प्रयास करने के लिए तैयारी करने लगे।[6] मुगल साम्राज्य में प्रचलित नियमानुसार पेशावर की सारी सम्पत्ति को शाही सम्पत्ति में तब्दील कर दिया गया।

इसी समय उत्तर पश्चिमी सीमा पर अफगानों का विद्रोह एक बड़ी समस्या बन कर खड़ी थी। इसीलिए काबूल का सूबेदार लाखा खाँ जो उस वक्त दिल्ली में ही उपस्थित था, उसने बादशाह को वहाँ की समस्या से अवगत कराते हुए प्रार्थना किया कि 'यदि इस असुरक्षा की परिस्थिति में

राठौड़ सरदारों को वापस बुला लिया गया तो मुगल सैन्य शक्ति कम हो जाएगी जिससे मुगल साम्राज्य को काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है।' लाखा खाँ की प्रार्थना पर बादशाह ने इस समस्या की ओर ध्यान दिया तथा अपने एक दूत को दस्तक वापस लेने के लिए भेजा। साथ ही उस दूत को बादशाह द्वारा यह आदेश दिया गया कि यदि दस्तक उन राठौड़ सरदारों को न मिला हो तो ही वापस लिया जाए और यदि उन्हें वो दस्तक मिल गया हो तो उनसे वापस न लिया जाए। ऐसा प्रतीत होता है कि औरंगजेब उस समय राठौड़ों के मन में किसी प्रकार का संदेह उत्पन्न नहीं होने देना चाहता था। अतः उसने यह सोचा के यदि राठौड़ वहाँ से चल दे तो दस्तक न दिया जाए और यदि न प्रस्थान किए हो तो ही दस्तक देना था। क्योंकि उसका उद्देश्य राठौड़ों के मन में संदेह की स्थिति पैदा नहीं करना था। परन्तु उस दूत ने औरंगजेब के आदेशानुसार कार्य न किया तथा जब राठौड़ सरदार वहाँ से प्रस्थान करने की तैयारी में थे तभी इस दूत ने वहाँ पहुँचकर वह दस्तक उन सरदारों से वापस ले लिया। जिन परिस्थितियों से बचने के लिए औरंगजेब ने उस दूत को वहाँ भेजा था, उस दूत की गलतियों के कारण औरंगजेब के सामने वही परिस्थितियाँ खड़ी हो गयी। ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय औरंगजेब राठौड़ों के सन्तोष एवं सहयोग को अधिक महत्व दे रहा था।

जैसे ही बादशाह के पास संदेश पहुँचा कि उसके द्वारा भेजे गए

दूत ने दस्तक वापस ले लिया तो उसने तुरन्त ही रोहितासगढ़ के फौजदार नवाज बेग को आदेश किया कि राठौड़ सरदारों को वह स्वयं अपने साथ लेकर दिल्ली आए। नवाज खाँ के वहाँ पहुँचने से पहले अमीर खाँ पेशावर पहुँचा तो उन सरदारों ने उसका स्वागत किया तथा परिस्थितियों का हाल बताकर अमीर खाँ से दिल्ली जाने के लिए अनुमति माँगी। लेकिन अमीर खाँ को उस समय परिस्थितियों की पूरी जानकारी न होने के कारण उसने अनुमति देने से मना कर दिया।[7] नवाज खाँ को यह आज्ञा प्राप्त होने पर उसने राठौड़ों के साथ अटक पार जाने की स्वीकृति मांगी लेकिन अमीर खाँ को अभी तक ऐसा कोई आदेश न मिलने के कारण स्वीकृति देने से मना कर दिया। नवाज खाँ के समझाने पर राठौड़ सरदारों ने अमीर खाँ से भेंट की तथा उससे निवेदन किया कि इस समय राठौड़ों की स्थिति ठीक नहीं है, उनके पास अन्न का अभाव हो रहा है, ऐसी स्थिति में यदि उन्हें दिल्ली जाने की अनुमति नहीं मिली तो वह शांति भंग करने का प्रयास कर सकते हैं। अतः शांति बनाए रखने के लिए यह आवश्यक हो गया है कि उन्हें अनुमति दे दी जाए। राठौड़ सरदारों के निवेदन पर 13 जनवरी को उन्हें वह दस्तक दे दिया गया जिससे अगले ही दिन 14 जनवरी को राठौड़ों ने पेशावर से दिल्ली की ओर प्रस्थान किया।[8]

पेशावर से प्रस्थान कर यह दल 18 ज़नवरी को आँकोड़ा नामक

स्थान पर पहुँचा। जहाँ दो दिन रूककर अटक पार करने के लिए नावों की व्यवस्था करने में व्यतीत हुए जिसमें स्थानीय दरोगा ने राठौड़ों का साथ दिया तथा नदी पार करने के बाद अटक का फौजदार भी राठौड़ सरदार से मिला।[9] 26 जनवरी को यह दल हसन अब्दाल पहुँचा तथा शाही आदेशानुसार रोहितासगढ़ का फौजदार भी दल के साथ ही यात्रा कर रहा था। यहीं पर उसके पास एक हस्बुलहुक्म आया कि अब राठौड़ दल को राजधानी तक पहुँचाने के लिए अजमेरी खाँ को नियुक्त किया गया है। हसन अब्दाल में ही राठौड़ों को जोधपुर के राघोदास द्वारा समाचार दिया गया कि राज्य में स्थान–स्थान पर विरोध होने प्रारम्भ हो गया है। 27 जनवरी को वहाँ से चलकर राठौड़ों ने काला पाणी पार किया और खरबूजा के सराय में रूके।[10] आगे बढ़ते हुए जब यह दल गाखड़ के तालाब पर रूके, यहीं पर उन्हें बादशाह का दूसरा फरमान मिला जिसमें राठौड़ों को बादशाह द्वारा पुनः सान्त्वना दिया गया। रोहितासगढ़ पहुँचने पर दुर्गादास तथा रघुनाथ भी इस दल के साथ आगे बढ़े। 15 फरवरी तक यह दल लाहौर की हवेली पहुँचा तथा यहीं रूककर होली का त्यौहार मनाया गया।[11]

19 फरवरी, 1679 ई0 को लाहौर में पड़ाव के दौरान ही रानी नरूकी को प्रसव पीड़ा प्रारम्भ हो गया। इस समय राठौड़ों ने यहीं रूकना उचित समझा। रानी नरूकी की प्रसव पीड़ा देखकर संभवतः रानी जादम

को यह चिन्ता होना स्वाभाविक ही था कि यदि रानी नरूकी ने पहले जन्म दे दिया तो वही मारवाड़ का उत्तराधिकारी होगा।[12] किस्मत ने भी रानी जादभ का साथ दिया तथा रानी नरूकी से पूर्व ही रानी जादभ ने एक सतमासिया पुत्र को जन्म दिया जो अजीतसिंह के नाम से मारवाड़ का उत्तराधिकारी हुआ[13] तथा कुछ ही समय बाद रानी नरूकी ने भी एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम दलथम्मन रखा गया।[14]

दोनों राजकुमारों के जन्म के बाद राठौड़ों की खुशी का ठिकाना न रहा। मारवाड़ को उसका उत्तराधिकारी मिल चुका है, इस बात की सूचना तुरन्त ही जोधपुर भेजा गया तथा दिल्ली में उपस्थित श्यामदास को भी सन्देश भेजा गया कि यह खुशखबरी बादशाह तक अवश्य पहुँचा दे तथा बादशाह को 200 मुहरें भी भेंट करें।[15] इस अवसर पर विभिन्न शाही अधिकारियों को राठौड़ सरदारों की ओर से उपहार दिया गया।

लाहौर में एक विशेष उल्लेखनीय बात यह हुई कि राठौड़ों ने महाराजा जसवन्त सिंह की जीवितावस्था के कागज जला डाले।[16] यह घटना ध्यान देने योग्य है कि इस खुशी के अवसर पर राठौड़ों द्वारा ऐसी हर्कत करने के पीछे क्या कारण रहा होगा। जसवन्त सिंह के जीवितावस्था के कागज जलाने का मुख्य उद्देश्य तो यही समझ में आता है कि राठौड़ सरदार औरंगजेब को अपने महाराजा की सम्पत्ति का ठीक—ठीक विवरण नहीं देना चाहते थे। अब प्रश्न यह उठता है कि यदि इसी मंशा से उन्होंने

कागज जलाए तो इसके पीछे कारण क्या होगा? क्या राठौड़ सरदार औरंगजेब को पूरा–पूरा सही विवरण नहीं देना चाहते थे। वजह चाहे जो भी रही हो, यह तो तय था कि राठौड़ों के इस हर्कत से औरंगजेब के मन में राठौड़ों की नियत के प्रति संदेह का जन्म तो होना ही था।

ऐसी परिस्थिति में जबकि राठौड़ों को मारवाड़ का भविष्य अन्धकारमय दिख रहा था तभी इन राजकुमारों ने जन्म लिया तो राठौड़ों को इस अंधेरे में भी उजाले की किरण नजर आयी। इसीलिए जन्म के उपलक्ष्य में अनेक उत्सव हुए तथा एक हफ्ते तक दावतें हो रही थीं। जन्म के 10 दिन बाद 'दसौठन' का उत्सव भी बड़े ही हर्षोल्लास के साथ मनाया गया।

4 मार्च को पुनः यात्रा आरम्भ कर 9 मार्च तक नूरमहल की सराय तक पहुँच सके तथा 10 मार्च को यहीं पर देशरावा नामक उत्सव मनाया गया। इसी उत्सव के बाद से अजीत सिंह का सरदारों ने दर्शन किया तथा महाराजा जसवन्त सिंह के उत्तराधिकारी के रूप में यथोचित सम्मान देना प्रारम्भ कर दिया। इसी दिन शाम को पुनः सरदारों की बैठक आयोजित की गयी। इस बैठक में नौबत बजाई गई, घोंड़े की पूजा की गई तथा चार भैसों की बलि दी गई।[17]

यहाँ से प्रस्थान कर 12 मार्च को यह दल लुधियाना पहुँचा तथा यहीं पर अजमेर से लिखा गया हस्बुलहुक्म मिला जिसमें इन सरदारों के

लिए संदेश था कि बादशाह अजमेर से दिल्ली की ओर प्रस्थान कर रहा है, अतः वे लोग भी शीघ्र दिल्ली में ही बादशाह से मिले। वहीं पर महाराजा जसवन्त सिंह के उत्तराधिकारी को नाम, मनसब व राज्य देकर सम्मानित किया जाएगा।[18]

इसके बाद ये सरदार धीरे–धीरे आगे बढ़ते हुए दुराहे की सराय, अलुणा की सराय, अम्बाला, शाहाबाद, कुरूक्षेत्र, थानेसर व कसाल होते हुए सोनीपत पर पड़ाव डाला। 5 अप्रैल को इस अन्तिम पड़ाव से चलकर राठौड़ों के इस दल ने दिल्ली में प्रवेश किया और जसवन्त पुरा में महाराजा जसवन्त सिंह की हवेली में पड़ाव डाला।[19]

15 दिसम्बर 1678 ई0 को राघोदास ने मेड़ता पहुँचकर जसवन्त सिंह की मृत्यु का समाचार पंचोली केसरीसिंह तथा भंडारी रघुनाथ को सुनाया गया तथा पेशावर के राठौड़ सरदारों द्वारा भेजा गया पत्र भी दिया। इन दोनों सरदारों द्वारा यह समाचार जोधपुर तक पहुँचाया गया तथा रनिवास तक यह समाचार पहुँचने पर रानी चन्द्रावती के साथ बीस अन्य उपस्त्रियाँ भी मंडोर में सती हुई। लेकिन उस समय बूंदी के राव भावसिंह की बहिन हाड़ी रानी कर्मावती को राठौड़ सरदारों ने सती होने से रोक दिया।[20] ऐसा प्रतीत होता है कि राठौड़ सरदारों के ऐसा करने के पीछे उनका व्यक्तिगत स्वार्थ काम कर रहा था। राठौड़ सरदारों को उन्हीं के नेतृत्व में भावी योजनाओं को अंजाम देना था क्योंकि इन योजनाओं का

नेतृत्व यदि राजमहल से ही किसी व्यक्ति द्वारा किया जाता तो वह ज्यादा असरकारी सिद्ध हो सकता था। राघोदास द्वारा लाए गए पत्र पर जोधपुर में रानी हाड़ी तथा सभी राठौड़ सरदार विचार–विमर्श कर रहे थे, जिसमें रानियों के प्रसव तक इन्हें शान्ति बनाए रखने की राय दी गई थी। तत्कालीन संकटमयी परिस्थिति में जोधपुर में शान्ति बनाए रखना मारवाड़ राज्य की जरूरत थी। इस जरूरत को ध्यान में रखते हुए ही हाड़ी रानी ने सभी सरदारों को यथावत काम करते रहने का आदेश दिया।

इसी बीच भंडारी रघुनाथ, राठौड़ रूपसिंह तथा पंचोली केसरी सिंह आदि प्रमुख राठौड़ सरदारों को बादशाह द्वारा भेजा गया एक फरमान मिला जिसमें इन सरदारों को यथावत् कार्य करने की सलाह के साथ उपयुक्त मनसब देने की भी बात कही गयी थी। सरदारों ने भी प्रत्युत्तर में लिखा कि 'वे बादशाह के सेवक है, उन्हें जो भी कार्य सौंपा जाएगा वे करेंगे। बादशाह उनकी सेवाओं के लिए जो कुछ भी देना चाहे, स्वर्गीय महाराजा के भावी राजकुमार को ही दें।[21]

जोधपुर में जल्द ही यह सूचना भी पहुँच गयी कि बादशाह द्वारा महाराजा जसवन्त सिंह की सम्पत्ति का निरीक्षण कर उस पर शाही मुहर लगा दिया गया है तथा जल्द ही अब बादशाह जोधपुर में भी कुछ ऐसा ही कर सकता है। ऐसा लगता है कि जोधपुर के सरदारों के भीतर यह भय था कि अब जल्द ही जोधपुर को मुगल साम्राज्य में मिला लिया

जाएगा क्योंकि ये सरदार भी मुगल साम्राज्य के नियमों को बहुत अच्छी तरह जानते थे। इनके इसी भय के कारण जोधपुर में अधिक दिनों तक शान्ति बनी न रह सकी।[22]

बादशाह द्वारा जसवन्त सिंह की सेवाओं के बदले उसे सात हजार जात तथा सात हजार सवार दो अस्पा से अस्पा का मनसब दिया गया था जो उसकी मृत्यु तक बरकरार था। मुगल साम्राज्य के प्रचलित नियमानुसार औरंगजेब ने तत्काल ही पेशावर के शाही कर्मचारियों को आज्ञा दी कि वे महाराजा की सम्पत्ति का निरीक्षण कर उस पर शाही मुहर लगा दिया जाए।[23] मुगल साम्राज्य में प्रचलित नियमानुसार किसी सामन्त की मृत्यु पर उसका उत्तराधिकारी वंशानुगत रूप से जागीर प्राप्त नहीं कर सकता था। जागीर का स्वामित्व तत्काल ही बादशाह के अधिकार में चला जाता था और यह केवल उसी की इच्छा पर निर्भर था कि वह उसके वंशजों को कितनी जागीर दे।[24]

ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि यह नियम सिर्फ मारवाड़ राज्य के विशेष सन्दर्भ में औरंगजेब द्वारा बनाया गया हो। यह प्रथा पहले से ही चली आ रही थी तथा ऐसी परिस्थिति बनने पर औरंगजेब ने उन नियमों का पालन किया जिसका पालन उसके पूर्वजों द्वारा भी किया गया था। इस स्थिति में औरंगजेब पर यह आरोप लगाना सही प्रतीत नहीं होता है कि मारवाड़ राज्य को खत्म करने के लिए औरंगजेब ने यह नीति अपनाई

थी।

औरंगजेब ने अजमेर के सूबेदार इफ्तिखार खाँ को एक फरमान द्वारा शाही आदेश दिया कि वह जसवन्त सिंह की सारी सम्पत्ति तथा जागीर का निरीक्षण कर उस पर शाही मुहर लगाने का कार्य आरम्भ कर दें। औरंगजेब का ऐसा फरमान भेजना स्वाभाविक ही था क्योंकि जब तक मारवाड़ के उत्तराधिकारी का जन्म न हो जाता, तब तक मारवाड़ का भविष्य या व्यवस्था अल्लाह के भरोसे तो नहीं छोड़ सकता था। अत: बादशाह की आज्ञा पाकर इफ्तिखार खाँ ने अजमेर के कानूनगों, राजरूप व चार अन्य व्यक्तियों के द्वारा राठौड़ सरदारों को एक पत्र द्वारा सूचित किया कि वह जोधपुर व मेड़ता पर शाही अधिकार करने के लिए उस ओर प्रस्थान करने वाला है, साथ ही उसने यह भी आश्वासन दिया कि राठौड़ों पर शाही कृपा पूर्ववत् बनी रहेगी, वे किसी प्रकार की शंका न करें। इफ्तिखार खाँ ने शाही आज्ञानुसार अजमेर के अमीन मुहम्मद कायम तथा किरोड़ी इस्लाम मुहम्मद को आज्ञा दी कि वे स्वर्गीय महाराजा के अधीन परगनों पर अपने गुमाश्ते भेजकर जो वसूली शेष हो, उसे तुरन्त ही पूरी कर लें। 27 दिसम्बर तक स्वयं इफ्तिखार भी मेड़ता शहर तक पहुँच गया जहाँ पर जोधा रामसिंह व ऊदावत किशनसिंह ने 600 सवारों के साथ स्वागत किया।[25]

इफ्तिखार खाँ के मेड़ता पहुँचने की खबर पाकर सभी सरदारों ने

मिलकर तय किया कि इफ्तिखार खाँ के जोधपुर आने से पूर्व वहीं जाकर बातचीत कर लिया जाए तथा इस बातचीत की जिम्मेदारी पंचोली केसरी सिंह को दिया जाना तय किया गया। इफ्तिखार खां को भी जब केसरी सिंह के मेड़ता आने की सूचना मिली तो उसने भी जोधपुर की ओर न बढ़कर मेड़ता में ही रूकना उचित समझा।[26]

अपने मन में एक मुख्य उद्‌देश्य लेकर पंचोली केसरी सिंह, राठौड़ रूप सिंह तथा भाटी रघुनाथ सिंह मेड़ता पहुँच कर इफ्तिखार खाँ से मिले। इफ्तिखार खाँ से भेंट कर उन्होंने जोधपुर राज्य के खालसा किए जाने पर दुःख प्रकट किया और कहा कि चूँकि जोधपुर राठौड़ों का वतन है और स्वर्गीय महाराजा का परिवार भी वहीं है, अतः वहाँ शाही अधिकार हो जाने से राठौड़ों की मानहानि होगी।[27] इसलिए राठौड़ों की ये मंशा थी कि जोधपुर पर शाही अधिकार न किया जाए। सभी राठौड़ों का केन्द्र उस समय जोधपुर बन चुका था। इसलिए लगातार यह प्रयास कर रहे थे कि जोधपुर पर उनका अधिकार बना रहे। जोधपुर के लिए राठौड़ सरदार उस समय पूरा मारवाड़ छोड़ने को तैयार थे तथा इसके बदले जिस कार्य पर नियुक्ति की जाए उसके लिए भी तुरन्त तैयार थे। इसी समय रानी हाड़ी का भी एक पत्र इफ्तिखार खाँ को मिला जिसमें रानी ने जोधपुर के लिए निवेदन किया तथा यहाँ तक लिखा कि जोधपुर के बदले सोजत एवं जैतारण के परगने भी वापस ले लिए जाए।

राठौड़ों द्वारा बार–बार सिर्फ जोधपुर की माँग करना तथा जोधपुर प्राप्त करने के लिए कुछ भी करने या छोड़ने को तैयार होना, जोधपुर के लिए इतना प्रयास जोधपुर में स्थिति सामान्य होने के लक्षण प्रतीत नहीं हो रहे थे। राठौड़ों का व्यवहार स्वयं ही मन में शंका उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त था।

राठौड़ों से भेंट कर इफ्तिखार खाँ ने जसवन्त सिंह की सम्पत्ति के विषय में पूछा तो राठौड़ सरदारों ने दो–तीन दिन पश्चात् समस्त सम्पत्ति का ब्यौरा देने का वचन दिया।[28] इफ्तिखार खाँ ने जब–जब जोधपुर जाने का विचार किया राठौड़ सरदारों ने उसे रोक दिया और कहा कि यदि वह जोधपुर गया तो वहाँ के राठौड़ अप्रसन्न हो जाऐगें और जोधपुर में न चाहते हुए भी अव्यवस्था फैल जाएगी।[29] अतः उन्होंने स्वयं ही समस्त विवरण देने का वचन दिया था। राठौड़ों द्वारा जो विवरण इफ्तिखार खां को सौंपा गया उसके अनुसार जसवन्त सिंह की सम्पत्ति में केवल 116 मुहरें, 21800 रूपयें नकद तथा 19 हाथी ही शामिल थे तथा कुछ अन्य वस्तुओं का मूल्य निश्चित करके सूचित करने का आश्वासन दिया था। यह सम्पत्ति जसवन्त सिंह को प्राप्त मनसब के हिसाब से इतना कम था कि अचानक से इफ्तिखार खाँ इस पर विश्वास न कर सका और उसका संदेह करना भी उचित था कि यह विवरण अपूर्ण सम्पत्ति का है। इफ्तिखार खाँ के अविश्वास के कारण ही राठौड़ों ने अपनी सत्यता

प्रमाणित करने के लिए जोधपुर व अन्य किलों की तलाशी देना स्वीकार कर लिया।[30]

इस समय इफ्तिखार खाँ शाही आदेश को पूरा करने में सफल नहीं हो पा रहा था तथा वह जोधपुर न जाकर अभी तक मेड़ता में ही रूका हुआ था। इफ्तिखार के जोधपुर न पहुँच पाने के कारण जोधपुर की स्थिति दिन–प्रतिदिन बिगड़ती जा रही थी। दिसम्बर तक ही जोधपुर में लगभग तीन हजार सैनिक तथा जनवरी 1679 ई0 तक जोधपुर तथा मेवाड़ में 5–6 हजार राजपूत सैनिक एकत्र होकर अपने को संगठित कर रहे थे। राठौड़ों को शक्तिशाली और संगठित होते देखकर इफ्तिखार खाँ भी अपनी सैन्य शक्ति को बढ़ाने की तैयारी करने लगा।[31]

राठौड़ों द्वारा दिया गया सम्पत्ति का विवरण जब औरंगजेब को ज्ञात हुआ तो वह भी आश्चर्यचकित हो गया क्योंकि जसवन्त सिंह के एक सेवक ख्वाजा फरासत ने उसे बताया था कि जोधपुर के राज्य कोष में सन्तावन हजार रूपया पूर्व संग्रह का है और जसवन्त सिंह ने अपने समय में भी पर्याप्त संग्रह कर रखा था। राठौड़ों द्वारा दी गयी सम्पत्ति के विवरण के अनुसार यह सम्पत्ति बहुत ही कम थी। अत: औरंगजेब ने सैयद अब्दुल्लाखाँ को दो सौ सवार देकर जोधपुर के किले का निरीक्षण करने और वहाँ की सम्पत्ति का पता लगाने के लिए नियुक्त किया।[32]

अब प्रश्न यह उठता है कि जसवन्त सिंह की सम्पत्ति का पूरा

विवरण न देने के पीछे राठौड़ सरदारों की मंशा क्या थी? क्यों वह सम्पत्ति पर शाही मुहर नहीं चाहते थे? किसके लिए वो उस सम्पत्ति को बचा रहे थे? कहीं ऐसा तो नही कि सम्पत्ति का गलत विवरण तथा जोधपुर की माँग का कोई संबंध था?

ये सारे प्रश्न औरंगजेब की तरफ से नहीं बल्कि राठौड़ सरदारों के व्यवहार से स्वतः ही उत्पन्न हो रहे थे। इन विषयों को लेकर बादशाह औरंगजेब का चिंतित होना भी स्वाभाविक था। राठौड़ों के व्यवहार ने औरंगजेब के पास कोई और रास्ता ही नहीं छोड़ रखा था। जोधपुर में निरन्तर अव्यवस्था फैलती जा रही थी तथा साथ ही जोधपुर में उपद्रव होना भी प्रारम्भ हो गया था। ऐसी परिस्थिति में वहाँ शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित करने के लिए शाही अधिकारियों को भेजना आवश्यक हो गया था। अतः 13 जनवरी को ताहिर खाँ को जोधपुर का फौजदार, खिदमतगुजार खाँ को किलेदार, शेख अनवर को अमीन तथा अब्दुर्रहीम को कोतवाल नियुक्त कर जोधपुर जाने का आदेश दिया।[33]

25 दिसम्बर को अब्दुर्रहीम खाँ, किरोड़ी कासिम खाँ, तथा काजी हामिद के साथ दिल्ली से प्रस्थान किया और जनवरी में मेड़ता पहुँचकर राजा के बाग में रूकने की व्यवस्था की गयी। यहीं पर केसरी सिंह, रूपसिंह व रघुनाथ सिंह आदि प्रमुख सरदारों ने आकर उनका स्वागत किया। इन लोगों से मिलने का मुख्य उद्देश्य यह था कि वह अब्दुल्ला

खाँ से जोधपुर प्राप्त करने के लिए प्रार्थना करें। उनकी प्रार्थना सुनने के बाद अब्दुल्ला खाँ ने उनसे बताया कि पेशावर से दिल्ली आने वाले सरदारों ने तो सिर्फ सोजत व जैतारण की ही माँग की है और जोधपुर के सरदारों ने जोधपुर की। तब राठौड़ सरदारों ने उत्तर दिया कि—पेशावर से आने वाले सरदारों को यह आशा रही होगी कि जोधपुर तो उन्हें बिना माँगे ही मिल जाएगा। अतः जोधपुर के अतिरिक्त सोजत तथा जैतारण की माँग की होगी।[34]

पंचोली केसरीसिंह तथा राठौड़ रूपसिंह को साथ लेकर अब्दुल्ला खाँ जोधपुर पहुँचा तो वहाँ उपस्थित सरदारों ने अब्दुल्ला खाँ को किला दिखाने से मना कर कर दिया। किला दिखाने से इन्कार करने की घटना ने राठौड़ों के प्रति अविश्वास को बढ़ा दिया था। लेकिन तीन दिन बाद 12 जनवरी को दिल्ली से राठौड़ वकील श्यामदास का पत्र आया जिसमें उसने अब्दुल्ला खाँ को किला दिखाने की बात लिखी थी। पत्र प्राप्त होने के दूसरे दिन ही अब्दुल्ला खाँ को किले पर ले जाना स्वीकार कर साथ लेकर गए।[35] जब ये लोग किले के पास पहुँचे तो जोधपुर किले का किलेदार ऊहड़ भगवानदास ने इन्हें किला दिखाने से मना कर दिया। लेकिन अंततः वह किला दिखाने के लिए तैयार तो हो गए लेकिन उसने सिर्फ 20 सैनिकों को ही अन्दर जाने की इजाजत दी। तब शेष सैनिकों को छोड़कर अब्दुल्ला खाँ ने किले का निरीक्षण करना स्वीकार किया तथा

अगले दिन निरीक्षण कर मेड़ता वापस लौट गया।[36]

राठौड़ों द्वारा किला न दिखाने की घटना भी राठौड़ों पर विश्वास को कम कर रही थी। राठौड़ सरदारों की शक्ति इतनी बढ़ गयी थी कि वो लोग एक मुगल शाही अधिकारी को किला दिखाने से मना कर रहे थे। राठौड़ों की यह प्रवृत्ति उनके विद्रोही होने के संकेत तो दे ही रहे थे लेकिन साथ ही संभवतः किले में रखी गई सम्पत्ति को शाही मुहर से बचाने का भी प्रयास कर रहे थे।

अब तक अब्दुल्ला खाँ को जोधपुर तथा राठौड़ सरदारों की स्थिति एवं उनकी मंशा का ज्ञान अच्छी तरह से हो चुका था। इसीलिए अब्दुल्ला खाँ ने तुरन्त ही बादशाह को सूचित किया कि राजपूत पूरी तरह सुसज्जित है तथा उन्होंने सांभर तथा डीडवाना पर आक्रमण करने की योजना बनाई है तथा बादशाह को यह भी सूचना मिल चुकी थी कि मारवाड़ में इस समय लगभग 20,000 राजपूत संगठित हो रहे हैं तथा इनकी संख्या में दिन–प्रतिदिन वृद्धि होती जा रही है। इफ्तिखार खाँ ने भी बादशाह को कुछ ऐसी ही सूचनाएँ दी कि ये राठौड़ सरदार इफ्तिखार खाँ को अधिकार नहीं सौंप रहे हैं। राठौड़ सरदारों के इस विद्रोही प्रवृत्ति ने ही बादशाह को मजबूर किया कि वह स्वयं अजमेर जाकर स्थिति संभालने की योजना बनाए। जोधपुर की स्थिति को देखते हुए औरंगजेब ने स्वयं वहाँ जाने की योजना बनाई। लेकिन वहाँ जाने से पूर्व औरंगजेब स्वयं

अपनी सेना को संगठित करना चाहता था जिसके लिए उसने मुल्तान से शाहजादा अकबर, आगरा से शायस्ता खाँ, गुजरात से मुहम्मद अली खाँ तथा उज्जैन से असद खाँ को बुलाया तथा साथ ही खाने जहाँ बहादुर, हसनअली खाँ जैसे बड़े सरदारों को सेना में नियुक्त किया। 24 जनवरी को बादशाह ने दिल्ली से जोधपुर के लिए प्रस्थान करने का फैसला किया। लेकिन प्रस्थान से पहले जसवन्त सिंह के बड़े भाई के पोते इन्द्रसिंह को भी दक्षिण से आने के लिए शाही आदेश भेजा गया।[37]

औरंगजेब के प्रस्थान करने के दौरान ही 10 मार्च तक खाने जहाँ बहादुर, वजीर असद खाँ, शायस्ता खाँ तथा मुल्तान से शाहजादा अकबर भी अजमेर पहुँच गया था जबकि बादशाह 19 फरवरी 1679 ई0 को ही अजमेर पहुँच चुका था।[38]

राजपूतों को जब यह सूचना मिली कि बादशाह स्वयं ही अजमेर की तरफ आ रहा है तो उनमें से भाटी रघुनाथ सिंह ने युद्ध की तैयारियाँ शुरू कर दी थी तथा युद्ध के उद्देश्य से ही मेड़ता से लगभग 1000 सवार जोधपुर के लिए रवाना किया। लेकिन भाटी के द्वारा की जा रही तैयारियों की सूचना मिलने पर ही हाड़ी रानी ने उसे शाही आज्ञा में रहने का आदेश दिया। लेकिन होली आते–आते सारे राजपूत सरदार अपने–अपने घर जाने की तैयारी करने लगे। जिसके कारण जोधपुर जो राजपूत सैनिकों का गढ़ बन चुका था अब सिर्फ 500 से 1000 राजपूत ही शेष बचे

थे।[39] ऐसा लगता है कि पहले तो राजपूतों ने सोचा होगा कि छोटे से विद्रोह करने या शाही अधिकारियों को किला दिखाने से मना करने से जोधपुर पर इनका अधिकार हो जाएगा, लेकिन जब इन्हें बादशाह के आने की सूचना मिली तो ये युद्ध की तैयारियों में जुट गए लेकिन युद्ध के लिए भी एक निश्चित नीति का अभाव था या ये राजपूत युद्ध के लिए संगठित नहीं थे। तभी तो जितनी तेजी से इनकी संख्या बढ़ी उतनी ही तेजी से उनकी संख्या घट भी गयी।

एक तरफ राठौड़ सरदार युद्ध की तैयारी कर रहे थे तो दूसरी तरफ इफ्तिखार खाँ से अपना संबंध भी नहीं बिगाड़ना चाहते थे। तब इफ्तिखार खाँ ने उन्हें बादशाह से मिलकर अपनी बात कहने की सलाह दी तथा राठौड़ सरदार इस समय असद खाँ से भी पत्र–व्यवहार कर राम भाटी तथा राठौड़ नरसिंहदास को इस कार्य को पूरा करने की जिम्मेदारी सौंपी गयी। इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए दूदो राजसिंहोत, डगरो सांवलदासोत, ऊदावत राजसिंह बलरामोट तथा रूपसिंह व उसके भाई किशनसिंह एवं अन्य दो सौ सवारों को भेजा गया।[40]

इफ्तिखार खाँ ने राठौड़ों को यह संदेश पहुँचाया कि जब तक गर्भवती रानियों से मारवाड़ को उत्तराधिकारी प्राप्त नहीं होता तभी तक बादशाह जोधपुर का प्रबन्ध करना चाहता है। औरंगजेब का ऐसा सोचना स्वाभाविक भी था कि रानियों को पुत्री भी हो सकती थी। औरंगजेब के

इस आश्वासन से राठौड़ सरदारों ने जोधपुर पर शाही अधिकार करने की स्वीकृति दे दी। 11 फरवरी को मुहम्मद रहीम कोतवाल तथा मुहम्मद हादी किरोड़ी को जोधपुर के लिए भेजा। इन्हें जोधपुर तक पहुंचाने के लिए पंचोली केसरीसिंह ने कुशलसिंह तथा किशनसिंह को इन शाही अधिकारियों के साथ जोधपुर जाने का आदेश दिया।[41]

मेड़ता की तरफ से आगे बढ़कर खानेजहाँ पीपाड़ नामक स्थान पर पहुँचा। पीपाड़ में ही केसरीसिंह, रघुनाथ सिंह तथा राजसिंह के साथ ही अन्य सरदार भी खानेजहाँ से मिलने पहुँचे। भेंट के दौरान इफ्तिखार खां ने भी इन्हें पूरा आश्वासन दिया कि रानियों द्वारा पुत्र को जन्म देने के पश्चात् उनका राज्य उनको लौटा दिया जाएगा। सिर्फ उस अन्तराल तक जोधपुर पर शाही अधिकार हो जाने दें। राठौड़ सरदारों ने इस बात को पहले ही मान लिया था जिसके अनुसार उन सरदारों ने जो सेना एकत्र की थी उसे भी तितर–बितर करने का आश्वासन दिया था। तब शाही आदेशानुसार मुहम्मद रहीम तथा मुहम्मद हादी के जोधपुर पहुँचने पर राठौड़ सरदारों ने शान्तिपूर्वक उन्हें अधिकार सौंप दिया।[42]

27 फरवरी को राघोदास राजकुमारों के जन्म की खबर लेकर राठौड़ों के पास पहुँचा। इस कारण खानेजहाँ, ताहिर खाँ तथा राठौड़ सरदारों ने राघोदास को इस शुभ समाचार लाने के उपलक्ष्य में बहुमूल्य उपहार दिए।[43]

इस समय तक संभवतः ख्वाजा फरासत द्वारा बादशाह को यह सूचित किया जा चुका था कि जसवन्त सिंह की सम्पत्ति जोधपुर व सिवाना के किले में सुरक्षित रखा जा चुका था। लेकिन जब जोधपुर के किले से सम्पत्ति का ठीक–ठीक विवरण न मिल सका तो बादशाह द्वारा खिदमतगुजार को सिवाना का किलेदार नियुक्त कर वहाँ पर सम्पत्ति का पता करने का आदेश दिया गया। बादशाह के आदेशानुसार खिदमतगुजार खाँ 1 मार्च को सिवाना पहुँचा, लेकिन उसे वहाँ पर जसवन्त सिंह के पुराने और कुछ साधारण सामानों के अतिरिक्त कुछ भी हाथ न लगा। यद्यपि किले से ज्यादा कुछ न मिल सका, लेकिन यह लगातार संदेह का विषय बना हुआ था कि मुगल सेवा में कार्यरत एक 7 हजारी मनसबदार के पास कुछ पुराने वस्त्रों के अतिरिक्त कुछ भी न हो? अतः औरंगजेब का इस मामले में संदेही होना स्वाभाविक ही था कि राठौड़ों ने जसवन्त सिंह की सम्पत्ति को कहीं छिपा दिया है। अब इस काम के लिए 9 मार्च को अब्दुल्ला खाँ को पुनः सिवाना जाने का आदेश दिया गया कि वह वहाँ के किले की नीवें, नई इमारत व जमीन खोदकर सम्पत्ति का पता लगाए तथा इस कार्य में सहयोग के लिए मुहम्मद अली खाँ नामक राजगीर को भी भेजा गया।[44]

इससे पहले 5 मार्च को ही बादशाह द्वारा एक हस्बुलहुक्म राठौड़ सरदारों को प्रेषित किया गया और सूचित किया गया कि बादशाह दिल्ली

की तरफ वापस लौट रहा है तथा वे लोग भी अपने राजकुमारों को लेकर दिल्ली ही पहुँच जाए और वहीं मारवाड़ के उत्तराधिकारी को उचित मनसब और राज्य दिया जाएगा। बादशाह के अजमेर से प्रस्थान करने से पहले ही शायस्ता खाँ ने बादशाह से भेंट की तथा मारवाड़ की स्थिति से अवगत कराते हुए प्रार्थना की कि राठौड़ों पर नियन्त्रण बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि किसी उच्च अधिकारी की नियुक्ति अजमेर में की जाए। उसकी प्रार्थना को स्वीकार कर बादशाह ने खानेजहाँ बहादुर को अजमेर ही ठहरने का शाही आदेश दिया तथा 10 मार्च को शायस्ता खाँ को आगरे की सूबेदारी पर जाने की आज्ञा दी गयी।[45] बादशाह के प्रस्थान के दौरान ही 18 मार्च को इन्द्रसिंह दक्षिण से वापस आकर बादशाह से मिला लेकिन यह कहना कठिन है कि दिल्ली की ओर प्रस्थान के दौरान किस स्थान पर बादशाह और इन्द्रसिंह की मुलाकात हुई लेकिन 2 अप्रैल तक वह भी शाही सेना के साथ दिल्ली पहुँचा। दिल्ली लौटने के बाद बादशाह मारवाड़ की स्थिति को लेकर बड़ा ही चिन्तित था क्योंकि वह वहाँ की स्थिति का आंकलन कर लौटा था। मारवाड़ में राठौड़ सरदारों की स्थिति, उनका व्यवहार तथा उनके द्वारा मुगल अधिकारियों की अवहेलना करने का साहस किसी बड़े विद्रोह की ओर संकेत दे रही थी। इन परिस्थितियों में औरंगजेब के लिए आवश्यक हो गया था कि राठौड़ों की लगातार बढ़ रही विद्रोही प्रवृत्ति को किसी दूसरी दिशा में

मोड़ा जाए और इस समय बादशाह को जजिया से बेहतर रास्ता नहीं दिख रहा था। अतः दिल्ली लौटने पर 2 अप्रैल 1679 ई0 को ही उसने मारवाड़ पर जजिया लगाने की घोषणा की।[46] औरंगजेब की यह घोषणा साम्राज्य के किन–किन क्षेत्रों में लागू हुआ यह कहना तो कठिन है लेकिन मारवाड़ की विद्रोहात्मक स्थिति के मद्देनजर मारवाड़ में जजिया तुरन्त ही व्यवहारिक रूप से लागू किया गया था। वजह चाहे जो भी रही हो, लेकिन यह तो निश्चित था कि मारवाड़ में जजिया कोई धार्मिक कर के रूप में नहीं बल्कि जजिया मारवाड़ को दण्डित करने के उद्देश्य से लगाया गया था। अतः मारवाड़ में जजिया का स्वरूप धार्मिक न होकर राजनीतिक था।

औरंगजेब के दिल्ली वापस लौटने के बाद प्राप्त शाही आदेशानुसार खानेजहाँ बहादुर कुछ राठौड़ सरदारों के साथ 3 मार्च को जोधपुर पहुँचा। खानेजहाँ बहादुर जोधपुर पर अधिकार करने तो गया था लेकिन चांपावत सोनग जो विट्ठलदास का पुत्र था ने शाही आज्ञा का उल्लंघन करते हुए जोधपुर का अधिकार सौंपने से मना करना चाहता था। अतः पंचोली केसरी सिंह, भाटी रघुनाथ सिंह, राठौड़ नरसिंह दास, राठौड़ राजसिंह तथा ख्वाजा फरासत के प्रार्थना करने पर किसी तरह से राजी हुआ। यद्यपि वह इसी कारण खानेजहाँ बहादुर के स्वागत हेतु भी नहीं गया था लेकिन इन राठौड़ सरदारों के समझाने पर मिलने गया और खानेजहाँ बहादुर जो एक

मुगल शाही अधिकारी था, के साथ अव्यवहारिक बर्ताव किया।[47]

5 मार्च को खानेजहाँ के कहने पर ताहिर खाँ तथा शाही वाकानवीस के साथ रामभाटी तथा केसरीसिंह ने किले में प्रवेश कर ताहिर ने वहाँ पर अधिकार कर लिया तथा उसने 21, 000 रू0 नकद, 27 तोपें, 2000 लोहे के गोले, 2000 पत्थर के गोले, 32 बंदूके, धनुष–बाण, महाराजा के गहनों का एक संदूक के साथ भण्डार–घर पर भी शाही मुहर लगा दिया गया।[48] किले पर अधिकार करने के बाद पूरे मारवाड़ राज्य पर शाही अधिकारियों का अधिकार स्थापित हो गया। अतः प्रशासनिक व्यवस्था का भार भी इन्हीं अधिकारियों को संभालना पड़ा, जिसके तहत ताहिर खाँ को जोधपुर की फौजदारी व दीवानी, अब्दुर्रहीम को कोतवाल, अबुल कासिम शुजाई को किरोड़ी, शेख अनवर को अमीन, दीनदार खाँ कायमखानी को वाकानवीस तथा हामिद खाँ को काजी की जिम्मेदारी सौंपी गई।[49]

13 मार्च को ताहिर खाँ ने रानी हाड़ी से मिलकर उनसे प्रार्थना की कि जोधपुर में शाही शासन को चलाने के लिए उनका सहयोग करें तथा साथ ही यह भी सलाह दी कि बादशाह को प्रसन्न करने के लिए जोधपुर के मंदिरों को तोड़वा दें। तब रानी हाड़ी का उत्तर आश्चर्यचकित करने वाला था क्योंकि रानी ने ताहिर से कहा कि यदि मन्दिर तुड़वाने से मारवाड़ का राज्य नवजात अजीत सिंह को दे दिया जाए तो वह मंदिर तोड़वाने के लिए तैयार थी।[50]

रानी द्वारा दी गई इस प्रकार की स्वीकृति से मारवाड़ के राजपूतों की राजनीतिक मंशा की साफ झलक देख सकते हैं। राजपूत जो हिन्दुओं के नेताओं के रूप में जाने जाते थे उस पर उनकी राजनीतिक मंशा पूरी तरह से हावी हो चुकी थी। ऐसा प्रतीत होता है कि सत्ता की लालच में ये अपना धर्म भी भूल चुके थे। रानी हाड़ी जो उस समय पूरे मारवाड़ राज्य की उम्मीद बनी हुई थी तथा मारवाड़ के राजपूतों ने उन्हें अपना नेतृत्वकर्ता स्वीकार किया था, के द्वारा इस प्रकार की स्वीकृति निश्चित रूप से राजपूतों को आघात पहुँचाने वाली थी। राजपूत होते हुए जब वह स्वयं ही मन्दिर तुड़वाने के लिए तैयार हो सकती थी तो मारवाड़ में यदि ताहिर खाँ द्वारा मन्दिरों को तोड़ा गया तो उसका दोषारोपण औरंगजेब पर करना सही प्रतीत नहीं होता है।

ताहिर खाँ को मारवाड़ के सभी अधिकार सौंपने के बाद खानेजहाँ बहादुर राठौड़ सरदारों के साथ जोधपुर से प्रस्थान कर अजमेर पहुँचा। अजमेर पहुँचते ही खानेजहाँ को औरंगजेब द्वारा भेजे गए शाही आदेश के विषय में पता चला जिसमें उसे अजमेर में ही रूकने का आदेश दिया गया था। तब खानेजहाँ के कहने पर ही जोधपुर से उसके साथ आए हुए राठौड़ सरदारों ने नौशेर खाँ के साथ दिल्ली की ओर प्रस्थान करना स्वीकार कर 24 मार्च को अपनी यात्रा आरम्भ की।[51] अजमेर से यात्रा आरम्भ कर यह दल 8 अप्रैल को दिल्ली पहुँचा।[52] जबकि 5 अप्रैल का

लाहौर से चला राठौड़ सरदारों का दल दिल्ली पहुँच चुका था।[53]

दोनों दल दिल्ली पहुँचने के बाद आगे की रणनीति पर विचार करना प्रारम्भ किया और इस समय इनका मुख्य उद्देश्य जिसके लिए इतनी दूर से चलकर दिल्ली आए थे, उसे पूरा करना था। राठौड़ रणछोड़दास तथा राठौड़ सूरजमल के नेतृत्व में राठौड़ ने बादशाह से प्रार्थना किया कि उनका वतन जोधपुर महाराजकुमार अजीत सिंह को सौंप दिया जाए। यद्यपि औरंगजेब ने इन्हें पहले ही आश्वासन दिया था कि यदि रानियों को पुत्र होगा तो राज्य वापस दे दिया जाएगा लेकिन जसवन्त सिंह की मृत्यु से लेकर इन सरदारों द्वारा दिल्ली पहुँचकर प्रार्थना करने तक मारवाड़ की आन्तरिक राजनीति या विद्रोहात्मक प्रवृत्ति के मद्देनजर औरंगजेब इनकी प्रार्थना पर विचार करने पर विवश हो गया कि क्या मारवाड़ की स्थित नवजात अजीतसिंह को महाराजा बनाए जाने के अनुकूल थी? राठौड़ों द्वारा मारवाड़ में हो रहे अन्तः कलहों ने बादशाह को स्वयं की कही बात से पीछे हटने पर मजबूर कर दिया था। अतः बादशाह ने तुरन्त इन राठौड़ों को कोई उत्तर देना उचित नहीं समझा। लेकिन औरंगजेब ने उन्हें सिरोपाव देकर यह सांत्वना दी कि वह उनकी प्रार्थना पर विचार करेगा।[54]

बादशाह से सान्त्वना प्राप्त कर राठौड़ सरदारों ने कुछ समय दिल्ली में रूकना उचित समझकर बादशाह की आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहे थे तथा

लगातार इस प्रयास में जुटे थे कि बादशाह इनकी प्रार्थना स्वीकार कर लें। लेकिन औरंगजेब जैसे कूटनीतिक बादशाह को राठौड़ों की राजनीति समझने में ज्यादा वक्त न लगा तथा मारवाड़ की लगातार बिगड़ती हुई स्थिति को बचाने के लिए औरंगजेब ने प्रस्ताव् रखा कि वह सोजत एवं जैतारण के परगने इस शर्त पर देने के लिए तैयार है कि इन्हें मारवाड़ से 500 सवार मुगल सेना में भेजना होगा। ऐसा प्रस्ताव रखने का उद्देश्य साफ नजर आता है कि जब इतने सरदार मिलकर मारवाड़ की शांति को भंग कर सकते हैं तो पूरे मारवाड़ राज्य पर अजीत सिंह के नाम से शासन कैसे संभाल सकते हैं। यदि औरंगजेब ने इन सरदारों की प्रार्थना स्वीकार कर ली होती तो संभवतः जिस उद्देश्य को लेकर इन्होंने मारवाड़ को आन्तरिक राजनीति का केन्द्र बना रखा था वह पूरा हो जाता। लेकिन बादशाह राठौड़ों के षड़यन्त्र को अच्छी तरह से समझ चुका था। अतः बादशाह द्वारा इस प्रकार शर्त रखना स्वाभाविक ही था। परन्तु राठौड़ों को बादशाह का प्रस्ताव रूचिकर न लगा।[55] राठौड़ों द्वारा यह प्रस्ताव अस्वीकार किया जाना भी स्वाभाविक था क्योंकि वह तो इतनी दूर से पूरे मारवाड़ राज्य का सपना लेकर आए थे।

राठौड़ सरदार की नीतियों से औरंगजेब अभी तक सन्तुष्ट नहीं हो सका था क्योंकि अभी तक बादशाह को सम्पत्ति का पूरा विवरण प्राप्त नहीं हो सका था। राठौड़ों के दिल्ली आने से पूर्व ही मार्च में जब

खानेजहाँ बहादुर ने जोधपुर किले का निरीक्षण किया तो वहाँ दो कमरों में ताले लगे थे, जिसके विषय में पूछने पर केसरी सिंह ने यह कह कर टाल दिया कि इन कमरों में रखी हुई वस्तुओं की सूची दे दी गई है।[56] इसी समय सिंघवी सुन्दरदास नामक एक व्यक्ति ने इन्द्रसिंह को सूचित किया कि राठौड़ों के पास बहुत ज्यादा धन एकत्र है तथा इतनी आसानी से वे उस पर शाही अधिकार नहीं होने देंगे। इन्द्रसिंह ने तुरन्त यह सूचना बादशाह तक प्रेषित की। इस तरह की सूचना प्राप्त होने के बाद राठौड़ों पर अविश्वास धीरे–धीरे बढ़ रहा था क्योंकि ख्वाजा फरासत से भी बादशाह को ऐसी ही सूचना प्राप्त हुई थी तथा ऐसा प्रतीत होता है जसवन्त सिंह की सम्पत्ति पर राठौड़ों ने अपना व्यक्तिगत अधिकार समझ लिया हो इसलिए तो उन्होंने हाड़ी रानी को भी इस विषय में जानकारी देना उचित नहीं समझा। हाड़ी रानी के एक पत्र से भी यह पता चलता है कि हाड़ी रानी को भी अपने महाराजा की सम्पत्ति के विषय में कोई जानकारी नहीं दी थी, जिसमें यह लिखा था कि महाराजा की सम्पत्ति के विषय में केसरी सिंह, जीवनराज भंडारी व ख्वाजा फरासत को सब कुछ ज्ञात था।

ऐसे असमंजस और अविश्वास की परिस्थिति में एक बादशह का नवजात शिशु को राज्य न देने का फैसला करना तत्कालीन परिस्थितियों के मध्य ठीक ही प्रतीत होता है। क्योंकि यदि अजीत सिंह को राज्य दे भी

दिया गया तो यह संभव था कि सभी राठौड़ सरदार मिलकर उस अधिकार का प्रयोग मुगल साम्राज्य के विरोध में ही करें जबकि यह अधिकार मुगल सम्राट द्वारा ही उन्हें दिया गया था। मारवाड़ के प्रति औरंगजेब द्वारा लिया गया कोई भी फैसला उसकी नीति नहीं थी बल्कि यह सभी कुछ परिस्थितिजन्य निर्मित स्थिति थी।

जब मुगल साम्राज्य में यह नियम प्रचलित था कि किसी भी पुत्र हीन राजा की सम्पत्ति पर उसकी मृत्यु के बाद शाही अधिकार हो जाता था तथा बादशाह अपनी इच्छानुसार उसे जागीर प्रदान करें। उन क्षेत्रों पर कभी भी वंशानुगत अधिकार नहीं होता था। जब इस नियम से राठौड़ सरदार पूरी तरह से परिचित थे तो उन्हें कोई अधिकार नहीं था कि वह एक मुगल सम्राट के अधिकारों का हनन करें या उसके मार्ग में कोई बाधा उत्पन्न करें। संभवतः औरंगजेब मारवाड़ का राज्य देने को तैयार भी हो जाता लेकिन राठौड़ सरदार जिस राज्य को पाने के लिए संघर्षरत थे, उनके कार्यों तथा व्यवहार के कारण ही वह राज्य उनसे दूर चला गया था। अगर इन्होंने बादशाह के आदेश का सही तरीके से पालन किया होता तो संभवतः स्थिति ऐसी नहीं होती।

औरंगजेब द्वारा पुनः राठौड़ सरदारों से सम्पत्ति का हिसाब माँगा गया। फलस्वरूप पंचोली केसरीसिंह तथा भण्डारी रघुनाथ सिंह ने हाथी, घोड़े, ऊँट, तोप, धनुष व बची हुई सम्पत्ति बादशाह के सामने रख दिया।

अब प्रश्न यह उठता है कि जब अभी जसवन्त सिंह की यह सम्पत्ति इनके पास थी तो इसका हिसाब पहले क्यों नहीं दिया गया? औरंगजेब द्वारा उन राठौड़ सरदारों पर दबाव डाला गया और तुरन्त आज्ञा दी गयी कि वे लोग तुरन्त बादशाह से आकर मिलें और जसवन्त सिंह की सम्पत्ति का पूरा विवरण दें। अभी भी राठौड़ सरदारों द्वारा सम्पत्ति का ठीक–ठाक विवरण नहीं दिया जा सका। तब अंततः जसवन्त सिंह की पूरी सम्पत्ति का विवरण देने का कार्य पंचोली केसरी सिंह ने अपने सिर ले लिया। लेकिन ऐसा लगता है कि वह अन्य राठौड़ सरदारों की आन्तरिक राजनीति के कारण सफल नहीं हो सका तथा 6 मई को बादशाह द्वारा उसे बंदी बना लिया गया। इस मान–हानि से उसे इतना धक्का लगा कि 25 दिन बाद 31 मई को उसने विष खाकर आत्महत्या कर ली।[57]

राठौड़ों को जब यह एहसास हो गया कि संभवतः औरंगजेब उनकी वास्तविक मंशा को समझ चुका है और अब उन्हें मारवाड़ का राज्य मिलने की उम्मीद खो रही थी तब राठौड़ सरदारों ने खानेजहाँ बहादुर को फिर से अपना निशाना बनाया और सहायता लेने के बहाने से फिर से पत्र लिखा और प्रार्थना किया कि आपने हमसे वादा किया था कि यदि महाराजा जसवन्त सिंह को पुत्र प्राप्त होगा तो आप हमें हमारा राज्य वापस दिला देंगे। लेकिन बादशाह हमें हमारा राज्य वापस नहीं दे रहा है। राठौड़ सरदारों का यह पत्र पाकर खानेजहाँ बहादुर थोड़ा विचलित हो

गया क्योंकि उसने पहले ही राजपूतों को आश्वासन दिया था कि यदि राजकुमार का जन्म हुआ तो वह स्वयं उनका राज्य वापस दिलवा देगा। इसलिए सरदारों की बातों में आकर खानेजहाँ ने बादशाह को पत्र लिखा कि–'मैंने शाही आज्ञानुसार राठौड़ों को वचन दिया था कि राजकुमारों का जन्म होने पर उन्हें जोधपुर वापस दे दिया जाएगा, परन्तु अब उसका पालन नहीं हो रहा है। यदि आज्ञा हो तो मैं आपके पास आऊँ और स्थिति स्पष्ट करूँ।' और साथ ही उसने राठौड़ सरदारों को भी आश्वासन भरा एक पत्र लिखा जिसमें बताया कि वह स्वयं बादशाह से प्रार्थना करने हेतु दिल्ली जा रहा है।

ऐसा लगता है कि खाने जहाँ बहादुर को राठौड़ सरदारों की वास्तविक मंशा या आन्तरिक राजनीतिक का पूरा ज्ञान नहीं था जो कि अब तक औरंगजेब अच्छी तरह से समझ चुका था। लेकिन खानेजहाँ बहादुर के पास औरंगजेब की तरह कूटनीतिक दिमाग नहीं था कि वह मारवाड़ की परिस्थितियों को समझ पाता। परिस्थितियों का सही ज्ञान न हो पाने के कारण ही उसने राठौड़ों के कहने से बादशाह से मिलने के लिए आज्ञा प्राप्त करनी चाही। बादशाह ने उसे अकेले ही दिल्ली आने की इजाजत दी। 25 मई को ही खानेजहाँ ने दिल्ली पहुँचकर बादशाह से भेंट कर राठौड़ सरदारों की प्रार्थना बादशाह तक पहुँचायी। लेकिन बादशाह ने उस समय खानेजहाँ बहादुर की प्रार्थना को भी अस्वीकार कर दिया।[58]

ऐसा नहीं था कि औरंगजेब ने खानेजहाँ बहादुर को ही मना कर दिया था। संभवतः इसी समय बीकानेर के शासक राजा अनूपसिंह तथा रतमाल के शासक राजा रामसिंह ने भी अपने–अपने वकीलों के द्वारा बादशाह से प्रार्थना की कि जोधपुर का परगना राजकुमारों को दे दिया जाए।[59] ऐसा प्रतीत होता है कि औरंगजेब इस समय अपने फैसले के प्रति दृढ़ प्रतिज्ञ हो चुका था तथा कोई भी बाहरी दबाव उसे अपना फैसला बदलने के लिए मजबूर नहीं कर सका।

अपने फैसलों के प्रति दृढ़ प्रतिज्ञता के बल पर ही उसने लगभग 50 वर्षों तक शासन किया और सभी परिस्थितियों का पूर्ण आंकलन कर ही किसी फैसले को अन्तिम रूप देता था। 50 वर्ष का समय एक या दो दिन में व्यतीत नहीं होता है। औरंगजेब के चरित्र में कुछ तो ऐसी खासियत होगी जिसके कारण उसने 50 वर्षों तक मुगलिया सल्तनत को सुदृढ़ बनाए रखा। इसलिए औरंगजेब द्वारा लिए गए परिस्थितिजन्य फैसलों को उसकी हिन्दू विरोधी नीति कहना उचित प्रतीत नहीं होता है।

औरंगजेब के लिए भी मारवाड़ के इस नाजुक हालात में ऐसा फैसला लेना आसान नहीं था। लेकिन औरंगजेब के पास और कोई रास्ता नहीं था क्योंकि न तो स्वर्गीय महाराजा जसवन्त सिंह की किसी रानी में ही यह योग्यता थी और न कोई ऐसा योग्य राठौड़ सरदार ही था जो उत्तराधिकार की समस्या का समाधान होने तक वहाँ शान्ति और व्यवस्था

स्थापित कर सकता।[60]

राजपूत सरदार अजीत सिंह को मारवाड़ की गद्दी दिलाकर सत्ता को अपने हाथ में रखना चाहते थे क्योंकि अजीत सिंह उस समय अवयस्क था। औरंगजेब ने बड़ी चालाकी से अजीत सिंह के बहाने ताकतवर राजपूतों के हाथों में सत्ता जाने की संभावना को खत्म कर दिया और उसने एक कमजोर राजकुमार को मारवाड़ की गद्दी सौंपी। मारवाड़ सत्ता और लोभ का केन्द्र बन चुका था। प्रत्येक राजपूत सरदार अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए गुटबाजी कर रहे थे और औरंगजेब के इस आश्वासन के बाद कि जसवन्त सिंह की गर्भवती रानियों को पुत्र हो जाने पर सत्ता हस्तान्तरित कर दी जाएगी, राजपूत नहीं मानें। राजपूतों का उपद्रव जारी रहा। मारवाड़ की अन्दरूनी राजनीति मारवाड़ को मुगल सत्ता से अलग करने पर आमादा थी। औरंगजेब इस ख्याल से भी विचलित हो जाता था कि मारवाड़ मुगलों के अधीन नहीं रहना चाहता था। केन्द्रीय राजपूत सरदार की मृत्यु के बाद कई राजपूत सरदारों का उद्भव हो गया था जो अधीनता स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। अजीत सिंह के जन्म से लेकर गद्दी पर बैठने तक पूरा मारवाड़ अशान्त रहा और मारवाड़ का यह अशान्त वातावरण ही औरंगजेब के फैसले का कारण बना।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. पंचोली, 151 अ व 168 अ; ख्यात, भाग 2, पृ0 19; जुनी, पृ0 62; अजितोदय सर्ग 6 श्लोक 10; अजित विलास, 207 ब; जोधपुर रै राठौड़ां री ख्यात, 6 ब, वार्ता 3 ख
2. पंचाली, पृ0 154; जुनी, पृ0 62, अजितोदय सर्ग 4 श्लोक 26; राजरूपक, पृ0 18, अजित विलास, पृ0 207 ब; वीर, भाग–2, 828; टॉड, भाग 2, पृ0 44; रेऊ, भाग–1, पृ0 248; ओझा, भाग–4, खण्ड–1, पृ0 468; अजीत सिंह, पृ0 14
3. अजीत सिंह, पृ0 14–15
4. पंचोली, पृ0 161ब, ख्यात, भाग 2, पृ0 9; जुनी, पृ0 62; मूंदियाड़, पृ0 174–5; अजित विलास, पृ0 208 अ; वाकया, पृ0 108; आसोपा, पृ0 235; अजीत सिंह, पृ0 15
5. एम0, अतहर अली, पृ0 63–67; जेड0 फारूकी, पृ0 208–09
6. पंचोली, पृ0 154 ब, ख्यात, भाग 2, पृ0 1; ओझा, भाग 4 खण्ड 2, पृ0 477–78
7. पंचोली, पृ0 162 ब
8. पंचोली, पृ0 162 ब, 163 अ व 163 ब; ख्यात, भाग 2, पृ0 9–10
9. वही
10. पंचोली, 166 अ; ख्यात, भाग 2, पृ0 10, दानेश्वर, पृ0 186
11. पंचोली, 166 अ, ब; ख्यात, भाग 2, पृ0 10–11; जुनी, पृ0 62, दानेश्वर, पृ0 186, आसोपा, पृ0 266
12. अजितोदय, सर्ग 6, श्लोक 1–4; वार्ता, पृ0 32ब
13. पंचोली, 168 अ; ख्यात, भाग 2, पृ0 1 व 19; राजरूपक, पृ0 26; अजितोदय, सर्ग 62, श्लोक 1–10, जुनी, पृ0 61–62; मूंदियाड़, पृ0 174, अजित चरित्र, सर्ग 7, श्लोक 6; फौजचन्द, पृ0 1; दानेश्वर, पृ0 172 व 186; अजित विलास, पृ0 208 ब; वीर, भाग 2, पृ0 828; राठौड़ा, पृ0 1; रेऊ, भाग 1, पृ0 248; ओझा,

भाग 4, खण्ड 2, पृ0 478; रतमाल, पृ0 222; मूल, पृ0 192; फारूकी, पृ0 211–12; गहलोत, पृ0 153; अजीत सिंह, पृ0 20–21

14. ख्यात, भाग 2, पृ0 19; पंचोली, पृ0 168 अ; जुनी, पृ0 61; मूंदियाड़, पृ0 175; अजितोदय, सर्ग 6, श्लोक 15; दानेश्वर, पृ0 172 व 182; अजित विलास, पृ0 208 ब; वीर, भाग 2, पृ0 828; जोधपुर रै राठौड़ा रै ख्यात, पृ0 6 ब; मुस्तादखाँ, पृ0 107; फुतूहत, पृ0 73 ब; देवीप्रसाद, पृ0 84; सरकार, भाग 3, पृ0 329; रेऊ, भाग 1, पृ0 24; ओझा, भाग 4, खण्ड 2, पृ0 478; अजीत सिंह, पृ0 21
15. पंचोली, पृ0 168 ब व 170 ब; ख्यात, भाग 2, पृ0 19–20; जुनी, पृ0 63; दानेश्वर, पृ0 187; अजित विलास, 208 ब; आसोपा, पृ0 236
16. ख्यात, भाग 2, पृ0 20; दानेश्वर, पृ0 187
17. पंचोली, पृ0 169 अ; ख्यात, भाग 2, पृ0 20–21; दानेश्वर, पृ0 187
18. पंचोली, पृ0 169 ब; ख्यात, भाग 2, पृ0 21; राजरूपक, पृ0 27; जुनी, पृ0 63; दानेश्वर, पृ0 187; सूरजप्रकाश, भाग 2, पृ0 25; वीर, भाग–2, पृ0 828; मनूची, भाग 3, पृ0 233; ओझा, भाग 4, खण्ड 2, पृ0 480; मेवाड़, पृ0 166; आसोपा, पृ0 237; गहलोत (मारवाड़), पृ0 157; अजीत सिंह, पृ0 23–24
19. फुतूहात, पृ0 74 ब; पंचोली, पृ0 173 अ; ख्यात, भाग 2, पृ0 22; आसोपा, पृ0 237
20. पंचोली, 24 अ, ब, 170 ब; ख्यात, भाग–2, पृ0 1; जुनी, पृ0 63; राजरूपक, पृ0 18–19; अजितोदय, सर्ग 5, श्लोक 1; मूंदियाड़, पृ0 174; अजित विलास, पृ0 208 अ; कविराजा, पृ0 694; जोधपुर रै राठौड़ा री ख्यात, 6 ब; वाकया, पृ0 74, 77, 78
21. वाकया, पृ0 78, पंचोली, पृ0 162 अ, ब
22. पंचोली, पृ0 162 ब तथा 165 अ, ब; वाकया, पृ0 78, 80, 81, 98, 105, 107, 110, 131, 163, 141 व 154
23. जसवन्त सिंह, पृ0 26

24. अतहर अली, पृ0 63–7
25. वाकया, पृ0 74, 75, 76, 78, 79; अजितोदय, सर्ग–5, श्लोक 29–30; ख्यात, भाग 2, पृ0 2; जुनी, पृ0 63; दस्तूर, पृ0 142
26. वाकया, पृ0 79, 80 व 81
27. वाकया, पृ0 82, 83, 85, 86, 96, 99 व 123
28. वाकया, पृ0 94; अजितोदय, सर्ग 5, श्लोक, 30–36; जुनी, पृ0 63
29. वाकया, पृ0 94
30. वाकया, पृ0 94, अजितोदय, सर्ग 5, श्लोक, 30–36; जुनी, पृ0 63
31. वाकया, पृ0 80, 82, 83, 85, 86, 91, 95, 109, 117–9, 145–6
32. पंचोली, 162 अ; ख्यात, भाग 2, पृ0 2–3, जुनी, पृ0 63; दानेश्वर, पृ0 183; वाकया, पृ0 87
33. मुस्ताद खां, पृ0 106; सरकार, भाग 3, पृ0 326; ओझा, भाग 4, खण्ड–2, पृ0 447–48; रेऊ; भाग–1, पृ0 249
34. पंचोली, पृ0 162 अ, 166 ब; वाकया, पृ0 90–91
35. पंचोली, पृ0 167 अ; ख्यात, भाग 2, पृ0 3; जुनी, पृ0 63
36. जसवन्त सिंह, पृ0 30–31
37. पंचोली, पृ0 137 अ
38. मुस्ताद खां, पृ0 107; ख्यात, भाग 2, 3, पंचोली, पृ0 167 ब; दानेश्वर, पृ0 183; रेऊ, भाग 1, पृ0 251 ओझा, भाग 4, खण्ड 2, पृ0 479–80, अजीत सिंह, पृ0 31–32
39. वाकया, पृ0 103, 155–6
40. वाकया, पृ0 140, 149 व 152; अजितोदय, सर्ग 4, श्लोक 39–44; दस्तूर, पृ0 142; रेऊ, भाग 1, पृ0 250, अजीत सिंह, पृ0 32
41. वाकया, पृ0 144–45; 151 व 154

42. पंचोली, पृ0 167 ब, ख्यात, भाग 2, पृ0 3–4; राजरूपक, 24–5, जूनी, पृ0 63; अजित विलास, पृ0 208 अ; दानेश्वर, पृ0 184; दस्तूर, पृ0 142; वाकया, पृ0 157, 162; रेऊ, भाग 1, पृ0 250
43. पंचोली, पृ0 168 अ, 170 ब, 171 अ; ख्यात, भाग 2, पृ0 4; जुनी, पृ0 63–64; अजितोदय, सर्ग 6, श्लोक, पृ0 18–20; दानेश्वर, पृ0 184; आसोपा, पृ0 239
44. वाकया, पृ0 159; सरकार, भाग 3, पृ0 327
45. पंचोली, पृ0 172 अ, ख्यात, भाग 2, पृ0 6; राजरूपक, पृ0 25; मुस्ताद खाँ, पृ0 108; दानेश्वर, पृ0 184; जुनी, पृ0 64; फुतूहत, पृ0 74 अ; अजितोदय, सर्ग 6, श्लोक 52; अजितविलास, पृ0 208 ब; ओझा, भाग 4, खण्ड–2, पृ0 481
46. मुस्ताद खां, पृ0 108; फुतूहत, पृ0 74 अ; दानेश्वर, पृ0 188; सरकार, भाग 3, पृ0 328; रतमाल, पृ0 222; पूर्व 141, उमराए, पृ0 16; रेऊ, भाग 1, पृ0 251
47. रेऊ, भाग 1, पृ0 250
48. ख्यात, भाग 2, पृ0 5–6; पंचोली, पृ0 171 ब; वाकया, पृ0 162, 63 व 166; आसोपा, पृ0 236; अजीतसिंह, पृ0 37
49. ख्यात, भाग 2, पृ0 5–6; मासिर, पृ0 786; रेऊ, भाग 1, पृ0 250; आसोपा, पृ0 239; अजितोदय, सर्ग 6, पृ0 43–44, 46–47; अजीत सिंह, पृ0 37–38
50. वाकया, पृ0 171–2
51. ख्यात, भाग 2, पृ0 6–7; ओझा, भाग 4, खण्ड 2, पृ0 480
52. ख्यात, भाग 2, पृ0 7 व 22; ओझा, भाग 4, खण्ड 2, पृ0 480
53. ख्यात, भाग 2, पृ0 22
54. मुस्ताद खाँ, पृ0 109; ख्यात, भाग 2, पृ0 22; मूंदियाड़, पृ0 175; राजरूपक, पृ0 27; अजित विलास, पृ0 208 ब; आसोपा, पृ0 217; अजीत सिंह, पृ0 41
55. ख्यात, भाग 2 पृ0 22; ओझा, भाग 4, खण्ड 2, पृ0 481; आसोपा, पृ0 217–18
56. ख्यात, भाग 2, पृ0 24; रेऊ, भाग 1, पृ0 252

57. पंचोली, पृ0 174 अ; ख्यात, भाग 2, पृ0 24–25; मूंदियाड़, पृ0 175; राजरूपक, पृ0 28; दानेश्वर, पृ0 190; अजित विलास, पृ0 208 ब; वार्ता, पृ0 33 ब, 34 अ; रेऊ, भाग 1, पृ0 252; ओझा, भाग 4, खण्ड 2, पृ0 482; मूल, पृ0 193; अजीत सिंह, पृ0 42
58. ख्यात, भाग 2, पृ0 23–4; मुस्ताद खां, पृ0 108; फुतूहात, पृ0 75 अ; रेऊ, भाग 1, पृ0 251–52; ओझा, भाग 4, खण्ड 2, पृ0 481; आसोपा, पृ0 218; अजीत सिंह, पृ0 43
59. ख्यात, भाग 2, पृ0 24; ओझा, भाग 5, खण्ड 1, पृ0 263; आसोपा, पृ0 218
60. अजीतसिंह, पृ0 44

पंचम अध्याय

जसवन्त सिंह के मरणोपरान्त मारवाड़ राज्य के प्रति औरंगजेब की नीति

अध्याय–5

जसवन्त सिंह के मरणोपरान्त मारवाड़ राज्य के प्रति औरंगजेब की नीति

मारवाड़ राज्य की आन्तरिक परिस्थितियाँ लगातार औरंगजेब के लिए चुनौती बनी हुई थी क्योंकि यहाँ पर कोई भी प्रशासनिक व्यवस्था सुदृढ़ न हो पाने के कारण पूरा राज्य अनियंत्रित हो चुका था। इस समय मारवाड़ में शान्ति तथा व्यवस्था स्थापित करने की क्षमता किसी में नहीं थी। न तो अजीत सिंह ही इस अवस्था में था कि उसे राज्य का अधिकार सौंपा जा सके तथा राठौड़ सरदारों ने मिलकर जो अविश्वास का वातावरण तैयार किया था उससे उन्हें राज्य का अधिकार सौंपना असंभव सा हो गया था। तब औरंगजेब ने जसवन्त सिंह के निकटतम संबंधी इन्द्रसिंह[1] को राज्य का अधिकार सौंपना उचित समझा। अतः औरंगजेब ने 26 मई 1679 ई0 को राजा की उपाधि, खिलअत खासा, जड़ाऊ साज की तलवार, सोने के साज युक्त घोड़ा, हाथी, झण्डा, तुग व नक्कारा के साथ जोधपुर का राज्य इन्द्रसिंह को सौंप दिया।[2] इन्द्रसिंह को बादशाह द्वारा तीन हजार जात तीन हजार सवार, एक हजार दो अस्पा से अस्पा का मनसब प्रदान किया गया।[3] बादशाह को इन्द्रसिंह द्वारा छत्तीस लाख रुपये नजराना के रुप में भेंट किया गया।[4]

कुछ इतिहासकारों का मानना है कि इन्द्रसिंह ने 36 लाख रुपये देकर मारवाड़ की गद्दी औरंगजेब से खरीदी थी। उन इतिहासकारों को

यह भी पता होना चाहिए था कि औरंगजेब उन शासकों में से नहीं था जो पैसे के लिए अपना राज्य बेच दें। क्योंकि यह सर्वविदित था कि इन्द्रसिंह राजपूत घराने से ही संबंध रखता था और उस समय ऐसा कोई था भी नहीं कि जिसे कुछ समय के लिए ही सही मारवाड़ का अधिकार सौंपा जा सके। वास्तविक रुप से भी देखा जाए तो यदि जसवन्त सिंह को मारवाड़ की गद्दी प्राप्त न हुई होती तो संभवतः इस समय इन्द्रसिंह को ही मारवाड़ की गद्दी का अधिकार प्राप्त होता। जहाँ तक गद्दी खरीदने की बात है तो यह बताना भी जरुरी है कि किसी भी बादशाह द्वारा टीका देने के बाद टीका प्राप्त करने वाले के द्वारा बादशाह को नजराना भी देने की प्रथा थी। अतः औरंगजेब पर यह दोषारोपण नहीं किया जा सकता कि उसने 36 लाख रुपये के लिए मारवाड़ की गद्दी को बेच दिया।

हिन्दुस्तान के दो हिस्सों से आए हुए राठौड़ सरदारों को जब पता चला कि बादशाह द्वारा मारवाड़ का राज्य इन्द्रसिंह को सौंप दिया गया तो चिंता और अधिक बढ़ गयी थी। क्योंकि ये सरदार तो अभी तक यह सोच रहे थे इनके व्यवहार और कार्य से बादशाह घबराकर मारवाड़ का अधिकार इन्हें सौंप देगा लेकिन औरंगजेब के फैसले ने सरदारों की मंशा पर पानी फेर दिया। यदि इन सरदारों की यही इच्छा थी कि मारवाड़ पर शाही अधिकार न किया जाए तो इन्हें तो प्रसन्न होना चाहिए कि मारवाड़ पर शाही अधिकार न करके बल्कि उसी घराने के एक व्यक्ति को अधिकार दिया जा रहा था। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि इस फैसले से उनके

व्यक्तिगत मंसूबे पर पानी फिर चुका था और वह इसे स्वीकार करने के पक्ष में नहीं थे।

राठौड़ सरदार अभी भी इस उम्मीद में थे कि बादशाह उनकी बात को स्वीकार कर लेगा। मन ही मन भले ही इनके अन्दर विद्रोही प्रवृत्ति का जन्म हो चुका हो, लेकिन अभी भी ये दोहरी राजनीति कर बादशाह के सामने खुला विद्रोह नहीं करना चाहते थे। इसलिए जब बादशाह ने इन्हें जसवन्त सिंह की हवेली खाली कर राजा रुपसिंह की हवेली जाने का आदेश दिया तो उन्होंने बादशाह को दिखाने के लिए तुरन्त हवेली खाली कर दी लेकिन दूसरी ओर इन्द्रसिंह के प्रतिनिधि के जोधपुर पहुँचने से पूर्व ही स्वयं जोधपुर पहुँचकर उन्हें वहाँ से बाहर करने की योजना बनाने लगे। इन योजनाओं को अन्जाम तक पहुँचाने के लिए यह आवश्यक था कि वे लोग दिल्ली से निकलकर जोधपुर पहुँचे। इसलिए उन्होंने औरंगजेब से प्रार्थना की कि सपरिवार आए हुए कुछ सरदार अपने वतन वापस लौटना चाहते हैं। अतः उन्हें लौटने की इजाजत दे दी जाए। बादशाह ने भी इन्हें लौटने की इजाजत दे दी लेकिन इस शर्त के साथ कि रानियों एवं राजकुमारों को छोड़कर सभी जा सकते है।[5] इससे पहले ही सरदारों ने यह विचार कर लिया था कि अब बिना वजह दिल्ली में रुकने का कोई फायदा नहीं है और सभी को जोधपुर पहुँचना चाहिए। राठौड़ों के दिल्ली छोड़ने से पहले ही छोटे राजकुमार दलथम्मन की मृत्यु हो गई थी।[6] जिसके कारण अजीतसिंह को सुरक्षित रखना राठौड़ों के लिए आवश्यक हो

गया था। इसी कारण से औरंगजेब द्वारा दी गई अनुमति का अनुचित लाभ उठाकर सरदारों के साथ अजीतसिंह तथा रानियों को भी गुप्तरुप से दिल्ली से रवाना कर दिया गया तथा उनकी सुरक्षा का भार खींची मुकुन्ददास को विशेष रुप से सौंपा गया था।[7]

राठौड़ों की यह विद्रोही मंशा अधिक समय तक औरंगजेब से न छिप सकी और जल्द ही उसे पता चल गया कि राजपूत यहाँ से भागकर जोधपुर पहुँचकर अव्यवस्था फैलाना चाहते है। राठौड़ सरदार भी यह बात जानते थे कि औरंगजेब से यह बात ज्यादा देर तक न छिप सकेगी और राजकुमार का पता लगाने के लिए ससैन्य उनका पीछा किया जाएगा। औरंगजेब की सेना से भय करना भी उनके लिए स्वाभाविक था क्योंकि वे सरदार अपनी क्षमता को तो अच्छी तरह से जानते थे कि यदि शाही सेना उनके पीछे आएगी तो वह ज्यादा देर तक उससे लड़ने में सक्षम नहीं है। अतः राठौड़ ये सोच रहे थे कि वे लोग जल्द से जल्द जोधपुर पहुँच जाए और शाही सेना से उलझना भी न पड़े। तब उन्होंने छोटे–छोटे दलों में बारी–बारी से शाही सेना को राजकुमार के पीछे जाने से रोकने का निश्चय किया।[8]

औरंगजेब को जब राठौड़ों के इस प्रकरण की सूचना मिली तो उसने 15 जुलाई को रानियों तथा राजकुमार को तुरन्त नूरगढ़ भेजने का शाही आदेश प्रेषित किया और इस कार्य को पूर्ण करने की जिम्मेदारी

दिल्ली के प्रसिद्ध कोतवाल फुलाद खाँ को दिया। बादशाह ने फुलाद खाँ को यह भी आदेश दिया कि यदि राठौड़ शाही आज्ञा का उलंघन करे और लड़ाई–झगड़ा करें तो वह भी शस्त्र का प्रयोग करें।[9] शाही आदेश प्राप्त कर फुलाद खाँ अपने सैनिकों के साथ राठौड़ों का पीछा करने के लिए निकल पड़ा। राठौड़ों का पीछा करते हुए वह उनके पास पहुँचा और उन्हें शाही आदेश भी सुनाया। उसने बार–बार राठौड़ों से वापस लौटने का आग्रह किया, लेकिन राठौड़ों ने शाही आदेश मानने से इंकार कर दिया। इन्होंने फुलाद खाँ के आने से पहले ही रानियों को राजकुमार संग आगे की ओर रवाना कर दिया था। इस बात की जानकारी फुलाद खाँ को नहीं थी। अतः वह बार–बार शाही आदेश मानने का आग्रह कर रहा था। लेकिन उसने शाही आदेशानुसार बल प्रयोग करने में ज्यादा समय न लगाया तथा राठौड़ों द्वारा मना करने पर फुलाद खाँ ने भी बल पूर्वक शाही आदेश मनवाने की कोशिश की और 16 जुलाई से राठौड़–मुगल संघर्ष प्रारम्भ हो गया।[10]

भाटी रघुनाथ के नेतृत्व में कुछ राठौड़ों को छोड़कर बाकी सरदारों ने वह स्थान छोड़कर आगे की ओर प्रस्थान किया। भाटी रघुनाथ अधिक वक्त तक शाही सेना का सामना न कर सका और अपने साथ रुके हुए सरदारों के साथ स्वयं भी मारा गया। शाही सैनिकों के आगे बढ़ने पर इनका सामना लगभग 100 सरदारों के साथ रणछोड़दास के साथ हुआ और वह भी शाही सेना के समक्ष सफल होने में सक्षम नहीं हो सका और

अपने राठौड़ सैनिकों के साथ युद्ध क्षेत्र में मारा गया। इसके बाद दुर्गादास राठौड़ ने शाही सेना का सामना करने का बीड़ा उठाया लेकिन अंधेरा हो जाने के कारण दुर्गादास राठौड़ के साथ अभी निर्णायक जंग न हो सका और शाही सेना अपने पड़ाव पर वापस आ गयी।[11]

रात होने पर दुर्गादास राठौड़ अपने छः सैनिकों ऊदावत रुपसिंह, मेड़तिया मोहकमसिंह, राठौड़ भोजराज, चांपावत दूदो, राठौड़ महासिंह तथा पंचोली पंचायणदास के साथ आगे बढ़ा तथा राजकुमार के साथ जा मिला।[12]

इन घटनाओं के बीच राठौड़ सरदारों द्वारा एक और कुकृत्य किया गया। अपनी क्षमता का सही आकंलन कर लेने के बाद सभी राठौड़ सरदार यह समझ चुके थे कि शाही सेना से युद्ध करने में वह कभी सफल नहीं हो सकते है। तब परिस्थितियों को विषम होते देखकर उन्हें यह आशंका हुई कि कहीं रानियों को शाही सैनिक पकड़ न लें। फलतः उन्होनें स्वयं ही रानियों को मार डाला।[13]

इन रानियों की सुरक्षा की जिम्मेदारी इन राठौड़ सरदारों पर ही थी और इन रानियों तक तो शाही सेना तभी पहुँच पाती जब इन सभी राठौड़ सरदारों की मृत्यु हो जाती। अपनी राजनीति का केन्द्र बनाने तथा अपनी व्यक्तिगत मंशाओं की पूर्ति के लिए जब इन्हें उत्तराधिकार की आवश्यकता थी तब इन्हीं राठौड़ सरदारों ने दोनो रानियों को सती होने से रोका था

और अब जब इन्हें केन्द्र के रुप में अजीत सिंह की प्राप्ति हो चुकी थी तो इन्होंने अपने स्वार्थ पूर्ति के बाद इन रानियों को स्वयं ही मार डाला। उस समय इन्होंने यह भी नहीं सोचा कि जिसे वह केन्द्र बनाकर संघर्ष कर रहे है वह बच्चा अजीतसिंह इतनी छोटी उम्र में अपनी माँ के बिना कैसे जीवित रह पाएगा। अपने स्वार्थ में अन्धे हो चुके राठौड़ों के लिए अजीतसिंह के अलावा कुछ भी आवश्यक न था और जब उन्हें रानियों की आवश्यकता न रही तब उन्हें बोझ समझकर उन्हें स्वयं ही मार डाला।

राठौड़ों द्वारा शाही आज्ञा प्राप्त किए बिना ही भाग जाना निश्चय ही किसी बड़े षड़यन्त्र या विद्रोह का संकेत था तथा इस घटना के बाद राठौड़ों के प्रति सतर्कता बढ़ाना स्वाभाविक था। अब औरंगजेब इन्हें एक साथ एकत्रित होने और संगठित होने का मौका नहीं देना चाहता था। इसीलिए बादशाह ने सोजत व जैतारण के दोनों परगनें जो कि राठौड़ों को जसवंत सिंह की मृत्यु के बाद दिए गए थे, वो भी खालसा कर दिए। इन क्षेत्रों के खालसा किए जाने से पहले ही जोधपुर का राज्य इन्द्रसिंह को सौंपा जा चुका था। अतः ताहिर खाँ को जोधपुर से हटा कर इन दोनों परगनों की फौजदारी व अमीनी सौंपी गई। बादशाह यह अच्छी तरह से समझ चुका था कि इस समय जोधपुर की स्थिति इतनी नाजुक बनी हुई थी कि कुछ क्षण के लिए भी जोधपुर को बिना शाही सेना के छोड़ना उचित नहीं है। अतः बादशाह ने ताहिर खाँ को स्पष्ट आज्ञा दी थी कि जब तक जोधपुर में इन्द्रसिंह का प्रतिनिधि न पहुँच जाए, वह सोजत व

जैतारण के लिए प्रस्थान न करें।[14]

इधर दिल्ली से भागे हुए राठौड़ों ने जोधपुर के पास पहुँच कर सलावास नामक गाँव में रुककर सेना को संगठित करने तथा एकत्रित करने का कार्य आरम्भ किया।[15] संभवतः यहीं पर ही 1 सितम्बर को इन सरदारों द्वारा ही अजीत सिंह का राज्याभिषेक भी किया गया था।[16]

इससे पहले ही यह समाचार जोधपुर पहुँच चुका था कि बादशाह ने जोधपुर का राज्य इन्द्रसिंह को सौंप दिया गया है। राठौड़ों के इच्छा के विरुद्ध ही इन्द्रसिंह को अधिकार सौंपना निश्चित रुप से उनके असन्तोष को बढ़ावा देना था, लेकिन इस समय बादशाह के पास अन्य कोई विकल्प भी तो उपलब्ध नहीं था। जब उन्हें यह सूचना मिली की दिल्ली गए राठौड़ों ने गुप्त रुप से अजीत सिंह को वहाँ से लेकर जोधपुर की ओर आ रहे है तो जोधपुर के राठौड़ों की हिम्मत और भी ज्यादा बढ़ गयी थी तथा यह सूचना पाते ही उन्होंने आस–पास के सरदारों को पत्र लिखकर बुलाने की योजना बनायी। इन पत्रों को प्राप्त कर धीरे–धीरे आस–पास के राठौड़ सरदार जोधपुर पहुँचने लगे जिससे अगस्त तक इनकी संख्या लगभग 6000 तक हो गयी थी। राठौड़ सरदारों की गतिविधियाँ लगातार तेज हो रहीं थी और ताहिर खाँ भी इनके संगठन को देखकर चिन्तित होने लगा। 9 जून को ये राठौड़ सरदार अन्तिम बार ताहिर खाँ से मिले और उन्होंने राज्य वापस दिलाने की पुनः प्रार्थना की। परन्तु जोधपुर की

वास्तविक स्थिति को देखकर इस समय ताहिर खाँ ने किसी प्रकार का आश्वासन देना भी उचित नहीं समझा।[17] तब इन सरदारों ने आपस में विचार विमर्श कर यह तय किया कि इन्द्रसिंह को जोधपुर का अधिकार नहीं लेने दिया जाएगा।[18]

इन्द्रसिंह ने जोधपुर की स्थिति का निरीक्षण करने के बाद यह निश्चय किया कि अभी तुरन्त जोधपुर जाना समयानुकूल नहीं है। अतः सबसे पहले किशनदास नामक व्यक्ति को जोधपुर के हालातों का जायजा लेने के लिए भेजा। आखिरकार वहीं हुआ जिसका इन्द्रसिंह को भय था। इन्द्रसिंह द्वारा भेजे गए इस दूत को राठौड़ों ने 21 जून को सोनग के भतीजे अखेराज द्वारा मरवा दिया। किशनदास की मृत्यु के बाद इन्द्रसिंह ने जौहरमल को इस कार्य हेतु भेजा परन्तु राठौड़ों ने उसे जोधपुर में प्रवेश करने का मौका ही नहीं दिया तथा वापस जाने पर मजबूर कर दिया। तब जौहरमल ने आसोप नामक स्थान पर रुककर इन्द्रसिंह का इन्तजार करना उचित समझा।[19]

इसी बीच जोधपुर के सरदारों को यह भी पता चला कि दिल्ली से भाग रहे राठौड़ सरदारों और शाही सेना में संघर्ष प्रारम्भ हो गया है।[20]

जोधपुर का संकट दिन–प्रतिदिन गहराता जा रहा था। जोधपुर में नियुक्त शाही अधिकारियों को भी अब तक किसी भावी बड़े संघर्ष का आभास हो गया था। इसलिए दीनदार खाँ कायमखानी तथा ताहिर खाँ ने

भी विषम परिस्थितियों में जोधपुर छोड़ने का फैसला किया तथा ताहिर खाँ ने अजमेर की ओर तो दीनदार खाँ कायमखानी ने नागौर की तरफ जाना तय किया। उधर राठौड़ सरदारों ने भी सुरक्षा की दृष्टि से जसवन्त सिंह की रानियों को उनके पीहर भेजने का फैसला किया।[21] दिल्ली से भागे हुए राठौड़ सरदारों ने तो उन्हें उत्तराधिकार देने वाली रानियों को ही मार डाला। परन्तु जोधपुर के सरदारों ने उन्हें सिर्फ पीहर ही भेजा जिससे इनकी कुछ तो इज्जत बची रही। वरना परिस्थितियों को देखकर अंदाजा लगाया जा सकता है कि इस समय राठौड़ सरदारों को अपनी स्वार्थपूर्ति के अतिरिक्त कुछ भी नजर नहीं आ रहा था। ताहिर खाँ के जोधपुर से चले जाने के बाद राठौड़ों ने अन्य शाही अधिकारियों को हटाकर जोधपुर पर बलपूर्वक अधिकार कर लिया।[22]

राठौड़ों की शक्ति लगातार बढ़ती ही जा रही थी लेकिन शायद इन्हें ऐसा लग रहा था कि एक छोटे से जगह पर अपनी शक्ति केन्द्रित कर ये पूरे हिन्दुस्तान के सम्राट से टक्कर लेने में सक्षम हो गए है। जोधपुर पर अधिकार करने के बाद इन्होंने मेड़ता पर अधिकार करना चाहा। अतः इन राठौड़ों ने अगस्त 1679 ई0 को मेड़ता पर आक्रमण कर वहाँ के फौजदार, अमीन व किरोड़ी सादुल्ला खाँ को भी मार डाला। मेड़ता पर अधिकार करने के पश्चात् इन्होनें सिवाना पर आक्रमण कर वहाँ भी अधिकार कर लिया। समस्त जोधपुर राज्य में स्थान–स्थान पर उपद्रव आरम्भ हो गए। छोटी–छोटी टुकड़ियों में विभक्त राठौड़ सरदारों ने शाही

स्थानों पर अधिकार करना आरम्भ कर दिया था। फलतः दिल्ली से गुजरात का मार्ग अरक्षित हो गया।[23]

शाही अधिकार के विरुद्ध किए जा रहे खुले विद्रोहों की सूचना बादशाह तक पहुँच गयी तथा यह सूचना प्राप्त होते ही बादशाह ने जल्द ही मारवाड़ में हो रहे विद्रोह को दबाने के लिए 17 अगस्त को बख्शी सरबुलन्द खाँ की अध्यक्षता में एक विशाल सेना नियुक्त की।[24] मारवाड़ में ताहिर खाँ भी अजमेर पहुँच चुका था और उसने वहाँ के सूबेदार तहव्वर खाँ को जोधपुर में राठौड़ों द्वारा हो रहे उपद्रव तथा जोधपुर का हाल सुनाया। जोधपुर की स्थिति सुनकर तहव्वर खाँ से रहा नहीं गया और उसने स्वयं जोधपुर जाकर वहाँ की स्थिति सुधारने का बीड़ा उठाया। तहव्वर खाँ के जोधपुर आने की सूचना सुनकर मेतिया राजसिंह प्रतापसिंह ने तहव्वर खाँ के विरुद्ध जाने का बीड़ा उठाया तथा शाही सेना का सामना करने के लिए चल पड़ा। 21 अगस्त को दोनों सेनाओं के बीच घमासान युद्ध शुरु हो गया। इस युद्ध में राजसिंह प्रतापसिंह की मृत्यु हो गयी। राजसिंह की मृत्यु के बाद भी जंग जारी रहा। ऐसा प्रतीत होता है कि यह युद्ध राठौड़ो और शाही सेना का मारवाड़ में प्रथम और अन्तिम युद्ध था क्योंकि संभवतः इस युद्ध का परिणाम अनिश्चित ही रहा। इस युद्ध के बाद कभी भी राठौड़ों ने शाही सेना का खुलकर सामना करने की हिम्मत नहीं दिखायी तथा हमेशा पहाड़ों एवं जंगलों में छिपकर छापामार युद्ध प्रणाली को अपनाकर युद्ध जारी रखा। 23 अगस्त को बादशाह तक

यह खबर पहुँच गयी कि तहव्वर खाँ और राजसिंह के मध्य घमासान युद्ध हुआ तो औरंगजेब मारवाड़ राज्य के वर्तमान स्थिति के प्रति अधिक चिन्तित हो गया। अब तक औरंगजेब समझ चुका था कि मारवाड़ की स्थिति इतनी विद्रोही हो गयी है कि अब किसी शाही अधिकारी द्वारा हालात काबू में नहीं किया जा सकता। परिस्थितियों के आकलन के बाद औरंगजेब ने अब स्वयं ही मारवाड़ की ओर जाने का फैसला लिया। इसके लिए बादशाह ने तय किया कि स्वयं अजमेर जाकर वहाँ से शाही अधिकारियों को निर्देशित कर हालात काबू में किया जा सकता है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु बादशाह ने 3 सितम्बर को दिल्ली से अजमेर के लिए प्रस्थान किया। रास्ते में शाही सेना द्वारा पालम में पड़ाव के दौरान ही शाहजादा अकबर को भी शाही सेना के हरावल का नेतृत्व सौंपा गया था।[25]

दिल्ली में ही इन्द्रसिंह को यह सूचना मिल चुका था कि उसके द्वारा भेजे गए प्रतिनिधि को जोधपुर में प्रवेश करने से भी राठौड़ों ने रोक दिया है और जोधपुर पर अधिकार कर लिया है। लेकिन इन परिस्थितियों में भी इन्द्रसिंह का जोधपुर पहुँचना आवश्यक था क्योंकि उसे शाही आदेश दिया गया था और अधिक दिनों तक दिल्ली में रुके रहना उचित नहीं था। 31 अगस्त तक वह जोधपुर से केवल एक कोस दूर रातानाड़ा में पहुँचकर वहाँ पड़ाव डाला। यहीं पर पड़ाव के दौरान ही इन्द्रसिंह ने अपने प्रमुख राजपूत सरदारों को जोधपुर के राठौड़ों को समझाने के लिए भेजा।

इन्द्रसिंह के राजपूतों ने समझाया कि राजपूतों का खून बहाने से क्या फायदा होगा और फिर इन्द्रसिंह, जसवन्त सिंह के खानदान से ही तो सम्बन्धित है। जब तक राजकुमारों की सही जानकारी उपलब्ध नहीं हो जाती तब तक जोधपुर में शान्ति बनाए रखने के लिए इन्द्रसिंह को जोधपुर का अधिकार सौंप देना ही उचित होगा। इन राजपूतों ने उच्च पदों का लोभ भी दिया तब जोधपुर के सरदारों ने जागीरों का पट्टा लेना स्वीकार किया। 1 सितम्बर को इन्द्रसिंह का बेटा अजबसिंह ने जोधपुर के राठौड़ों को अपने पिता से मिलाने की व्यवस्था की।[26] इस मुलाकात के बाद 2 सितम्बर को इन्द्रसिंह ने बिना किसी विरोध के जोधपुर में प्रवेश किया।[27]

इन्द्रसिंह ने किसी तरह जोधपुर का अधिकार तो अपने हाथ में ले लिया था लेकिन अधिक दिनों तक उस पर अधिकार बनाए रखने में सक्षम न हो सका।

अन्ततः उसके कार्यो एवं जोधपुर के प्रति व्यवहार से दुःखी होकर जोधपुर के राठौड़ सरदारों को भी अपने निर्णय पर ही पछतावा होने लगा कि क्यों उन्होंने इन्द्रसिंह को जोधपुर पर अधिकार करने दिया। सभी राठौड़ मिलकर दुर्गादास के पास गए और अपनी गलती स्वीकार की। तब दुर्गादास ने उन्हें सांत्वना दिया और पुनः संगठित होकर जोधपुर पर अधिकार करने की राय दी।[28]

बादशाह के अजमेर पहुँचने पर इन्द्रसिंह ने भी बादशाह से मुलाकात की तथा जोधपुर की स्थिति से अवगत कराया और बादशाह ने भी इन्द्रसिंह को जोधपुर के हालात और बिगाड़ने के लिए जिम्मेदार ठहराया। औरंगजेब की डाँट सुनने के बाद इन्द्रसिहं ने जोधपुर के अधिकारी साहब खाँ को लिखा कि वह कुछ ऐसा कार्य करे जिससे बादशाह को खुश रखा जा सकता हो। साहब खाँ को भी दूसरा रास्ता न दिखा तो उसने राठौड़ों के प्रमुख नेता राम भाटी की हत्या करने की योजना बनाई तथा इस कार्य को करने के लिए किशनसिंह केसरी सिंहात की नियुक्ति की गयी। अन्ततः इस योजना को साहबखाँ और किशनसिंह ने मिलकर अंजाम तक पहुँचा दिया और 15 दिसम्बर को रामभाटी की हत्या कर दी। बाद में राम भाटी का सेवक बीका कालिया भी मारा गया तथा साथ ही इस युद्ध में किशनसिंह के जीवन का भी अन्त हो गया।[29] यह घटना इन्द्रसिंह के कारण घटित हुई। अतः इस घटना के लिए औरंगजेब को जिम्मेदार ठहराना उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि औरंगजेब ने उसे मारने का आदेश नहीं दिया था।

राम भाटी की मृत्यु के पश्चात राठौड़ सरदारों को अपने संगठन के प्रति चिन्ता होने लगी थी तभी उन्हें यह समाचार भी प्राप्त हुआ कि बादशाह अजमेर तक आ पहुँचा था। ये सरदार बादशाह की शाही सेना के साथ युद्ध करने के परिणाम से बहुत अच्छी तरह वाकिफ थे। ये जानते थे कि शाही सेना के साथ ये लम्बे युद्ध पर जाने के लिए तैयार नहीं है।

अपनी स्थिति का वास्तविक आंकलन के पश्चात् इन्होनें अपने पड़ोसी राज्यों से मदद लेने की योजना बनाई। इस समय राजपूताना में मारवाड़ के अतिरिक्त उदयपुर, जयपुर और बीकानेर ये तीन प्रमुख राज्य थे जो राठौड़ों के लिए सहायक सिद्ध हो सकते थे। परन्तु जयपुर और बीकानेर राज्य ने तो पहले से ही मुगल अधीनता स्वीकार कर उनकी सेवा में कार्यरत थे। अब उदयपुर राज्य ही था जो इस समय राठौड़ सरदारों की सहायतार्थ आगे आ सकता था। अतः राठौड़ सरदारों ने सिंघवी दयालदास तथा राठौड़ गोपीनाथ दुरजणसिंहोत को इस कार्य हेतु नियुक्त किया तथा इनके द्वारा जोधपुर की सरदारों की तरफ से लिखा एक पत्र उदयपुर के राणा राजसिंह के पास भेजा गया जिसमें अजीतसिंह को आश्रय देने के लिए विनम्र प्रार्थना किया गया था। इस समय मेवाड़, मारवाड़ का पड़ोसी राज्य था। इस बात की भी पूरी संभावना थी कि यदि मारवाड़ पर शाही अधिकार हो जाता है तो मेवाड़ भी ज्यादा दिनों तक शाही अधिकार से अछूता न रह सकेगा। संभवतः इसी भय के कारण राणा राजसिंह ने मारवाड़ की सहायता का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया था। फलतः अजीतसिंह को लेकर राठौड़ सरदार राणा की सेवा में उपस्थित हुए और राणा को उन्होंने जेवरयुक्त एक हाथी, ग्यारह घोड़े, एक तलवार, एक रत्नजटित कटार तथा दस हजार चाँदी के रुपये भेंट दिए। राणा ने भी उन्हें सहायता देने का आश्वासन दिया।[30]

इस समय औरंगजेब की चिन्ता का कारण यह था कि उसके सैन्य

शक्ति का बड़ा हिस्सा दक्षिण अभियान पर लगा था। यदि इस समय मारवाड़ और मेवाड़ सम्मिलित रुप से युद्ध करे तो औरंगजेब की कठिनाइयाँ बढ़ सकती थी और औरंगजेब इस समय किसी भी नई समस्या को जन्म लेने का मौका नहीं चाहता था। इसलिए उसने मेवाड़ के राणा राजसिंह को फरमान भेजा कि यदि उसने मारवाड़ के अजीतसिंह को आश्रय दिया है तो उसे तुरन्त ही शाही दरबार में भेज दिया जाए। लेकिन राणा ने औरंगजेब के फरमान को महत्व देना आवश्यक न समझा और अपने फैसले पर अडिग रहा। अभी तक मारवाड़ में उपद्रवों का दौर थमा नहीं था। इस स्थिति में यदि इन उपद्रवों को मेवाड़ का नेतृत्व मिल जाता तो उसे कुचलने के लिए औरंगजेब को संभवतः अपनी पूरी ताकत लगानी पड़ सकती थी। इन सारी परिस्थितियों पर विचार कर औरंगजेब ने तय किया कि मेवाड़ और मारवाड़ को मिलने से पहले ही मेवाड़ को रोकना अधिक आवश्यक हो गया था। क्योंकि यदि मारवाड़ की ही भाँति मेवाड़ की सेना भी छापामार युद्ध प्रणाली का अनुसरण कर लेती तो इन उपद्रवों को दबाना असम्भव हो जाता।

मारवाड़ तथा मेवाड़ की स्थितियो का आकलन कर बादशाह ने स्वयं ही मेवाड़ जाने का मन बनाया तथा तुरन्त ही अपनी सहायता हेतु बंगाल से अपने पुत्र आजम तथा गुजरात से अमीना खाँ को ससैन्य आने के लिए शाही आदेश प्रेषित किया। शाही आज्ञानुसार अमीन खाँ 26 अक्टूबर तक ससैन्य अजमेर में उपस्थित हुआ।[31] शाहजादा अकबर को मारवाड़ में हो

रहे उपद्रवों को शान्त करने के लिए नियुक्त किया गया था लेकिन राठौड़ों द्वारा छापामार युद्ध प्रणाली अपना लेने के कारण अकबर को अभी तक कोई विशेष सफलता नहीं मिली थी। औरंगजेब ने शाहजादा अकबर को भी मेवाड़ चलने का आदेश दिया। शाही सेना का प्रबन्ध करने के पश्चात् औरंगजेब ने 30 नवम्बर को अजमेर से उदयपुर के लिए रवाना हुआ। देवराई तक पहुँचते ही शाहजादा अकबर भी उससे आ मिला और दोनों ने मिलकर मेवाड़—विजय की चेष्टा आरम्भ कर दी।[32]

इन राजपूतों द्वारा मारवाड़ में जो उपद्रव किए जा रहे थे उससे वहाँ की शाही अधिकार की व्यवस्था तहस—नहस हो गयी थी। प्रशासनिक व्यवस्था के अतिरिक्त मारवाड़ की अर्थव्यवस्था भी ध्वस्त हो रही थी। इन उपद्रवों के कारण जहाँ एक ओर खेती का नुकसान हो रहा था तो दूसरी तरफ मारवाड़ राज्य के सभी मार्ग अरक्षित हो गए थे। जिसके कारण मारवाड़ के लोगों के साथ—साथ वहाँ रह रहे शाही अधिकारियों का जीवन भी अब दुरुह होने लगा था। मार्गों के अरक्षित हो जाने के कारण शाही आदेश या फरमान सही समय पर वहाँ के अधिकारियों के पास नहीं पहुँच पा रहा था। नगरों पर अवश्य ही शाही अधिकार था, परन्तु पहाड़ी दर्रे व जंगल राजपूतों से भरे थे जो शाही अधिकारियों पर आक्रमण करने का कोई अवसर नहीं खोते थे।[33]

इस तरह सिर्फ जोधपुर ही नहीं बल्कि मारवाड़ राज्य के अन्य शहरों

में भी यही हाल था। न तो इन्द्रसिंह ही राठौड़ों को दबा सका न तो शाही सेना द्वारा ही इसे खत्म किया जा सका। तब तक मेवाड़ को लेकर भी नई समस्या खड़ी हो गयी थी जिसे बढ़ने से पहले ही दबाना आवश्यक हो गया था।

नवम्बर 1679 ई० में राणा राजसिंह को यह सूचना मिल चुकी थी कि मारवाड़ की सहायता करने के कारण तथा बादशाह के फरमान को नजरअंदाज कर देने के कारण बादशाह ससैन्य तैयारी के साथ मेवाड़ की ओर बढ़ रहा है। इस सूचना से राणा थोड़ा चिन्तित हुआ तथा उसने भी मेवाड़ की रक्षार्थ कार्य आरम्भ कर दिया था। इस कार्य हेतु राणा ने अपने सरदारों से विचार–विमर्श किया और यह तय किया गया कि सर्वप्रथम देबारी घाटी की सुरक्षा एवं चित्तौड़ के किले की सुरक्षा व्यवस्था सुदृढ़ करनी चाहिए। सुरक्षा की दृष्टि से ही मेवाड़ तथा मारवाड़ के राजपरिवारों को भोमट जिले में स्थित नेणवारा नामक गाँव भेज दिया गया। शाही सेना की अपेक्षा राणा की सैन्य सेना बहुत ही कम थी। अतः अपनी सुरक्षा के लिए सेना को पहाड़ियों के बीच छिपकर शाही सेना का सामना करने का आदेश दिया गया था। इस आदेश के पालन हेतु यहाँ के सभी निवासी पहाड़ियों एवं घाटियों में चले गए। सुरक्षा व्यवस्था सुदृढ़ करने हेतु देबारी, नाई चिरवा तथा झीलवाड़ा में सैनिक चौकियाँ स्थापित कर दी गई।[34] कुछ समय तक मेवाड़ में छिट–पुट युद्ध होते रहें लेकिन छोटे–मोटे युद्धों का कोई स्थाई परिणाम न निकल सका। तब बादशाह ने पुनः अजमेर जाने

का मन बनाया तथा 4 मार्च 1680 ई0 को लगभग 12000 की सुसज्जित सेना देकर अकबर को मेवाड़ का सेनापति बनाया गया। मेवाड़ की जिम्मेदारी शाहजादा अकबर को सौंप कर बादशाह ने मेवाड़ से मारवाड़ की ओर प्रस्थान किया और 22 मार्च को अजमेर पहुँचा।[35] बादशाह के मेवाड़ से प्रस्थान करते ही मेवाड़ की स्थिति भी मारवाड़ के जैसे ही हो गयी थी। चारों ओर अव्यवस्था का वातावरण फैल रहा था, सभी चौकियाँ नष्ट की जा रही थी तथा असुरक्षा की स्थिति मेवाड़ में भी जन्म ले रही थी। अकबर की इतनी कोशिशों के बाद भी मेवाड़ की स्थिति निरन्तर बिगड़ती ही जा रही थी। मेवाड़ में शाही सेना की स्थिति तथा अकबर को सफल होते न देखकर औरंगजेब ने अकबर को वापस मारवाड़ बुलाने का फैसला किया तथा शाहजादा अकबर की जगह आजम को नियुक्त किया गया। शाही आदेश पाकर 25 जून को शाहजादा आजम चित्तौड़ पहुँचा तथा शाहजादा अकबर ने दूसरे दिन यात्रा आरम्भ कर मारवाड़ की तरफ रवाना हो गया।[36] 18 जुलाई तक सोजत पहुँच गया था।

अकबर के लौटने के बाद भी न तो मेवाड़ और न ही मारवाड़ में शान्ति स्थापित हो सका। कई महीनों से यह क्षेत्र लगातार संघर्ष के दौर से गुजर रहा था। राठौड़ों को धीरे–धीरे यह समझ आ गया था कि शाही सेना से विजय अब असंभव हो चुका था तथा मारवाड़ तथा मेवाड़ के राजपूत एक साथ मिलकर भी औरंगजेब का सामना नहीं कर सकते तो राठौड़ों ने युद्ध लड़ने का दूसरा रास्ता अख्तियार किया।

राणा व अन्य प्रमुख राठौड़ सरदारों ने औरंगजेब के पुत्र मुअज्जम को अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह के लिए उत्तेजित करने का निश्चय किया।[37] इन राजपूतों को यह अच्छी तरह पता था कि इस समय शाहजादा मुअज्जम और बादशाह के बीच रिश्ते अच्छे नहीं थे।[38] जिसका फायदा ये राठौड़ सरदार उठाना चाहते थे और उन्हें आशा थी कि वो बड़े ही आसानी से मुअज्जम को अपना निशाना बना लेंगे तथा अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए तैयार कर लेंगे। अपने इस उद्‌देश्य की पूर्ति के लिए दुर्गादास राठौड़ के साथ अन्य सरदारों ने भी देबारी के बाहर शाहजादा मुअज्जम से कई बार मुलाकात की और मुअज्जम से मैत्री संबंध स्थापित कर यह प्रार्थना की कि बादशाह से उनके अपराधों को क्षमा करवा दे। इस प्रार्थना के बहाने धीरे–धीरे वे अपनी वास्तविक मंशा को अंजाम दे रहे थे तथा अपने पिता के विरूद्ध धीरे–धीरे विद्रोह की प्रवृत्ति को जन्म दे रहे थे। इन राजपूतों को शायद अपनी वास्तविक स्थिति का ज्ञान नहीं था लेकिन मुअज्जम अपनी स्थिति बहुत ही अच्छी तरह से जानता था कि वह इतना भी शक्तिशाली नहीं है कि अपने पिता के विरुद्ध सफल हो सके। अतः मुअज्जम ने इनकी बातों पर कोई ध्यान ही नहीं दिया। इसका कारण यह भी हो सकता है कि उसकी माता नवाब बाई ने उसे यह आदेश दिया कि वह राजपूतों को अपने पास न आने दे और बादशाह से उनकी सन्धि कराने के लिए मध्यस्थता भी न करें।[39]

मुअज्जम की तरफ से असफल होने के बाद भी इन्होंने अपनी मंशा

का त्याग नहीं किया बल्कि अपनी मंशा को पूरा करने के लिए अब शाहजादा अकबर को अपना निशाना बनाया। इस समय अकबर तथा तहव्वर खाँ दोनों ही मारवाड़ में शाही सेना के साथ थे। तहव्वर खाँ को यह शाही आदेश था कि वह राजपूतों को अपनी तरफ मिलाने का प्रयास करें। इसी प्रयास में दुर्गादास तथा अन्य सरदारों के साथ तहव्वर खाँ का मिलना–जुलना धीरे–धीरे बढ़ रहा था। तहव्वर खाँ ने ही राठौड़ों सरदारों को अकबर से मिलाया था।

अकबर से मुलाकात के पश्चात् इन्हें अपनी मंशाओं को पूरा करने के लिए एक नया मोहरा मिल गया था तथा अकबर से कई मुलाकात के दौरान उन्होंने अकबर की महत्वाकांक्षाओं को जगाने का प्रयास किया। उन्होंने अकबर के समक्ष तर्क प्रस्तुत किया कि बादशाह राजपूतों से युद्ध करके मुगल साम्राज्य को कमजोर करने का कार्य कर रहा है, अच्छा तो यह होगा कि वह अपने पिता को बादशाहत से हटाकर स्वयं ही बादशाह बन जाए जिससे पूर्व के मुगल सम्राटों की नीति का पालन कर मुगल साम्राज्य को बचाया जा सके। अकबर को भड़काने के बाद इन्होंने उसे आश्वासन दिया कि हर तरह से उसकी सहायता करेंगे और वह निश्चित ही सफल होगा क्योंकि इस समय औरंगजेब की सेना मेवाड़ तथा मारवाड़ के उपद्रव को दबाने में व्यस्त है तथा सेना के साथ–साथ मुअज्जम तथा आजम भी शान्ति व्यवस्था बनाने में व्यस्त है। यही उपयुक्त समय हो सकता है जब अजमेर पहुँचकर बादशाह को परास्त कर अधिकार किया

जा सकता है। धीरे–धीरे अकबर राजपूतों की बातों से प्रभावित होने लगा और विद्रोह की सारी तैयारियाँ आरम्भ कर दी गईं।[40]

31 दिसम्बर को राव केसरी सिंह ने अकबर से देसूरी में मुलाकात की तथा इस मुलाकात में ही अन्तिम रूप से विद्रोह की सारी तैयारियाँ निश्चित की गई जिसके अनुसार अकबर ने अजीत सिंह को जोधपुर का राज्य देना स्वीकार किया था। इसके बदले में राजपूतों ने भी तय किया कि अकबर को सम्राट की भाँति सम्मान देंगे। अगले दिन अकबर को स्वतन्त्र सम्राट घोषित कर, 2 जनवरी 1681 को बादशाह के विरूद्ध ससैन्य प्रस्थान करने का निश्चय किया गया।[41]

ऐसा प्रतीत होता है कि अकबर कम आयु का अनुभवहीन शाहजादा था। अतः वह राजपूतों के बहकावे में आकर विद्रोही हो गया था।[42] यद्यपि कई और भी ऐसे कारण थे जिसने अकबर के विद्रोही प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया था। मारवाड़ में अभी तक उसे सफलता नहीं मिली थी जिससे वह बादशाह को सन्तुष्ट नहीं कर पा रहा था तथां बादशाह की सैन्य शक्ति भी सिर्फ मारवाड़ में ही संगठित न होने के कारण बादशाह के पास अजमेर में पर्याप्त सेना नहीं थी तथा सबसे महत्वपूर्ण कि इन कारणों के बीच अकबर को राजपूतों का सहयोग मिल जाने के कारण उसकी दबी हुई भावनाएँ जाग उठी और विद्रोह को अंजाम तक पहुँचाने की हिम्मत भी राजपूतों से ही मिली। यदि राजपूतों ने उसे उत्तेजित न किया होता तो

संभवतः अकबर कभी भी बादशाह के विरूद्ध खुला विद्रोह करने की हिम्मत नहीं जुटा पाता। लेकिन राठौड़ों को तो बस एक मौका चाहिए था बादशाह का ध्यान भंग करने के लिए। क्योंकि उन्हें शायद इस बात का अंदाजा था कि अकबर का विद्रोह दबाने के लिए बादशाह ससैन्य प्रयास करेगा तथा जैसे ही शाही सेना अकबर की तरफ रूख करेंगी, ये लोग आसानी से जोधपुर पर अधिकार कर सकेंगे।

अकबर ने 3 जनवरी को देसूरी में राजपूतों की सहायता से अपने को बादशाह घोषित कर दिया।[43] इस्लाम के सामान्य नियमानुसार उसके नाम का खुत्बा पढ़ा गया तथा सिक्के भी प्रचलित किए गए। अकबर के सिंहासनारोहण के बाद ही अजीतसिंह को सात हजार जात तथा सात हजार सवार का मनसब तथा 10,000 अशर्फियाँ इनाम में देकर जोधपुर का राजा स्वीकार किया गया था। अजीत सिंह के लिए संभवतः यह पहला अवसर रहा होगा जब उसे जोधपुर का राज स्वीकार किया गया। अजीत सिंह के साथ दुर्गादास राठौड़ तथा राठौड़ सोनग को भी 2000 का मनसब दिया गया।

सिंहासनारोहण के बाद अकबर अपनी तथा राजपूतों की सम्मिलित सेना के साथ अजमेर की ओर प्रस्थान किया। अकबर बहुत ही धीमी गति से अजमेर की ओर बढ़ रहा था और जैसे–जैसे उसकी सेना अजमेर के करीब आ रही थी वैसे--वैसे बादशाह का आतंक उन सैनिकों में बढ़ रहा

था क्योंकि सभी सैनिक संभावित युद्ध की वास्तविकता को अच्छी तरह से समझ रहे थे। सैनिकों के मन में भय था कि वे अकबर के साथ चल तो पड़े हैं लेकिन क्या अकबर अपने ही पिता के सामने सफल हो पाएगा? जबकि राजपूतों को भी अभी तक सफलता नहीं मिली थी। संभवतः इसी ख्याल से अजमेर पहुँचने से पहले ही बहुत से सैनिकों ने अकबर का साथ छोड़कर औरंगजेब की सेना में जा मिले थे। सैनिकों को छोड़कर जाने के बाद भी अकबर अभी भी राजपूतों के सहारे धीरे–धीरे बढ़ता हुआ कुड़की नामक गाँव तक पहुँच गया था।[44]

अकबर के विद्रोह के विषय में जानकर बादशाह को मारवाड़ में शाही स्थिति के लिए चिन्ता होना स्वाभाविक था क्योंकि इस समय शाही स्थिति संगठित नहीं थी तथा सेना भी एक जगह एकत्रित नहीं थी।

बादशाह ने भी एक तरफ युद्ध की तैयारी शुरू कर दी तो दूसरी तरफ सभी अधिकारियों को ससैन्य अजमेर पहुँचने का आदेश जारी किया तथा सुरक्षा के कड़े इन्तजाम किए। 10 जनवरी तथा 11 जनवरी को औरंगजेब ने समस्त सुरक्षात्मक प्रबन्धों का स्वयं निरीक्षण किया।[45] शाही आदेश पाकर सभी अधिकारी ससैन्य अजमेर पहुँचने लगे। साथ ही अकबर की सेना के बहुत से सैनिक औरंगजेब की सेना में शामिल होने लगे थे तब बादशाह ने अजमेर में ही रूके रहना उचित न समझा तथा 14 जनवरी को अजमेर से प्रस्थान कर देवराई की तरफ बढ़ रहा था। अब

बादशाह और अकबर की सेना में केवल तीन मील की दूरी थी और दूसरे दिन पिता व पुत्र में युद्ध होने वाला था।[46]

औरंगजेब इस बात से भी भली–भाँति परिचित था कि इस समय अकबर के दो प्रमुख सहयोगी तहव्वर खाँ तथा राजपूत ही थे। यदि अकबर के विद्रोह को खत्म करना था तो यह अति आवश्यक था कि पहले इन दो सहयोगियों से अकबर को अलग किया जाए। पहले औरंगजेब ने तहव्वर खाँ को निशाना बनाया। तहव्वर खाँ के श्वसुर इनायत खाँ को शाही आदेश प्राप्त हुआ कि उसे किसी भी प्रकार तहव्वर खाँ को अकबर से अलग करना था। इनायत खाँ ने अपने दामाद को पत्र लिखकर उसे अकबर का साथ छोड़ने के लिए तैयार कर लिया था तथा वह अकबर का शिविर छोड़कर बादशाह से मिलने का प्रयास करने लगा। इसी समय उसे सन्देह हुआ कि उसे कैद करने या मारने का प्रयास किया जा रहा है तभी भागने की कोशिश में वह मारा गया।[46]

औरंगजेब बिना युद्ध भूमि में उतरे ही युद्ध को जीतना बखूबी जानता था। अपने ही पुत्र के विद्रोह को समाप्त करने के लिए भी उसने कुछ ऐसी ही नीति का अनुसरण किया तथा एक पत्र तैयार करवाया, जिसका आशय था कि 'अकबर ने शाही आदेशानुसार राजपूतों को धोखा देकर उन्हें शाही सेना के करीब ले आया हैं। बस एक रात और राजपूतों के विश्वास को बनाए रखो तथा युद्ध में राजपूतों को हरावल में नियुक्त करना

जिससे, एक तरफ से औरंगजेब की सेना तथा दूसरी तरफ से अकबर की सेना द्वारा उन्हें बड़ी ही आसानी से घेरा जा सके।' औरंगजेब की योजनानुसार एक शाही दूत को यह पत्र लेकर राजपूतों के शिविर में भेजा गया और राजपूतों द्वारा उसे पकड़ लिए जाने पर यह पत्र भी राजपूतों के हाथ लग गया था। इस पत्र को प्राप्त करने के बाद तुरन्त ये सरदार वास्तविकता को जानने अकबर के पास गए लेकिन उसके सैनिकों ने यह कहकर मिलने से मना कर दिया कि वह अभी सो रहा है तभी उन्हें यह भी जानकारी हुई कि तहव्वरखाँ पहले ही यह शिविर छोड़कर जा चुका है। परिस्थिति वश इन सरदारों के मन में इस पत्र को लेकर शंका उत्पन्न होने लगा। जिस अकबर को उन्होंने अपने पिता के विरूद्ध विद्रोह करने के लिए उत्तेजित किया था सिर्फ एक पत्र के कारण जिसकी विश्वसनीयता पर उन्हें स्वयं भी पूर्ण विश्वास न था, अकबर से बिना स्थिति को साफ किए ही उसे शिविर में अकेला छोड़ सभी राजपूत सरदार वहाँ से भाग निकले। वो भी रात्रि समाप्त होने के तीन घंटे पूर्व ही भाग निकले।[47] राजपूत जिस तरह से अकबर को सोते हुए स्थिति में छोड़कर भागे संभवतः यह स्थिति राजपूती शान के खिलाफ रही होगी। राजपूतों की सेना ही अकबर की सेना में मुख्य रूप से थी लेकिन राजपूतों के भाग जाने के कारण बची हुयी सेना का भी मनोबल टूट गया और सेना में भगदड़ जैसी स्थिति हो गयी थी। नेतृत्वहीन सेना को यह समझ नहीं आ रहा था कि शिविर में ये भगदड़ जैसी स्थिति का जन्म किस कारण हुआ

है? प्रातःकाल जब अकबर को इन सारी परिस्थितियों से अवगत कराया गया तो वह बिल्कुल ही आश्चर्यचकित था क्योंकि जिन राठौड़ों ने उसे सम्राट बनाने का सपना दिखाया था और अन्त समय में अकबर को अकेला छोड़ धोखा देकर भाग निकले थे। राठौड़ों ने अकबर के लिए कोई रास्ता न छोड़ा था। वह भी अपने कुछ सामानों तथा पुत्र बुलन्द अख्तर और पुत्री सफियतुन्निसा के साथ शिविर छोड़कर भाग निकला। इस तरह से अकबर का विद्रोह पूर्णतः असफल हो गया था।

इसी बीच राजपूतों को पत्र के वास्तविकता का ज्ञान हो गया और उन्होंने वापस लौटकर शाहजादे अकबर को अपनी शरण में ले लिया।[48] लेकिन बादशाह ने अकबर को पकड़ने का आदेश देकर मुअज्जम को उसके पीछे भेजा। शाही सेना को अपने पीछे आता देख राठौड़ सरदार किसी भी स्थान पर ज्यादा समय व्यतीत नहीं करते थे। मुअज्जम ने इनसे सन्धि करने का प्रस्ताव भी रखा लेकिन ये नहीं माने और जालोर की ओर भाग गए।[49] यहाँ से वे सिरोही के शासक बैरीसाल के यहाँ गए लेकिन वहाँ भी उन्हें आश्रय न मिला।[50] उसके बाद राठौड़ों का यह दल मेवाड़ की तरफ बढ़ा लेकिन शाही सैनिकों द्वारा लगातार पीछा करने के कारण ये लोग यहाँ भी न रूक सके।[51] अब राजपूतों को राजपूताना का यह क्षेत्र जिसके लिए ये इतने दिनों से संघर्षरत है, छोटा लगने लगा था। इन राजपूतों के राजपूताना में ऐसी कोई भी जगह नहीं बची थी जहाँ ये अकबर को सुरक्षित रख सके। तब राठौड़ों द्वारा अकबर को दक्षिण की

ओर भेजने का निश्चय किया गया। फलतः दुर्गादास ने मारवाड़ की देख–रेख का समस्त भार राठौड़ सोनग को तथा अकबर के पुत्र व पुत्री की सुरक्षा का भार राठौड़ रघुनाथ पुरावत तथा जगन्नाथ रामचन्दोला को सौंपकर एवं उन्हें बाड़मेर प्रदेश में रखने का आदेश देकर दुर्गादास स्वयं अकबर को लेकर दक्षिण के लिए रवाना हो गया।[52] खानदेश व बगलाना पार करते हुए 1 जून को मरहठा राजा शंभाजी के आश्रय मे पहुँच गए जिसने इन्हें आदर व सम्मान के साथ शरण दी।[53]

कुछ दिनों बादशाह को यह सूचना मिल गयी कि दुर्गादास तथा अकबर ने इस समय दक्षिण में शरण लिया है। अब औरंगजेब ने दक्षिण की ओर जाने का मन बनाया तथा आजम को मेवाड़ से सन्धि कराने की जिम्मेदारी सौंपी गई। क्योंकि राणा की भी हिम्मत अब तक टूट चुकी थी। अतः उसने भी सन्धि प्रस्ताव मान लिया। इस सन्धि के अनुसार राणा ने जजिया देना स्वीकार कर लिया था और इसकी वसूली के लिए पुरमांडल एवं बदनोर का क्षेत्र बादशाह को दे दिया। दक्षिण ओर जाने से पहले मारवाड़ के संदर्भ में केवल यह तय किया गया कि अजीतसिंह के बालिग हो जाने पर मारवाड़ का राज्य उसे दे दिया जाएगा।[54] अन्ततः इतने समय के संघर्ष के बाद भी मारवाड़ राज्य की समस्या का स्थायी हल न निकल सका। बादशाह द्वारा मारवाड़ के प्रबन्ध की जिम्मेदारी मुअज्जम को सौंपी गई तथा 8 सितम्बर को बादशाह ने दक्षिण की ओर प्रस्थान किया।[55]

जसवन्त सिंह की मृत्यु के बाद मारवाड़ की आन्तरिक स्थिति को संभालने तथा व्यवस्थित करने की क्षमता किसी में भी न रह गयी थी। इस समय सभी अपने व्यक्तिगत स्वार्थ की आड़ में मारवाड़ में किसी भी तरह का नुकसान करने के लिए तैयार थे लेकिन किसी भी तरह से सुव्यवस्था स्थापित करने के लिए तैयार नहीं थे। मारवाड़ के केन्द्र जोधपुर में एक स्थायी तथा सुदृढ़ प्रशासनिक व्यवस्था न होने के कारण मारवाड़ के अन्य नगरों में भी व्यवस्था धीरे-धीरे ध्वस्त हो रही थी। स्थिति देख ऐसा प्रतीत हो रहा था कि इन राठौड़ों ने मन बना लिया था कि यदि राज्य अजीत सिंह को नहीं दिया गया तो पूरा राज्य ही बर्बाद कर देंगे। इन सरदारों के द्वारा किए गए कार्यों से सबसे ज्यादा नुकसान वहाँ के निवासियों को ही हो रहा था तथा ये लोग अपने ही लोगों को नुकसान पहुँचा रहे थे। इन्होंने मारवाड़ पर शाही अधिकार करने का विरोध किया, इन्होंने अपने ही खानदान के इन्द्रसिंह को अधिकार दिए जाने का विरोध तथा शाही अधिकारियों तथा शाही आज्ञा की अवहेलना किया, मारवाड़ की स्थिति अब तो ऐसी हो गयी थी कि जैसे इन राठौड़ सरदारों की इच्छानुसार मारवाड़ में शासक नियुक्त होगा नहीं तो कोई नहीं होगा। मेवाड़ और मारवाड़ में सन्धि हो जाने के बाद भी इन राठौड़ सरदारों को सन्तोष न हुआ और पूर्ववत् विद्रोह होते रहें। ये राठौड़ सरदार जहाँ और जब भी अवसर पाते थे आक्रमण करके लूटपाट किया करते थे[56] तथा विभिन्न स्थानों पर शाही अधिकारियों से भी छापामार युद्ध प्रणाली के तहत टक्कर लेते रहते थे

जिसमें जोधपुर, सोजत, जैतारण, मेड़ता, डीडवाना, पोकरण, फलोदी, पाली, सिवाना तथा जालोर प्रमुख थे।

राठौड़ों के संघर्ष के कारण मारवाड़ के लोगों के लिए रोजमर्रा की जिंदगी जीना भी कठिन हो रहा था। राज्य की खेती बर्बाद हो रही थी तथा मार्गों के असुरक्षित हो जाने के कारण व्यापार को भी हानि पहुँच रहा था। यत्र–तत्र आक्रमण कर छुटपुट घटनाओं को अन्जाम देकर भाग जाते थे तथा शाही अधिकारियों को लूटकर उनसे पेशकश भी वसूल करते थे। आम जनता के साथ–साथ शाही अधिकारियों को भी मार्गों की असुरक्षा से काफी कठिनाई हो रही थी। सन् 1682 ई0 में जब कासिम खाँ शाही आज्ञानुसार दक्षिण की ओर जा रहा था तो राठौड़ों ने उस पर आक्रमण करके शाही निशान व अन्य वस्तुएँ छीन ली थी।[57] लेकिन ऐसा भी नहीं था कि राठौड़ों के इस संघर्ष से सिर्फ जनसामान्य या शाही अधिकारियों को ही दिक्कतों का सामना करना पड़ रहा था बल्कि स्वयं राठौड़ सरदारों की भी स्थिति दिन–प्रतिदिन बिगड़ती जा रही थी। मारवाड़ राज्य की खेती नष्ट हो जाने के कारण इन्हें भी खाद्यान्न की कमी का सामना करना पड़ा तथा इस कमी के साथ अब मारवाड़ के बाहर से इन्हें सहयोग नहीं मिल पा रहा था जिसके कारण बाहर से भी इन्हें रसद मिलने की उम्मीद नहीं के बराबर हो गयी थी। यद्यपि मारवाड़ की जनता मन से राठौड़ों के साथ रही होगी लेकिन अब जनता के पास भी इन्हें देने के लिए कुछ भी नहीं बचा था। अब सिर्फ पहाड़ियों के पीछे छिपकर आक्रमण कर लूटमार

करना ही इनके जीवन यापन का तरीका बन चुका था। इस कठिनाई भरे जीवन के कारण अब इनकी संख्या भी धीरे–धीरे घट रही थी। राठौड़ों का यह संघर्ष इनके लिए निर्णायक न बन सका।

राठौड़ों का सौभाग्य था कि जनता का सहयोग उनके साथ था तथा बादशाह के लिए भी दक्षिण की समस्याएँ दिन–प्रतिदिन गम्भीर होती गई। फलतः मारवाड़ पर शाही दबाव घटता रहा और शाही सेनाएँ तथा योग्य सेनापति भी इधर भेजना संभव न हो सका। राठौड़ों ने औरंगजेब की इस विवशता का पूरा–पूरा लाभ उठाया।[58]

जिसके लिए राठौड़ सरदार लगातार शाही अधिकारियों से संघर्ष कर रहे थे वह स्वयं ही जोधपुर से बाहर घुमन्तु जीवन जीने पर विवश था। यद्यपि दिल्ली से भागने के बाद सरदारों ने अजीतसिंह को जोधपुर ले जाने का प्रयास किया, लेकिन जल्द ही उन्हें यह एहसास हो गया कि जोधपुर में रहते हुए अजीतसिंह की सुरक्षा संभव न थी। अतः दुर्गादास ने अजीतसिंह की सुरक्षा की जिम्मेदारी खींची मुकुन्ददास को सौंपा तथा बलून्दा पहुँचकर भेष बदलकर वह अजीतसिंह की सुरक्षा में तैनात था। वहाँ पर खतरा मंडराने के पश्चात् वह मेवाड़ गया जहाँ राणा राज सिंह ने उनका स्वागत किया और अजीतसिंह को बारह गाँव और कैलवा का पट्टा दिया।[59] लेकिन अजीतसिंह ज्यादा दिनों तक मेवाड़ में भी न रूक सका। जब बादशाह ने मेवाड़ की तरफ प्रस्थान किया तो राजपरिवार के

साथ अजीतसिंह को भी नैणवारा गाँव भेज दिया गया। वहाँ से मुकुन्ददास सिरोही राज्य लेकर गया जहाँ पर भेष बदलकर लगातार अजीतसिंह की सुरक्षा में तैनात था। आबू की इन पहाड़ियों में ही अजीतसिंह के जीवन के अगले 6 वर्ष व्यतीत हुए।[60]

इतने लम्बे संघर्ष के बाद जहाँ एक ओर शाही सैनिकों का उत्साह कम हो रहा था तो दूसरी ओर राठौड़ सैनिकों का भी वेग अब धीमा पड़ने लगा था। जिसके लिए ये राठौड़ सरदार लड़ रहे थे, संभवतः अभी तक इन्होंने अजीतसिंह को ठीक से देखा भी न था। अतः राठौड़ सैनिकों के उत्साहवर्धन के लिए यह आवश्यक हो गया था कि इन्हें इनके भावी शासक के दर्शन करा दिया जाए। नहीं तो यह भी संभव हो सकता था कि जल्द ही इनका विरोध भी समाप्त हो जाता। अन्ततः सरदारों की इच्छा का मान रखते हुए सिरोही राज्य में ही स्थित पालड़ी नामक गाँव में 18 मार्च 1687 ई0 को उदयसिंह ने अजीतसिंह का दर्शन किया। उसके बाद विधिवत् एक दरबार का आयोजन किया गया जहाँ सभी सरदारों ने अपनी–अपनी स्थिति के अनुसार राजा को निछावर भेंट किया।[61] इसके बाद अजीतसिंह को पूरे मारवाड़ राज्य का भ्रमण कराया गया।

उधर दुर्गादास अकबर की सुरक्षा के नाम पर अभी तक दक्षिण में ही निवास कर रहा था। लेकिन पत्रों के माध्यम से मारवाड़ में चल रहे संघर्ष एवं मारवाड़ की राजनीति की पूरी जानकारी दुर्गादास को मिल रही

थी क्योंकि उस समय अजीतसिंह और खीचीं मुकुन्ददास का नेतृत्व दुर्गादास के हाथों में ही था तथा उसी के द्वारा अजीतसिंह के दर्शन का प्रकरण भी पता चला था। साथ ही मुकुन्ददास ने दुर्गादास को दक्षिण से यथाशीघ्र वापस आने के लिए भी लिखा था।[62] अतः दुर्गादास ने टीटवा नामक गाँव से 26 जनवरी 1687 ई0 को मारवाड़ के लिए प्रस्थान किया।[63] मार्ग में लौटते समय दुर्गादास ने बहुत लूट—पाट किया और कई स्थानों से धन वसूल करते हुए मारवाड़ राज्य पहुँचा। मारवाड़ पहुँचते ही दुर्गादास को सूचना मिली कि अजीतसिंह को राठौड़ों के समक्ष प्रकट किया जा चुका है तो उसे बहुत ही ठेस पहुँची। क्योंकि अजीतसिंह की सुरक्षा की जिम्मेदारी दुर्गादास राठौड़ की थी तथा उसके आज्ञा के बिना ही उसे प्रकट किया गया था। अपने आत्मसम्मान पर ठेस लगने के कारण वह उस समय अजीतसिंह से मिलने नहीं गया था। लेकिन जब कुछ दिनों पश्चात् दुर्गादास और अजीतसिंह की मुलाकात हुई तो दुर्गादास ने अजीतसिंह को परामर्श दिया कि चूँकि बादशाह औरंगजेब से अभी तक मैत्री संबंध नहीं है। अतः उसे इस प्रकार स्वतंत्र नहीं घुमना चाहिए। अजीतसिंह ने उसकी बात मान ली और गूघरोट की पहाड़ों में चला गया।[64]

1695 ई0 तक मारवाड़ में लगातार अशान्ति का दौर जारी था। सूबेदार शुजात खाँ को प्रतिवर्ष स्थिति का जायजा लेने तथा शान्ति स्थापित करने के उद्देश्य से मारवाड़ जाना पड़ता था। पिछले वर्षों की

अपेक्षा यद्यपि मारवाड़ राज्य में उपद्रव कम हो गए थे, लेकिन अभी भी पूर्णतः शान्ति स्थापित नहीं किया जा सका था।

इस समय औरंगजेब को एक और चिन्ता परेशान कर रही थी। यद्यपि अकबर का विद्रोह तो खत्म कर दिया गया था लेकिन अकबर के जाने के बाद भी उसके पुत्र बुलन्दअख्तर तथा पुत्री सफीयतुन्निसा अभी भी दुर्गादास के संरक्षण में थे। साथ ही दक्षिण की गंभीर स्थिति के कारण बादशाह मारवाड़ की ओर विशेष ध्यान नहीं दे पा रहा था और न अधिक सेना इस ओर भेजकर वह राठौड़ों को दबाने में ही सफल हो पा रहा था।[65] संभवतः इन सारी परिस्थिति ने औरंगजेब को मजबूर किया कि वह राठौड़ों से सुलह करके अपने पौत्र–पौत्री को वापस ले सकें।

औरंगजेब ने इस कार्य के लिए शुजातखाँ को नियुक्त किया तथा जोधपुर परगने के अमीन ईश्वरदास नागर की मध्यस्थता के कारण यह कार्य सम्पन्न किया जा सका क्योंकि ईश्वरदास नागर का राठौड़ों से अच्छा संबंध था। इस सेवा के लिए शुजातखाँ ने ईश्वरदास को खिलअत, घोड़ा व तीन हजार रूपया नगद इनाम दिया। इसके बाद अकबर की पुत्री को बादशाह के पास भेज दिया गया और स्वयं उसके कहने पर ईश्वरदास नागर को भी साथ जाने का आदेश मिला।[66]

20 मई, 1698 ई0 को दुर्गादास इस्लाम पुरी में बादशाह से मिला। बादशाह ने दुर्गादास को तीन हजार जात, ढाई हजार सवार का मनसब

और खिलअत जड़ाऊ जमधर, पदक और मोतियों की माला इनाम में दिए गए।[67] उसके मनसब के अनुरूप जागीर में जोधपुर राज्य के मेड़ता, जैतारण व सिवाना के परगने तथा गुजरात सूबे के घांघुका, रांणपुरा इस्लाम नगर के परगने दिए गए। इसी समय अजीतसिंह को डेढ़ हजार जात तथा पाँच सौ सवार का मनसब के साथ जालोर व संचोर की जागीरदारी व फौजदारी दी गई।[68]

इतने वर्षों के संघर्ष के दौरान मारवाड़ की अन्तःपरिस्थितियाँ ही थी जो लगातार औरंगजेब के फैसलों को प्रभावित कर रही थी। मारवाड़ के प्रति लिए गए फैसले पूर्णतः परिस्थिति जन्य फैसले थे न कि पहले से निश्चित किसी नीति का हिस्सा प्रतीत होते है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. इन्द्रसिंह, जसवन्त सिंह के बड़े भाई अमर सिंह का पोता तथा रायसिंह का पुत्र था
2. मुस्ताद खाँ, पृ0 109; ख्यात, भाग 2, पृ0 25; पंचोली, पृ0 174 अ; ओझा, भाग 4, खण्ड 2, पृ0 481–2; सरकार, भाग 3, पृ0 328; आसोपा, पृ0 219
3. जयपुर, अखबारात, औरंगजेब, वर्ष 24, भाग 2, पृ0 54–5
4. मुस्ताद खाँ, पृ0 109, वीर, भाग 2, पृ0 828–9; ओझा, भाग 4, खण्ड 2, पृ0 482
5. अजितोदय, सर्ग 6, श्लोक 69–79; खाफी खाँ, भाग 2, पृ0 259; वीर, भाग 2, पृ0 828; ख्यात, भाग 2, पृ0 44; रेऊ, भाग 1, पृ0 253
6. अजितोदय, सर्ग 6, श्लोक 81; मुस्ताद खाँ, पृ0 109; रेऊ, भाग 1, पृ0 254
7. अजितोदय, सर्ग 6, श्लोक 82–83; ख्यात, भाग 2, पृ0 44; रेऊ, भाग 1, पृ0 254
8. फुतूहात, पृ0 75 अ
9. मुस्ताद खाँ, पृ0 109–10; फुतूहात, 75 ब; खाफी खाँ, भाग 2, पृ0 260; वीर, भाग 2, पृ0 829; ख्यात, भाग 2, पृ0 45; अजितोदय सर्ग 8, श्लोक 3; सरकार, भाग 3, पृ0 332; फारूकी, पृ0 220 व 224; रेऊ, भाग 1, पृ0 255–57; ओझा, भाग 4, खण्ड–2, पृ0 484–85
10. अजितोदय, सर्ग 7, श्लोक, 16–7; ख्यात, भाग 2, पृ0 45; मूंदियाड़, पृ0 176; अजित विलास, पृ0 206 ब; राजरूपक, पृ0 40; दस्तूर, पृ0 143; भूल, पृ0 194; अजीत सिंह, पृ0 50
11. फुतूहात, पृ0 76 अ; वाकया, पृ0 319; मनूची, भाग 3, पृ0 233; सरकार, भाग 3, पृ0 332–4
12. ख्यात, भाग 2, पृ0 51; अजीत सिंह, पृ0 51

13. मुस्ताद खाँ, पृ0 110; ख्यात, भाग 2, पृ0 45–46; मूंदियाड़, पृ0 176 व 178; राजरूपक, पृ0 30; अजित चरित्र, सर्ग 8, श्लोक 10–11; सूरज प्रकाश, पृ0 28
14. वाकया, पृ0 247 व 276
15. वाकया, पृ0 244–45; मुस्ताद खाँ, पृ0 110; ख्यात, भाग 2, पृ0 56; रेऊ, भाग 1, पृ0 259
16. वाकया, पृ0 332, 318, 324
17. वही, पृ0 244, 245–6
18. वही, पृ0 244, 256 व 332
19. वही, पृ0 263, 278
20. ख्यात, भाग 2, पृ0 52; अजितोदय, सर्ग 8, श्लोक 30
21. ख्यात, भाग 2, पृ0 53–4 व 55–56; आसोपा, पृ0 225
22. अजितोदय, सर्ग 8, श्लोक, 31–32; वाकया, पृ0 286 व 304; रेऊ, भाग 1, पृ0 259
23. ख्यात, भाग 2, पृ0 52–53; अजितोदय, सर्ग 8, श्लोक 1–34, बांकीदास, पृ0 33; मूंदियाड़, पृ0 178; वीर, भाग 2, पृ0 830–31; दानेश्वर, पृ0 193; अजित विलास, पृ0 210 ब; दस्तूर, पृ0 137; राठौड़ा, पृ0 10; वाकया, पृ0 211, 238, 283–287; रेऊ, भाग 1, पृ0 259
24. मुस्ताद खाँ, पृ0 110; मआसिर, पृ0 709–10; फुतूहात, पृ0 76 ब; उमराए, पृ0 167–68; सरकार, भाग 3, पृ0 335; रेऊ, भाग 1, पृ0 259; ओझा, भाग 4, खण्ड 2, पृ0 487
25. अजीत सिंह, पृ0 61

26. वाकया, पृ0 296, 320, 330–31, 347, 351; ख्यात भाग 2, पृ0 54–55; मूंदियाड़, पृ0 178–79; फौजचन्द, पृ0 9–10; बांकीदास, पृ0 73; कविराजा, पृ0 707–08; अजित विलास, पृ0 211 अ; आसोपा, पृ0 225–6
27. ख्यात, भाग 2, पृ0 55; मूंदियाड़, पृ0 179; बांकीदास, पृ0 73; अजित विलास, पृ0 211 अ; वाकया, पृ0 357–58; मूल, पृ0 195
28. ख्यात, भाग 2, पृ0 56; मूंदियाड़, पृ0 179; बांकीदास, पृ0 74; दानेश्वर, पृ0 195; अजित विलास, पृ0 211 ब; राठौड़, पृ0 6; वाकया, पृ0 362; मूल, 196
29. ख्यात, भाग 2, पृ0 57–8; अजितोदय, सर्ग 9, श्लोक, पृ0 20–25; मूंदियाड़, पृ0 180; बांकीदास, पृ0 73; अजित विलास, 212 अ; राठौड़ा, पृ0 10; फौजचन्द, पृ0 10; आसोपा, पृ0 228
30. राजविलास, पृ0 120–125 व 201–2; ख्यात, भाग 2, पृ0 56; वीर, भाग 2, पृ0 466; टॉड, भाग 1, पृ0 302; सरकार, भाग 3, पृ0 337–39; मेवाड़, पृ0 168–69; ओझा, भाग 4, खण्ड 2, पृ0 488–9
31. फुतूहात, पृ0 77 अ, 78 अ, 79 अ; मुस्ताद खाँ, पृ0 112; खफी खां, पृ0 262; वीर, भाग 2, पृ0 463; मनूची, भाग 3, पृ0 236; टाड, भाग 1, पृ0 304; मेवाड़, पृ0 169–70
32. मुस्ताद खाँ, पृ0 112; वीर, भाग 2, पृ0 463–64 व 703; सरकार, भाग 3, पृ0 339, 347; ओझा, भाग 4, खण्ड 2, पृ0 491–92; रेऊ, भाग 1, पृ0 232 व 264; मेवाड़, पृ0 169 व 171
33. जयपुर, अखबारात, औरंगजेब, वर्ष 23, भाग 1, पृ0 215; भाग 3, पृ0 220–21 व 351–52; भाग 4, 1, 6 व 18, वर्ष 24, भाग 1, पृ0 179–80; सरकार, भाग 3, पृ0 336; मेवाड़, पृ0 168; रेऊ, भाग 1, पृ0 261

34. वीर, भाग 2, पृ0 464–5; खाफी खाँ, भाग 2, पृ0 262; फुतूहात, पृ0 78 ब, 79 अ; मनूची, भाग 2, पृ0 240; टाड, भाग 1,. पृ0 304; सरकार, भाग 3, पृ0 339; मेवाड़, पृ0 170; ओझा, भाग 4, खण्ड 2, पृ0 490–91; रेऊ, भाग 1, पृ0 262
35. मुस्ताद खाँ, पृ0 114–18; फुतूहात, पृ0 79 अ व 80 अ; वीर, भाग 2, पृ0 464–67; ख्यात, भाग 3, पृ0 56–57; बांकीदास, पृ0 73; सरकार, भाग 3, पृ0 339–41 व 342; मेवाड़, पृ0 171–72; रेऊ, भाग 1, पृ0 262–63; ओझा, भाग 2, पृ0 538
36. आदाब, पृ0 639, 647, 651, 653, 659; मुस्ताद खाँ, पृ0 119; मआसिर, पृ0 465; वीर, भाग 2, पृ0 438; सरकार, भाग 3, पृ0 346; मेवाड़, पृ0 174; रेऊ, भाग 1, पृ0 264
37. आदाब, पत्र 657, 660, 674, 675, 700 व 730; मुस्ताद खाँ, पृ0 121; रेऊ, भाग 1, पृ0 266
38. बहादुरशाह, पृ0 22–41
39. वीर, भाग 2, पृ0 646, खाफी खाँ, भाग 2, पृ0 264; मआसिर, पृ0 466; मेवाड़, पृ0 176; रेऊ, भाग 1, पृ0 266
40. आदाब, पत्र 756, फुतूहात, पृ0 81 अ; मनूची, भाग 2, पृ0 243; सरकार, भाग 3, पृ0 355; मेवाड़, पृ0 176; ओझा, भाग.4, खण्ड 2, पृ0 493
41. सरकार, भाग 3, पृ0 355–56; मेवाड़, पृ0 177; ओझा, भाग 4, खण्ड 2, पृ0 493; रेऊ, भाग 1, पृ0 266
42. फुतूहात, पृ0 81 अ; मआसिर, पृ0 466; खाफी खाँ, भाग 2, पृ0 265; दिलकुशा, पृ0 170
43. ख्यात, भाग 2, पृ0 62; मूंदियाड़, पृ0 182; रेऊ, भाग 1, पृ0 267

44. मुस्ताद खाँ, पृ0 123–24; वीर, भाग 2, पृ0 648; सरकार, भाग 3, पृ0 360; रेऊ, भाग 1, पृ0 267
45. फुतूहात, पृ0 81 अ; मुस्ताद खाँ, पृ0 122–23; मनूची, भाग 2, पृ0 244; वीर, भाग 2, पृ0 647; अजित विलास, पृ0 213 अ; राठौड़ा, पृ0 15; सरकार, भाग 3, पृ0 359 व 360; रेऊ, भाग 1, पृ0 267; मेवाड़, पृ0 177
46. खाफी खाँ, भाग 2, पृ0 268; फुतूहात, पृ0 82 अ ब; सरकार, भाग 3, पृ0 361–63; रेऊ, भाग 1, पृ0 268; ओझा, भाग 4, खण्ड 2, पृ0 494–95; मेवाड़, पृ0 178
47. मनूची, भाग 2, पृ0 247; सरकार, भाग 3, पृ0 363–64; ओझा, भाग 4, खण्ड 2, पृ0 495; मेवाड़, पृ0 178
48. फुतूहात, पृ0 83 अ; खाफी खाँ, भाग 2, पृ0 275; मनूची, भाग 2, पृ0 364–65; ख्यात, भाग 2, पृ0 62; अजितोदय, सर्ग 10, श्लोक 15; वीर, भाग 2, पृ0 649; सरकार, भाग 3, पृ0 364–66; रेऊ, भाग 1, पृ0 248–49; ओझा, भाग 4, खण्ड 2, पृ0 497; मेवाड़, पृ0 178–9
49. मनूची, भाग 2, पृ0 209–210; आसोपा, पृ0 235–36; बहादुर शाह, पृ0 44
50. गहलोत (राजपूताने), भाग 2, पृ0 56
51. ख्यात, भाग 2, पृ0 65; अजितोदय, सर्ग 10, श्लोक 260; सरकार, भाग 3, पृ0 367; ओझा, भाग 4, खण्ड 3, पृ0 497–8
52. फुतूहात, पृ0 83 ब; ख्यात, भाग 2, पृ0 65; सरकार, भाग 5, पृ0 228
53. खाफी खाँ, भाग 2, पृ0 275–77; फुतूहात, पृ0 83 ब; वीर, भाग 2, पृ0 653; ख्यात, भाग 2, पृ0 65; अजित विलास, पृ0 214 ब; दानेश्वर, पृ0 200–201; राठौड़ा, पृ0 17; सरकार, भाग 3, पृ0 367; ओझा, भाग 4, खण्ड 2, पृ0 499; रेऊ, भाग 1, पृ0 271; मेवाड़, पृ0 179; अजीत सिंह, पृ0 92

54. मुस्ताद खाँ, पृ0 128; फुतूहात, पृ0 80 ब; मनूची, भाग 2, पृ0 151; सरकार, भाग 3, पृ0 370 व भाग 5, पृ0 217–18; रेऊ, भाग 1, पृ0 272; मेवाड़, पृ0 180
55. मुस्ताद खाँ, पृ0 131; वीर, भाग 2, पृ0 831; ख्यात, भाग 2, पृ0 68; रेऊ, भाग 1, पृ0 273
56. सरकार, भाग 5, पृ0 223; अजीत सिंह, पृ0 95
57. ख्यात, भाग 2, पृ0 69; मूंदियाड़, पृ0 187, फौजचन्द, पृ0 30; दानेश्वर, पृ0 202
58. अजीत सिंह, पृ0 105
59. वीर, भाग 2, पृ0 463 व 860; ओझा, भाग 4, खण्ड 2, पृ0 488–89; मेवाड़, पृ0 169
60. ख्यात, भाग 2, पृ0 44–45; अजितोदय, सर्ग 6, श्लोक 6; वीर, भाग 2, पृ0 662–63 व 830; मूंदियाड़, पृ0 180–181, 183, 193
61. ख्यात, भाग 2, पृ0 78–79; मूंदियाड़, पृ0 193–95; बांकीदास, पृ0 36; वीर, भाग 2, पृ0 832; अजितोदय, सर्ग 13, श्लोक 14–20; अजित विलास, पृ0 220 व 221; राठौड़ा, पृ0 27–29; रेऊ, भाग 1, पृ0 278; ओझा, भाग 4, खण्ड 2, पृ0 505–506
62. अजितोदय सर्ग 13, श्लोक 20; रेऊ, भाग 1, पृ0 278; ओझा, भाग 4, खण्ड 2, पृ0 278
63. ख्यात, भाग 2, पृ0 78
64. ख्यात, भाग 2, पृ0 81; बांकीदास, पृ0 36; राठौड़ा, पृ0 30–31; रेऊ, भाग 1, पृ0 279
65. सरकार, भाग 5, पृ0 227

66. फुतूहात, पृ0 166 ब, 167 अ; सरकार, भाग 5, पृ0 228; ओझा, भाग 4, खण्ड 2, पृ0 515
67. मुस्ताद खाँ, पृ0 240; फुतूहात, पृ0 168 ब
68. ख्यात, भाग 2, पृ0 99; मूंदियाड़, पृ0 206; दानेश्वर, पृ0 214; मीरात, पृ0 302; मूल, पृ0 212; अजीत सिंह, पृ0 127



सन्दर्भ ग्रंथ–सूची

संदर्भ ग्रन्थ

1. फारसी ग्रंथ (मूल अनूदित, प्रकाशित)

(1) अकबर नामा (प्रथम–द्वितीय) – अबुल फजल, हेनरी बेवरिज, एशियाटिक सोसायटी, बंगाल, कलकत्ता, 1912

(2) अकबर नामा (तृतीय) – अबुल फजल, हेनरी बेवरिज, एशियाटिक सोसायटी, बंगाल, कलकत्ता, 1913

(3) अम्ल–ए–साहिल (द्वितीय खण्ड) – मुहम्मद साहिल कंबू, मूल फारसी, एशियाटिक सोसाइटी बंगाल, कलकत्ता, 1927

(4) अम्ल–ए–साहिल (तृतीय खण्ड) – मुहम्मद साहिल कंबू, मूल, फारसी, एशियाटिक सोसाइटी बंगाल, कलकत्ता, 1939।

(5) अहकामे–आलमगीरी – जदुनाथ सरकार द्वारा (अनेसडोट्स आव् औरंगजेब) में अनूदित , एम0सी0 सरकार, कलकत्ता, 1919

(6) अखबारात–दरबार–ए मुअल्ला खंडन संग्रह, खण्ड–1 – मूल, श्री रघुवीर लाइब्रेरी, सीतामऊ।

(7) अखबारात, जयपुर संग्रह सन् जुलूस 9 एवं 10 – मूल फारसी, सीतामऊ प्रतिलिपि।

(8) आईन–ए–अकबरी (प्रथम खण्ड) – अबुलफजल, ब्लाकैमन एशियाटिक सोसाइटी बंगाल, कलकत्ता, 1873।

(9) आईन–ए–अकबरी (द्वितीय खण्ड) – अबुलफजल, ब्लाकैमन एशियाटिक सोसाइटी बंगाल, कलकत्ता, 1949।

(10) आलमगीर नामा – मुहम्मदकाजिम मूल, एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल, कलकत्ता, 1866।

(11) आलमगीर नामा (रोटोग्राम नं0–37) – हातिम खाँ, मूल इतिहास विभाग, शोध पुस्तकालय मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़।

(12) खुलासुतूत – तवारीख – सुजानराय भंडारी, मूल,जी एण्ड सन्स, दिल्ली 1918।

(13) खुलासुतूत – तवारीख – सुजानराय, सर जदुनाथ सरकार 'इण्डिया आव् औरंगजेब' में 1901।

(14) चहार गुलशन – चन्द्रमान कायस्थ, सर जदुनाथ सरकार 'इण्डिया आव् औरंगजेब– में 1901।

(15) जयपुर रेकर्डज् (खण्ड–1) सरकार–संग्रह – मूल, सीतामऊ।

(16) जवाबिते आलमगीरी (रोटोग्राफ नं0–62) – मूल, इतिहास विभाग, अलीगढ़।

(17) तबकाते–अकबरी (खण्ड द्वितीय) – निजामुद्दीन अहमद्, बी0दे0, एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल, कलकत्ता, 1936।

(18) तज़किरात–उस–सलातीन (खण्ड–2) – मु0 हादी कामवार खाँ, मूल, आजाद लाइब्रेरी अलीगढ़।

(19) तज़ कि रात–उल उमरा – केवलराम, मूल, आजाद लाइब्रेरी, अलीगढ़।

(20) तारीखे–फिरिश्ता (खण्ड–2) – फिरिश्ता, ब्रिग्ज, कैम्ब्रे एण्ड को0, कलकत्ता, 1909।

(21) तारीखे शाहजहानी व आलमगीरी (रोटोग्राफ नं0–45) – सादिक खाँ एवं अबुल फजल मामूरी, मूल, इतिहास विभाग, अलीगढ़।

(22) तारीखे सोरठ – रणछोड़ जी अमर जी, अनूदित, थैकर एण्ड को0, बम्बई, 1882।

(23) तारीखे शाह–शुजाई – मीर मुहम्मद मासूम, माइको फिल्म, यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी, इलाहाबाद।

(24) तुजुके–जहाँगीरी (खंड–1) – जहाँगीर, रोजर्स एण्ड बेवरीज, रायल एशियाटिक सोसाइटी, लंदन 1907।

(25) तुजुके–जहाँगीर (खंड–2) – जहाँगीर, रोजर्स एण्ड बेवरीज, रायल एशियाटिक सोसाइटी, लंदन 1914।

(26) दस्तूरूल अमल–आलमगीरी (रोटोग्राफ नं0–53) – मूल, इतिहास विभाग, अलीगढ़।

(27) नुसखये दिलकुशा (रोटोग्राफ नं0–43) – भीमसेन, मूल, इतिहास, विभाग, अलीगढ़।

(28) पादशाहनामा (खण्ड–1 एवं 2) – अब्दुल हंमीद लाहौरी, मूल, एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल, कलकत्ता, 1892 (द्वितीय)।

(29) फैयाजुल कवानीन (खण्ड 1 एवं 2) – फैयाज, मूल, सीतामऊ।

(30) फुतूहात–आलमगीरी – ईश्वरदास नगर, मूल इतिहास विभाग, अलीगढ़।

(31) बहारिस्तान–ए–गै़वी (खण्ड 1 एवं 2) – मिर्जानाथन, म0आई0 बोराह, आसाम सरकार प्रकाशन, गौहाटी, 1936।

(32) बाबरनामा (खण्ड–2) – बाबर, बेवरिज, लू जाक खण्ड को0, लंडन, 1992।

(33) बादशाहनामा (खंड–1 एवं 2) (ट्रांस्क्रिप्ट नं0–18, 13) – मुहम्मद वारिस, मूल, इतिहास विभाग, अलीगढ़।

(34) मआसिरूल–उमरा (खण्ड–2) – शाहनबाज खाँ, वेणी प्रसाद और बेवरिज, एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल, कलकत्ता, 1911–41।

(35) मआसिरूल–उमरा (खण्ड–2) – शाहनबाज खाँ, वेणी प्रसाद और बेवरिज, एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल, कलकत्ता, 1952।

(36) मआसिरे–आलमगीरी – साकी मुस्तैद खाँ, जदुनाथ सरकार, एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल, कलकत्ता, 1947।

(37) मिरात–ए–अहमदी (खण्ड–1) – अली मुहम्मद खाँ, मूल ओरियंटल इंस्टीट्यूट, बड़ौदा, 1928।

(38) मिरातुल अमल – बख्तावर खाँ, मूल, आजाद लाइब्रेरी, अलीगढ़।

(39) मुन्तखबुल–लुबाब (खण्ड–2) – मुहम्मद हाशिम खाफी खाँ, मूल, एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल, कलकत्ता, 1874।

(40) मुन्तखब–उत्त–तवारीख (खण्ड–2) – अलकादिर बँदायूनी, रैकिंग, एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल, कलकत्ता, 1998।

(41) रूक्कात–ए–आलमगीरी – बिलिमोरिया, तारापोर वाला, बम्बई।

(42) वाकियात–ए–आलमगीरी – आकिल खाँ राजी, मौलवी जफर हसन, इतिहास विभाग, अलीगढ़, 1946।

(43) हफ्त–अंजूमन – उदयराज, मूल, सीतामऊ।

(44) बकाये अजमेर (खण्ड–2) (ट्रांस्क्रिप्ट नं0–15, 16) – मूल, इतिहास विभाग, अलीगढ़।

(45) अजायब–उल–अफाक – मूल, श्री रघुबीर लाइब्रेरी सीतामऊ।

(46) अहवाल–उल–खवाकीन – मुहम्मद कासिम, मूल, श्री रघुबीर लाइब्रेरी, सीतामऊ।

(47) औरंगजेब सक्सैसर्स – अनु0 जोनाथन स्काट, हिस्ट्री आव् डकन, भाग–2, खण्ड–5, आई0 एण्ड डब्ल्यू0 ईडोज 1794।

(48) आदाब–ए–आलमगीरी (भाग–2) – मूल, श्री रघुबीर लाइब्रेरी, सीतामऊ।

(49) इबरतनामा – कामराज माइक्रोफिल्म श्री रघुबीर लाइब्रेरी, सीतामऊ।

(50) इबरतनामा – सैयद मुहम्मद कासिम हुसैनी लाहौरी, माइक्रोफिल्म, श्री रघुबीर लाइब्रेरी, सीतामऊ।

(51) खुजिस्ता कलाम – मूल श्री रघुबीर लाइब्रेरी, सीतामऊ।

(52) तारीख–ए–मुजफ्फरी – मूल, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, लाइब्रेरी।

(53) तारीख–ए–हिन्द – रूस्तम अली खाँ, मूल, श्री रघुबीर लाइब्रेरी, सीतामऊ।

(54) बहादुरशाह नामा – नियामत अली खाँ, माइक्रोफिल्म, श्री रघुबीर लाइब्रेरी, सीतामऊ।

(55) बाल मुकुन्द नामा – सं0 शेख अब्दुर्रशीद मुस्लिम यूनिवर्सिटी अलीगढ़, 1957।

(56) मीरात–उल–वारिदात – मुहम्मद शफी वारिद तेहरानी, श्री रघुबीर लाइब्रेरी, सीतामऊ।

(57) मीरात–ए–अहमदी (भाग–2) – अली मुहम्मद खाँ, अनु0एम0एफ0 लोखान्डवाला ओरिएन्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा 1965।

(58) मीरात–ए–अहमदी (भाग–1) – अली मुहम्मद खाँ, मूल, इलाहाबाद विश्वविद्यालय लाइब्रेरी।

(59) मुनव्वर–उल–कलाम – शिवदास लखनवी, मूल, श्री रघुबीर लाइब्रेरी।

(60) रोजनामचा – मिर्जा मुहम्मद, मूल, श्री रघुबीर लाइब्रेरी, सीतामऊ।

(61) वाकया सरकारा अजमेर वा रणथम्भोर – मूल, श्री रघुबीर लाइब्रेरी, सीतामऊ।

(62) सीयर–उल–मुताखरीन – सैयद गुलाम हुसैन खाँ अनु0 नोटा मानस, आर0 कैम्ब्रे एण्ड कम्पनी।

2. प्राथमिक राजस्थानी एवं हिन्दी आधार ग्रंथ –

(1) आर्याख्यान कल्पद्रुम (मूल) – दयालदास, अनूप संस्कृत, लाइब्रेरी, लाल गढ़ पैलेस, बीकानेर।

(2) ख्यात सिंघवी प्रयासगदास – प्रतिलिपि, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर।

(3) ख्यात तिवारी पुरोहित – प्रतिलिपि, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर।

(4) ख्यात खरड़े की – प्रतिलिपि, राजस्थान राज्य अभिलेखागार।

(5) जन्म पत्रिकायें – मूल, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, लालगढ़ पैलेस, बीकानेर।

(6) जसवंत–उघोत – दलपति मिश्र, अमरचंद नाहटा द्वारा संपादित, अनूप संस्कृत पुस्तकालय, लालगंढ पैलेस, बीकानेर, 1949।

(7) जयपुर रेकर्डज् (खण्ड–4 एवं 6) – मूल, श्री रघुबीर लाइब्रेरी सीतामऊ प्रति।

(8) जैतदान की ख्यात – प्रतिलिपि, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर।

(9) जैतदान कृत महाराजा जसवन्त सिंह का इतिहास – प्रतिलिपि, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर।

(10) जोधपुर राज्य की ख्यात – प्रतिलिपि, राजस्थान प्राच्य विद्या शोध प्रतिष्ठान, जोधपुर।

(11) दयालदास की ख्यात (भाग–2) – सं0 दशरथ शर्मा, अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर, 1848।

(12) बाँकीदास री ख्यात – बाँकीदास, पुरातत्व मंदिर, जोधपुर 1956।

(13) भाषा भूषण – जसवंत सिंह, हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस 1949।

(14) मुगल कालीन भारत हुमायूँ–1 – सैयद अतहर अब्बास रिजवी, अलीगढ़ विश्वविद्यालय, 1960।

(15) मुँहणोत नैणसी की ख्यात (भाग–2) – अनु0 रामनारायण दूगड़, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी 1934।

(16) राठौड़ा री ख्यात – प्रतिलिपि, राजस्थान प्राच्य विद्या, शोध–प्रतिष्ठान, जोधपुर।

(17) राठौड़ दानेश्वर ग्रंथ मुक्तावली – प्रतिलिपि, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर।

(18) राठौड़ रा दूहा – प्रतिलिपि, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर।

(19) राजविलास – मान कवि, सं0 मोती लाल मेभारिया, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 1958।

(20) राज प्रशस्ति महा काव्य – इपिग्राफिया इंडिका, भाग 30 एवं 31 में प्रकाशित।

(21) वंश–भास्कर – सूर्यमल्ल मिश्र, प्रताप प्रेस, जोधपुर, 1899।

(22) वर्चानिका राठौड़ रतन सिंह – खिड़िया जगा, सं0 टेसी टोरी, एशियाटिक सोसाइटी बंगाल, 1917।

(23) वीर विनोद खण्ड–1 – कलकत्ता, कवि राजा श्यामलदास, राज्य मंत्रालय उदयपुर।

(24) वीर विनोद खण्ड–2 – कवि राजा श्यामलदास, राज्य मंत्रालय, उदयपुर 1886।

(25) सिद्धान्त सार आदि – प्रतिलिपियां, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर।

(26) सूर्य प्रकाश (भाग–2) – कवि कर्णीदान, सं0 सीताराम लालस, राजस्थान प्राच्य विद्या शोध प्रतिष्ठान, जोधपुर 1962।

(27) अजितविलास – प्रतिलिपि, रा0शो0सं0चौ0, जोधपुर।

(28) अजीत सिंह जी री तवारीख – फौजचन्द, प्रतिलिपि रा0पु0बी0।

(29) अजीत सिंह री विद्या रे दोहे – अजीत सिंह, प्रतिलिपि, सुमेर पब्लिक लाइब्रेरी, जोधपुर।

(30) अभय विलास – सांदू पृथ्वी नाथ प्रतिलिपि, पुस्तक प्रकाश, जोधपुर।

(31) ओहदा बही नं0–1 – जोधपुर पुरालेखागार, जोधपुर।

(32) कूर्म्मवंसविलास – कवि चन्द प्रतिलिपि रा0पु0बी0।

(33) ख्यात–व्यात	–	प्रतिलिपि, रा0शो0सं0चौ0, जोधपुर।
(34) गुटका (संवत् 1780 से 1788) तक	–	प्रतिलिपि, रा0शो0सं0चौ0, जोधपुर।
(35) गुणसार ग्रंथ	–	अजीत सिंह, प्रतिलिपि, पुस्तक प्रकाश, जोधपुर।
(36) चतुरकुल–चरित्र	–	चतुर सिंह, राजपूताना सेन्ट्रल प्रेस, अजमेर 1907।
(37) छत्रपति शाह को अजीत सिंह का एक पत्र	–	प्रकाशक–यज्ञदत्त भट्ट सणा सदन, चाँदपोल, जोधपुर।
(38) जयपुर रिकार्ड्स हिन्दी (खण्ड–1, 3, 4, 5, 8 व 9)	–	प्रतिलिपि, श्री रघुबीर लाइब्रेरी, सीतामऊ।
(39) जसवंत सिंह री वार्ता व अजीत सिंह री वार्ता	–	प्रतिलिपि, रा0प्रा0वि0प्र0, जोधपुर।
(40) जोधपुर राज्य की ख्यात (भाग–2)	–	प्रतिलिपि, श्री रघुबीर लाइब्रेरी, सीतामऊ।
(41) जोधपुर रै राठौड़ री ख्यात	–	प्रतिलिपि, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर।
(42) जन्मपत्री (अजीत सिंह)	–	रा0शो0सं0चौ0 जोधपुर से प्राप्य एक पत्र।
(43) दवावैत महाराजा अजीत सिंह जी री	–	द्वारकादास, दधवाड़िया प्रतिलिपि, रा0पु0बी0।
(44) दस्तूर री बही	–	प्रतिलिपि, रा0शो0सं0चौ0 जोधपुर।
(45) पंचोली हस्तलिखित ग्रंथ	–	प्रतिलिपि, श्री रघुबीर लाइब्रेरी, सीतामऊ।
(46) पुस्तक प्रकाश री जनी बही में लिखियों तीण री बीगत	–	प्रतिलिपि, रा0पु0बी0।
(47) बाँकीदास री ख्यात	–	बाँकीदास, पुरातत्व मंदिर जोधपुर, 1956।
(48) भाव–विरही	–	अजीत सिंह, प्रतिलिपि, पुस्तक प्रकाश, जोधपुर (गुणसार ग्रंथ में ही प्राप्य कुछ पत्र)।

(49) मुरारिदान री ख्यात — कविराजा मुरारिदान, प्रतिलिपि, रा0प्रा0वि0प्र0, जोधपुर।

(50) भूंदियाड़ री ख्यात — प्रतिलिपि रा0प्रा0वि0प्र0, जोधपुर।

(51) राजरूपक — वीरभाण रतनू, सं0 रामकर्ण आसोपा, नागरी प्रचारिणी सभा काशी 1958।

(52) वंश–भास्कर (भाग 3 व 4) — सूर्यमल्ल मिश्र।

(53) व्याव री बही नं0–1 — प्रतिलिपि रा0पु0बी0।

3. प्राथमिक अंग्रेजी, उर्दू, संस्कृत एवं मराठी आधार ग्रंथ –

(1) एनल्स एण्ड एटिक्विटीज आव् राजस्थान (दो खण्ड) — कर्नल जेम्स टॉड, रटलज, केशन पाल लंडन, 1957।

(2) जेथे शकावली — सर जदुनाथ सरकार द्वारा शिवा सोवे नीर में अनुदित, के0बी0 धावले, बम्बई, 1849 शक।

(3) शिवकालीन पत्रसार संग्रह (दो खण्ड) — भारत इतिहास संशोधक मंडल, पूना, 1930।

(4) शिवा छत्रपति — डॉ0 सुरेन्द्रनाथ सेन, कलकत्ता विश्वविद्यालय 1920।

(5) सोर्स बुक आव् मराठा हिस्ट्री (भाग–1) — ह0ग0 रालिंसन गवर्नमेंट सेन्ट्रल प्रेस, बम्बई 1929।

(6) अजीत चरित्र — बालकृष्ण दीक्षित, प्रतिलिपि, पुस्तक, प्रकाश जोधपुर।

(7) अजीतोदय — भट्ट जगजीवन, संस्कृत से राजस्थानी भाषा में अनूदित, प्रतिलिपि, रा0पु0बी0।

(8) उमराये हनूद — मुहम्मद सैयद अहमद साहब, अंजुमन, औरंगाबाद 1932।

(9) वाकये आलमगीरी — नयी अहमद संदावती, अलीगढ़।

4. यात्रा–विवरण –

(1)	ट्रैवल्स इन मुगल एम्पायर	– फ्रा0 बर्नियर, कांस्टेबल, थैकर स्पिन्कस् कलकत्ता संभवतः 1891ई0।
(2)	ट्रैवल्स आव् पीटर मुंडी	– पीटर मुंडी, र0से0 टेंपिल हक्लुयट सोसाइटी लंडन 1919।
(3)	दि एम्पायर आव् दी ग्रेट मोगल	– डिलायेट, होयलैंड और बनर्जी, तारा पोखाला, बम्बई 1928।
(4)	स्टोरिया–डी–मोगोर	– निकोलाई मनूची, इर्विन, जान मरे, लंडन (भारत सरकार के लिए), तीन खण्ड 1907, चतुर्थ 1908।
(5)	अर्ली ट्रेवेल्स इन इण्डिया	– संपादित डब्ल्यू0 फास्टर, हम्फ्रे मिलफोर्ड, बाम्बे 1921ई0।
(6)	न्यू एकाउन्ट आव् ईस्ट इण्डिया एण्ड पर्शिया बीइंग ईयर्स ट्रैवेल्स (भाग–3)	– हकलूत, सोसाइटी, लंदन।

5. गजेटियर –

(1)	इम्पीरियल गजेटियर भाग–14 एवं 21	– क्लेरेंडन प्रेस, आक्सफोर्ड, 1908।
(2)	गजेटियर आव् बीकानेर स्टेट	– पाउलेट, गवर्नमेन्ट प्रेस बीकानेर 1932।
(3)	गजेटियर आव् बाम्बे प्रेसिडेंसी (भाग–18 खण्ड–2)	– कैम्पबेल, गवर्नमेंट प्रेस, बम्बई 1885।
(4)	राजपूताना गजेटियर खण्ड–3 अ 2A	– कर्स्किन, पायनियर, प्रेस, इलाहाबाद 1909। स्काटिश मिशन इन्डस्ट्रीज अजमेर 1908।
(5)	गजेटियर आव् दि मारवाड़ मलानी एण्ड जैसलमेर	– वाल्टर फौरेन डिपार्टमेंट प्रेस, कलकत्ता 1877।

6. गौण – आधार ग्रंथ (हिन्दी) –

(1) उदयपुर राज्य का इतिहास भाग–1, 2 – गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा स्वयं प्रकाशित, अजमेर 1931ई0 (प्रथम वृत्ति)।

(2) खोज रिपोर्ट (भार भागो में) – शोध संस्थान, उदयपुर क्रमशः 1942, 47, 52 एवं 54।

(3) जोधपुर राज्य का इतिहास (राजपूताने का इतिहास खण्ड–4, भाग–1, 2) – गौरी शंकर हीराचन्द्र ओझा, स्वयं प्रकाशित, अजमेर 1938, 1941।

(4) जेधपुर राज्य का इतिहास (भाग–1,2) – गौरी शंकर हीराचन्द्र ओझा, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश शोध–केन्द्र, जोधपुर, 2010।

(5) दारा शिकोह – का0र0 कानूनगो, गया प्रसाद एण्ड संस, आगरा 1958।

(6) पूर्व आधुनिक राजस्थान – रघुवीर सिंह, राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर 1951।

(7) बीकानेर राज्य का इतिहास (भाग–1, 2) – गौरी शंकर हीराचन्द्र ओझा, स्वयं प्रकाशित, अजमेर 1939ई0।

(8) अ– भारत के प्राचीन राजवंश (भाग–3) – विश्वेश्वरनाथ रेऊ, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकार कार्यालय बम्बई 1925ई0।

(9) मराठो का नवीन इतिहास – गोविन्द सखाराम सरदेसाई, शिवलाल अग्रवाल, आगरा 1959।

(10) मध्यकालीन हिन्दी ग्रंथ – हरिमोहन श्रीवास्तव, राज कमल प्रकाशन दिल्ली 1959।

(11) मारवाड़ राज्य का इतिहास (भाग–1) – विश्वेश्वरनाथ रेऊ, जोधपुर आर्कियोलाजिकल डिपार्टमेंट 1938।

(12) मारवाड़ राज्य का इतिहास – विश्वेश्वरनाथ रेऊ, जोधपुर आर्कियोलाजिकल डिपार्टमेंट 1940।

(13) मारवाड़ का भूल इतिहास – रामकर्ण आसोपा, स्व–प्रकाशित जोधपुर, सम्वत् 1931–32।

(14) मारवाड़ का इतिहास – जगदीश सिंह गहलोत, हिन्दी साहित्य मंदिर जोधपुर 1925।

(15) मध्यकालीन राजपूत इतिहास सम्बन्धी अध्ययन – डॉ0 श्यामसिंह रत्नावत, श्री राजपूत सभा, जयपुर, 2002।

(16) मित्र बंधु विनोद (चार भागों में) – मित्रबंधु, प्रथम और तृतीय, ग्रंथ प्रसारक खंडवा द्वितीय और चतुर्थ गंगा, पुस्तकमाला, लखनऊ 1913, 1927, 1934 क्रमशः।

(17) मुगल–राजपुत सम्बन्ध (1526–1707 ई0) – डॉ0 श्यामसिंह रत्नावत, गौतम बुक कम्पनी, जयपुर, 2009।

(18) रतमाल का प्रथम राज्य – रघुवीर सिंह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 1950।

(19) राजपूताने का इतिहास (भाग–1, 2) – जगदीश सिंह गहलोत, हिन्दी साहित्य मंदिर, जोधपुर 1937, 1960।

(20) राजपूताने का इतिहास (भाग–1) – गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा स्व प्रकाशित, अजमेर 1937।

(21) राजरूपक – सं0 रामकर्ण आसोपा, नागरी प्रचारिणी सभा काशी 1941।

(22) म–राजपूताने में हिन्दी पुस्तकों की खोज – मुंशी देवी प्रसाद 1911।

(23) च–राजस्थानी भाषा और साहित्य – मोती लाल मेनारिया, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, 1949।

(24) राजस्थान का पिंगल साहित्य – मोती लाल मेनारिया, हितैषी भंडार, उदयपुर 1952।

(25) राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा – मोती लाल मेनारिया, छात्र हितकारी पुस्तकमाला प्रयाग 1939।

(26) रीतिकाव्या की भूमिका – नगेन्द्र, गौतम बुक, डिपो, दिल्ली 1949।

(27) शिव सिंह सरोज – शिव सिंह सेगर, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ 1926।

(28) हिन्दी साहित्य का इतिहास – रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी 1940।

(29) हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों का विवरण – श्यामसुन्दर दास, नागरी प्रचारिणी सभा काशी 1923।

(30) हिन्दी साहित्य (द्वितीय खण्ड) – धीरेन्द्र वर्मा, ब्रजेश्वर वर्मा, भारतीय हिन्दी परिषद् इलाहाबाद 1959।

(31) हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास, भाग–6 – नगेन्द्र, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी 1958।

(32) हिन्दी अलंकार साहित्य – ओम प्रकाश भारती साहित्य मंदिर, दिल्ली।

(33) हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास – चतुरसेन शास्त्री, गौतम बुक डिपो, नई सड़क देहली 1949।

(34) हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास – भगीरथा मिश्र, लखनऊ विश्वविद्यालय, प्रकाशन 1948।

(35) राजस्थान का इतिहास – गोपीनाथ शर्मा, शिवलाल अग्रवाल, आगरा 3, 1971।

(36) राजस्थान के इतिहास के स्त्रोत – डॉ0 एस0 एल0 नागोरी, आर0 बी0 एस0 ए0 पब्लिशर्स, जयपुर, 1990।

(37) जसवंत सिंह ग्रंथावली – विश्वनाथ प्रसाद मिश्रा, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी वाराणसी, 1972।

(38) औरंगजेब तथा उत्तर मुगल कालीन दस्तावेज – डॉ0 श्यामसिंह रत्नावत, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 2007।

(39) औरंगजेब आलमगीर की कठिनाइयाँ एवं नीतियाँ – डॉ0 मौलवी शुजाउद्दीन खाँ नक्शबंदी, कादरी एण्ड कम्पनी, बीकानेर, 2004।

(40) औरंगजेबनामा – मुंशी देवी प्रसाद, श्री वेंकटेश्वर स्टीम् प्रेस 1909।

(41) डिंगल में वीर रस – मोती लाल मेनारिया, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग 1940।

(42) डिंगल–साहित्य – जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, 1960।

(43) डूंगरपुर राज्य का इतिहास (राजपूताने का इतिहास भाग–3) – गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा स्वयं प्रकाशित अजमेर 1936।

(44) तवारीख जागीरदारान राज मारवाड़ – मुंशी हरदयाल सिंह, जोधपुर सरकार की आज्ञा से प्रकाशित 1894।

(45) प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास (राजपूताने का इतिहास भाग–3, खण्ड–3) – गौरीशंकर, हीराचन्द्र ओझा स्वयं प्रकाशित अजमेर 1940।

(46) बांसवाड़ा राज्य का इतिहास (राजपूताने का इतिहास भाग–3 खण्ड–2) – गौरीशंकर, हीराचन्द्र ओझा, स्वयं प्रकाशित अजमेर 1937।

(47) बीकानेर राज्य का इतिहास (राजपुताने का इतिहास भाग–5 खण्ड–1) – गौरीशंकर, हीराचन्द्र ओझा, स्वयं प्रकाशित अजमेर 1939।

(48) बुन्देलखण्ड केसरी महाराजा छत्रसाल बुन्देला – भगवान दास गुप्त, शिव लाल अग्रवाल, आगरा 1958।

(49) भारतीय चित्रकला – वाचस्पति गैरोला, मिश्र प्रकाशन, इलाहाबाद 1963।

(50) राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज (भाग–4) – शोध संस्थान, उदयपुर क्रमशः 1942, 1947, 1952 व 1954।

(51) राजस्थानी भाषा और साहित्य – हीरालाल माहेश्वरी, आधुनिक पुस्तक भवन, कलकत्ता 1960।

(52) राजस्थानी–सबद–कोश – सीताराम लालस, राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर, 1962।

(53) रिपोर्ट मजमूई हालात व इन्तिजाम राज मारवाड़ – मुंशी हरदयाल सिंह, जोधपुर सरकार की आज्ञा से प्रकाशित 1885।

(54) प्रणपाल दुर्गादास राठौड़ – डॉ0 विक्रमसिंह राठौड़, भगवनी प्रकाशन संस्थान, जोधपुर 2000।

(55) दुर्गादास राठौड़ – डॉ0 रघुवीर सिंह, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1989।

(56) वीर दुर्गारास राठौड़ – जगदीश सिंह गहलोत, हिन्दी साहित्य मंदिर जोधपुर 1966।

(57) वीर शिरोमणि राठौड़ दुर्गादास – रामरतन हालदार, स्व प्रकाशित, अजमेर, 1937।

(58) महाराजा जसवन्त सिंह का जीवन व समय – निर्मल चन्द्र राय, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1973।

(59) महाराजा अजीत सिंह एवं उनका युग – मीरा मित्र, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी जयपुर, 1973।

(60) औरंगजेब का राजपूतों से संबंध – संगीता चंदोला, राधा पब्लिकेशन दिल्ली–2007।

(61) औरंगजेब – एक नई दृष्टि – डा0 ओम प्रकाश प्रसाद, खुदा बख्श ओरिएन्टल पब्लिक लाइब्रेरी, पटना, 2006।

7. गौण – आधार ग्रंथ (अंग्रेजी) –

(1) इलियट और डाउनसन भाग–2 और 4 – ट्रवनर एण्ड को0, लंडन, द्वितीय–चतुर्थ 1872।

(2) इंग्लिश रेकर्ड्स आन शिवाजी – सुरेन्द्र नाथ सेन, शिव चरित्र कार्यालय पूना 1931।

(3) इण्डिया एट दि डेथ आफ अकबर – मोरलैंड, मैकमिलन एण्ड को0 लंडन 1920।

(4) एग्रेरियन सिस्टम आव् मुस्लिम इण्डिया – डब्ल्यू0एच0 मोरलैण्ड, सेन्ट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, संवत् 1962।

(5) ए हिस्ट्री आफ दी महरट्टाज भाग–1 – जे0सी0 ग्रांट डफ, हम्फ्रेमिलफोर्ड, बाम्बे 1921।

(6) औरंगजेब एण्ड हिज टाइम्स – जेड0 फारूकी, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, संभवतः 1935।

(7) कैटलाग आफ राजस्थानी मैन्यूस्क्रिप्टज (बीकानेर) – टे0सी0 होरी, एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता, 1918।

(8) ग्लोरीज आव् मारवाड़ एंड ग्लोरीय्स राठौरस् – विश्वेश्वरनाथ रेऊ, जोधपुर आर्कियोलाजिकल डिपार्टमेंट 1943।

(9) प्राविशियल गवर्नमेंट आव् दी मुगल्ज़ – परमात्माशरण, किताबिस्तान इलाहाबाद, 1941।

(10) फारेन बायोग्राफी आन शिवाजी – सुरेन्द्रनाथ सेन, केगन, पाल लंडन संभवतः 1927।

(11) फ्राम अकबर टु औरंगजेब – मोरलैण्ड, मैकमिलन, लंडन 1923।

(12) मिलिट्री हिस्ट्री आव् इण्डिया – जदुनाथ सरकार, एम0सी0 सरकार, कलकत्ता 1958।

(13) मीडिबल स्टडीज – ए.सी. बनर्जी, ए. मुखर्जी एंड का0, कलकत्ता 1958।

(14) मेवाड़ एण्ड दी मुगल इम्परर्स – गोपीनाथ शर्मा, शिव लाल अग्रवाल, आगरा 1954 ।

(15) वीर दुर्गादास राठौड़ – विश्वेश्वरनाथ रेऊ, जोधपुर आर्कियोलाजिकल, डिपोर्टमेंट, 1948 ।

(16) राइज एण्ड फाल आफ द मुगल एम्पायर – राम प्रसाद त्रिपाठी, सेन्ट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, 1960 ।

(17) राजपूत स्टेट्स एण्ड ईस्ट इण्डिया कम्पनी – ए.सी. बनर्जी, ए. मुखर्जी एण्ड को0, कलकत्ता 1951 ।

(18) राइज आव् दी मराठा पावर – महादेव गोविन्द रानाडे, पब्लिकेशन डिविजन, गवर्नमेंट, आफ इण्डिया, दिल्ली, 1961ई0 ।

(19) शिवाजी – जदुनाथ सरकार, एम0सी0 सरकार, कलकत्ता, 1952 ।

(20) शेरशाह – का0र0 कानूनगो, कर, मजूमदार, कलकत्ता 1921 ।

(21) सर्व रिर्पोटज् 1900–1940 (21 भाग) – प्रदेश सरकार के लिए नागरी प्रचारिणी सभा काशी ।

(22) स्टडीज इन मीडिवल इण्डियन हिस्ट्री – श्री राम शर्मा, स्व प्रकाशित 1956 ।

(23) सेन्सस रिपोर्ट मारवाड़ 1887–91 (भाग–2) – हरदयाल सिंह, जोधपुर सरकार की आज्ञा से प्रकाशित, 1894 ।

(24) हाउस आव् शिवाजी – जदुनाथ सरकार, एम0सी0 सरकार, कलकत्ता, 1948 ।

(25) हिस्ट्री आव् औरंगजेब (5 भागों में) – जदुनाथ सरकार, एम0सी0 सरकार कलकत्ता, 1925, 28, 30, 1924 ।

(26) हिस्ट्री आव् गुजरात (भाग–2) – कमसरियट, ओरियंटल लॉन्ग मैन्स, कलकत्ता, 1957।

(27) हिस्ट्री आव् गुजरात – वाटसन, गर्वनमेंट सेन्ट्रल प्रेस, बम्बई, 1876।

(28) हिस्ट्री आव् राष्ट्रकूटाज – विश्वेश्वरनाथ रेऊ, आर्कियोलाजिकल, डिपार्टमेंट जोधपुर, 1933।

(29) हिस्ट्री आव् मराठा पीपुल (भाग–1) – किन्सेड परसनीस, हम्फ्रे मिल्फोर्ड, बम्बई।

(30) हिस्ट्री आव् जहाँगीर – बेनी प्रसाद, इण्डियन प्रेस इलाहाबाद, 1940।

(31) हिस्ट्री आव् शाहजहाँ आव् देहली – बनारसी प्रसाद सक्सेना, सेन्ट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, 1958।

(32) मारवाड़ एण्ड दी मुगल इम्परर्स – वी0एस0 भार्गव, मुंशीराम, मनोहरलाल, दिल्ली, 6, 1966

(33) सोशल लाइफ इन मीडिवल राजस्थान (1500–1800) – गोपीनाथ शर्मा, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 1968।

(34) राजस्थान स्टडीज – गोपीनाथ शर्मा, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा 1970।

(35) अजमेर हिस्टोरिकल एण्ड डिस्क्रिप्टिव – हरबिलास शारदा, स्काटिश मिशन इन्डस्ट्रीज कम्पनी लिमिटेड, अजमेर 1911।

(36) आर्कियोलाजिकल सर्वे आव् इण्डिया (भाग–23) – एच0बी0डब्ल्यू0 गैरिक।

(37) थर्टी डिसाइसिव बैटल्स आव् जयपुर – ठाकुर नरेन्द्र सिंह 1939।

(38) पार्टीज एण्ड पालिटिक्स एट दी मुगल कोर्ट – सतीश चन्द्र, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, 1959।

(39) फर्स्ट निजाम – युसुफ हुसैन, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई 1959।

(40) मुगल गवर्नमेंट एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन – श्री राम शर्मा, हिन्द किताब्स लिमिटेड, बम्बई, 1951।

(41) मुगल नोबिल्टी अंडर औरंगजेब – अतहर अली, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, 1966।

(42) रासमाला (भाग–2) – फोर्ब्स, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, 1924।

(43) लेटर्स मुगल्स (भाग–2) – विलियम इरविन, एम0सी0 सरकार एण्ड संन्स, कलकत्ता।

(44) वेस्टर्न राजपूताना स्टेट्स – कर्नल आर्किबाल्ड एडम्स 1900।

(45) सेन्ट्रल स्ट्रक्चर आव् दी मुगल एम्पायर – इब्न हसन, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी पेस, 1936।

(46) हिस्ट्री आव् इण्डिया (भाग–7 व 8) – इलियट एण्ड डाउसन, फ्रयूबनर एण्ड कं0 लंदन 1877।

(47) हिस्ट्री आव् जाट्स – कानूनगों, कलकत्ता, 1925।

(48) हिस्टोरिकल एसेज – कानूनगो, शिव लाल अग्रवाल, आगरा, 1960।

8. <u>लेख (हिन्दी व अंग्रेंजी)</u> –

(1) अर्ली रागमाला मैन्यू स्क्रिप्ट फ्राम पाली – कुंवर संग्राम सिंह, ललित कला, सन् 1960ई0।

(2) इन्सपैन्शन आव् राठौड़ स्टेट इन मारवाड़ – ए0सी0 बनर्जी, इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली, सन् 1952ई0।

(3) नागौर फ्रेस्कोज – एम0एल0 गुप्त, रिसर्चर जयपुर सन् 1962 (भाग–1)।

(4) डेट आव् दि बैटिल आव् धरमत – रघुबीर सिंह, बंगाल पास्ट एण्ड प्रेसेन्ट 1955 (भाग–74)

(5) बात राज सिंह रवींवागत – 'वरदा' खण्ड 3, अंक 1,जनवरी 1960 ई0।

(6) बात अमर सिंह गज सिंह्रोतरी – 'परम्परा' भाग 2, अंक–6–7, 1958 ई0।

(7) सोशल एण्ड कल्चरल कान्टेक्टस बेटवीन दि मराठाज् एण्ड दी राठौर्स – जी0आर0 परिहार, स्टडीज इन हिस्ट्री, यूनिवर्सिटी आव् राजस्थान डिपार्टमेंन्ट आव् हिस्ट्री जयपुर, 1967–68।

(8) अजीत सिंह आव् मारवाड़ – विश्वेश्वरनाथ रेऊ, जनरल आफ इण्डियन हिस्ट्री भाग 12, 1966।

(9) अजीत सिंह की परीक्षा एक गीत – उदयराज उज्जवल, राजस्थान भारती, जुलाई 1954।

(10) अजीत सिंह के जीवन का एक परिच्छेद – जुगल सिंह खीची, राजस्थान भारती जुलाई 1954।

(11) औरंगजेब एटीड्यूट टुवर्डस मारवाड़ आफ्टर दि डेथ आफ महाराजा जसवन्त सिंह – सुन्दरी शर्मा, दि क्वार्टरली रिव्यू आव् हिस्टोरिकल स्टडीज, भाग–7, नं0–2, 1967, 68।

(12) जोधपुर के दस्त्री रिकार्ड्स का महत्व – गोपीनाथ शर्मा, शोध पत्रिका, सितम्बर, 1955।

(13) जोधपुर के सिंहासन के दावेदार दलथंमन से संबंधित कुछ अज्ञात तथ्य – ब्रजमोहन जावलिया, मरू मारती, जुलाई, 1968।

(14) दुर्गादास के पत्र का सही संवत् – रघुबीर सिंह, राजस्थान भारती, जुलाई 1951।

(15) महाराजा अजीत सिंह की अन्य रचनाएं – अगरचन्द नाहटा, मरू भारती, जनवरी, 1963।

(16) महाराजा अजीत सिंह विरचित गज उद्धार ग्रंथ – सं0 नारायण सिंह माटी परम्परा अंक, 17।

(17) महाराजा अजीत सिंह विरचित गज उद्धार ग्रंथ – नारायण सिंह भाटी, मरू भारती अक्टूबर 1962।

(18) मारवाड़ की मेवाड़ को समय–समय पर दी हुई कुछ समस्याएं – विश्वेश्वरनाथ रेऊ, हिन्दुस्तानी भाग 6, 1936।

(19) राठौड़ वीर दुर्गादास का एक पत्र – विश्वेश्वर नाथ रेऊ, राजस्थान भारती अप्रैल, 1950।

(20) राजपूत पालिसी आव् औरंगजेब – खुरशीद मुस्तफा, इस्लामिक कल्चर, भाग–21, नं0–4, 1947।

(21) राजा जय सिंह कान्ट्री ब्यूशन टू इम्पीरियल पालिटिक्स – 11वाँ सेशन 1948।

(22) हाडीरानी व औरंगजेब का युद्ध – मांगीलाल व्यास 'मयंक' मरू – भारती, जुलाई 1968।

Reg. No. : 141 / 2004 ISSN 0973 - 8762

ANUŚĪLANA

Research Journal of Indian
Cultural, Social & Philosophical Stream

Chief Editor: *Mukul Raj Mehta*

Volume VI Year: 2008 No.: 2

Editors

Pramod Kumar Singh *Jayant Upadhyay*

DEPARTMENT OF PHILOSOPHY & RELIGION
FACULTY OF ARTS, BANARAS HINDU UNIVERSITY,
VARANASI-221005, INDIA

ISSN 0973 – 8762

ANUŚĪLANA – is published bi-annually. It is a Referred journal.

Note: *Scholars will be answerable to the contents of their articles.*

*Leaser Type Set by **Ratnesh Kumar Rao**.*
Technical associates : ***Vishal Shukla, Shyam Bahadur***
Printed by Kabara Offsets, Ravindrapuri, Varanasi.

Website : www.anushilana.co.in

Published by
Manvi Seva Samiti
135, Chandan Nagar, Karaundi, Varanasi

Contents

हिन्दुस्तान के एकीकरण में दिल्ली के मुस्लिम सुल्तानों का योगदान

मृदुला जायसवाल
इतिहास विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

हिन्दुस्तान में महमूद गजनवी (999–1030) के आक्रमण से लेकर मुहम्मद गोरी 1175 के आक्रमण के बीच लगभग 150 वर्षो के लम्बे अन्तराल में राजपूत राज्य का उत्थान जाति प्रथा में दिन प्रतिदिन समाती संकीर्णता तथा गंगा के मैदानी भाग में बढ़ता तुर्क प्रभाव जल्द ही हिन्दुस्तान को प्रभावित करने वाला था। इसका तत्कालीन कारण यही दृष्टिगत होता है कि महमूद के आक्रमणों से भारतीयो ने कुछ भी सीखने का प्रयत्न नहीं किया अन्यथा तत्कालीन जरूरत नहीं समझी। इसी कारण राजवंश तो बदलते रहे पर हिन्दुस्तान की दशा पूर्णतः अपरिवर्तनीय रही। पूर्व मध्यकालीन राजनीतिक स्थिति में जहाँ एक ओर राजपूतों द्वारा सामंत शाही संस्थाओं का उद्भव एवं विकास हुआ वहीं दूसरी ओर सामाजिक स्थिति में जाति प्रथा ने समाज को अत्यन्त हीन अवस्था में विभाजित करते हुए "सामाजिक नागरिकता की भावना का गला घोंट दिया"।[1] तुर्कियों के तेज तलवार की भाँति चलती हुई उनकी राजनीतिक दूरदृष्टि इस आधारभूत कमजोरी को पूर्णतः देखने में सफल रही और इस कमजोरी का फायदा उठाने के लिए उपयुक्त तैयारियों में जुट गयी।

राजनीतिक दृष्टिकोण से हिन्दुस्तान पर नजर डालने से यह आसानी से ज्ञात किया जा सकता था कि विशाल हिन्दुस्तान अब भी कई टुकड़ों में विभक्त था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कुछ राजपूत वंश अपने चरमोत्कर्ष पर थे परन्तु उनमें एकता का अभाव भी आसानी से देखा जा सकता था। राज्य विस्तार की होड़ तथा वंशानुगत झगड़ों के कारण हिन्दुस्तान अपने ही वंशों के युद्ध का अखाड़ा बन गया, जिसके कारण न तो वे अपनी शक्ति का सदुपयोग कर सके, न तो अपने राज्य के हित के लिए सोच सकें और न ही एक जुट होकर विदेशी शत्रु का सामना करने में सक्षम हो सकें।

इस प्रकार हम देख सकते है कि तत्कालीन हिन्दुस्तान विशाल होते हुए अपनी अखण्डता को बनाए रखने में पूर्णतः सक्षम नहीं था। आपसी द्वेष ने कभी भी हिन्दुस्तान को अखण्ड हिन्दुस्तान बनने का मौका नहीं दिया। इस सन्दर्भ में यह कह सकते है कि अपने सभी राज्यों पर आक्रमण कर पृथ्वीराज ने स्वयं को राजनीतिक दृष्टि से अलग–थलग कर लिया था, उसके लिए यह उस समय बड़ा महंगा साबित हुआ जब उसे कुछ ही वर्षो बाद मुहम्मद गोरी की तुर्क सेना का सामना करना पड़ा।[2]

तुर्कों के भारत अभियान में सबसे पहला चरण मुल्तान का था। 1175 ई० में मुल्तान पर आक्रमण कर बड़ी सरलता से उसे जीत लिया उसके पश्चात् उच्च और चिचले सिन्ध को जीत लिया। 1178 में पहली बार गोरी का हार से सामना हुआ जब उसने गुजरात में शासक भीम द्वितीय पर आक्रमण किया। तत्पश्चात् मार्ग बदल कर उसने पंजाब के गजनवी वंश पर आक्रमण किया। यहाँ के शासक मलिक सुखरों को परास्त करते हुए 1179 में पेशावर पर अधिपत्य कर लिया जो उस संभवतः गजनवी वंश के अधीन था। 2 वर्ष बाद लाहौर पर आक्रमण किया और 1185 में स्लायकोट को जीत कर वापस चला गया। 1186 में मुहम्मद गोरी भारत वर्ष में गजनवी सत्ता के अतिम अवशेष नष्ट करने के लिए पुनः लाहौर आ पहुँचा।[3] और अमीर सुखरों की हत्या कर गजनवी वंश को समाप्त कर दिया।

गोरी के वापस जाने के बाद लगातार विद्रोहों का सिलसिला शूरू हुआ। राजस्थान में विद्रोह हुआ जिसमें मुख्यतः तुर्कों को बाहर करने का यत्न किया गया। परन्तु ऐबक ने आसानी से इस विद्रोह को दबाकर गुजरात पर आक्रमण किया तथा राजधानी अन्हिलवाड़ा को खूब लूटा। इसके बाद ऐबक ने बदाँयू को जीता और विजय अभियान को जारी रखते हुए बनारस तथा चन्दावार को पुनः जीता। मध्यकाल में स्वतन्त्र एक मात्र राजपूत राज्य पर ऐबक की नजर जाना स्वाभाविक था जो उसकी सबसे महत्वपूर्ण विजय साबित हुई वह था बुंदेलखण्ड। तत्पश्चात् महोबा तथा खजुराहों पर आधिपत्य स्थापित किया। बिहार और बंगाल विजय के विषय में न तो कभी गोरी ने सोचा और न ही ऐबक ने पर एक तुर्क सरदार इख्तियारूद्दीन ने पूर्व की ओर तुर्की राज्य के विस्तार के बारे में सोचा। बिना किसी बाधा के बार–बार आक्रमण कर उसने बिहार को जीत लिया और बंगाल में भी बिना किसी गंभीर विरोध के महल में फाटक तक पहुँच गया और लक्ष्मण सेन की अकर्मण्यता के कारण तुर्की सेना आसानी से नगर में प्रवेश कर सकी। इस तरह दक्षिणीं पश्चिमी बंगाल के अधिकांश भाग पर तुर्कों का आधिपत्य हो गया और इख्तियारूद्दीन ने लखनैती को राजधानी बनाया।[4]

ऐबक के बाद जब इल्तुतमिश (1210) सुल्तान बना तो उसके सामने कठिनाइयों के पहाड़ समान उसके दो प्रतिद्वन्द्वी यल्दौज और कुबाचा खड़े थे। यल्दौज ने इल्तुतमिश के पास संदेश भेजा कि वह ही मुहम्मद गोरी का वास्तविक अधिकारी है और उसे भारतीय साम्राज्य पर अधिक अधिकार है। इल्तुतमिश ने उत्तर दिया : "समय बदल गया है अब एक नई व्यवस्था स्थापित हो गयी है। गजनवियों और गोरियो की क्या दशा हुई? वंशानुगत उत्तराधिकार का समय समाप्त हो गया है।" यह उत्तर इल्तुतमिश के दृढ़ संकल्प का था कि वह यल्दौज के दिल्ली अधिकृत करने में किसी भी प्रयत्न का डटकर सामना करेगा।[5] इल्तुतमिश ने यल्दौज और कुबाचा को बहुत ही बुद्धिमत्ता का

प्रयोग करते हुए रास्ते से हटाया। के.ए.निजामी के अनुसार – "इल्तुतमिश के लिए यह दोहरी विजय थी : उसकी सत्ता को ललकारने वाले सबसे बड़े शत्रु का विनाश और गजनी से अंतिम रूप से सम्बन्ध विच्छेद, जिसके कारण दिल्ली का स्वतन्त्र अस्तित्व निश्चित हो गया"। इल्तुतमिश ने मुहमम्द गोरी के द्वारा निर्मित दिल्ली सल्तनत की राजक्षेत्रीय अखण्डता को पुनः स्थापित किया जो खंडित होने के कागार पर पहुँच गयी थी। अपनी सूझबूझ, धैर्य और दूरदर्शिता का परिचय देते हुए उसने यल्दौज और कुबाचा जैसे महत्वाकांक्षी प्रतिद्वन्दियों के प्रयत्नों को असफल कर दिया जो दिल्ली सल्तनत को विभाजित करने का स्वप्न देख रहे थे। उचित अवसर भी ताक में निर्णयात्मक कदम उठाने की उसकी प्रवृत्ति जलालुद्दीन मंगबरनी के साथ व्यवहार में परिलक्षित होता है। उसने लखनैती के खिलजी मालिको के विरूद्ध तभी कूच किया जब उसने उत्तर पश्चिम से अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली थी। उसने सिन्धु नदी से लेकर लखनैती (बंगाल) तक साम्राज्य का विस्तार किया तथा अपने साम्राज्य में हुए अनेक विद्रोहों को दबाते हुए राजपूतों के क्षेत्रों पर भी अधिकार कर लिया। इल्तुतमिश के अन्तर्गत दिल्ली सल्तनत को एक वास्तविक स्वतन्त्र राज्य की संज्ञा दी जा सकती है। यह वास्तविकता उस समय अधिक पुष्ट तथा सुदृढ़ हो गयी जब 1229 ई० में बगदाद के खलीफा का एक दूत इल्तुतमिश के लिए सुल्तान की मान्यता देने वाला औपचारिक पत्र लेकर दिल्ली पहुँचा। यह घटना इल्तुतमिश के पिछले दो दशको से दिल्ली में स्वतन्त्र अस्तित्व स्थापित करने के लिए संघर्ष की सूचक थी।[6]

इस तरह बलबन ने अपनी नीति का स्पष्टीकरण करते हुए मंगोलो से राज क्षेत्रीय अखण्डता पर खतरा नहीं पैदा होने दिया। बलबन के नीतियों के ही परिणामस्वरूप राजपूतों के किसी भी प्रयास से तुर्क राज्य में अस्तित्व अथवा मूलभूत राजक्षेत्रीय अखण्डता कायम रह सकी। उसकी एक महत्वपूर्ण विजय बंगाल विजय थी। वस्तुतः तुर्क राज्य तत्कालीन स्थिति के अनुरूप विस्तारवादी नीति अपनाने की स्थिति में नहीं था। इस दौरान बलबन का सबसे शसक्त कदम राजत्व की स्थापना करना था जिससे हिन्दुस्तान के लोग अपना शासक मानने लगे और जिससे सल्तनत की अखण्डता पर कोई आँच न आ सके।

सल्तनत काल की एक प्रमुख विशेषता यह रही कि किसी नवीन वंश के उदय के साथ ही विजय का कार्य एक बार फिर दोहराना होता था।[7] अलाउद्दीन खिलजी की सबसे प्रबल महत्वाकांक्षा थी कि कैसे हिन्दुस्तान के स्वतन्त्र राज्यों पर अधिकार किया जाए। अपने अनवरत युद्धों से अलाउद्दीन ने अपने साम्राज्य का विस्तार किया।[8] वह अमरत्व का प्यासा था। सिकन्दर की विजयों से भी ऊपर उठना और एक ऐसे धर्म की प्रतिस्थापना करना जो मानव जाति की गाथा में उसके नाम को अमर कर दें, ये उसकी दो ज्वलन्त आकांक्षाएं थी।[9]

हिन्दुस्तान की अखण्डता को बनाने में अगला महत्वपूर्ण कारण मुहम्मद बिन तुग़लक़ के काल में सम्पन्न हो सका। सिंहासन प्राप्त होते ही उसे एक विशाल साम्राज्य तथा भरपूर खजाना विरासत में प्राप्त हुआ। तत्कालीन हिन्दुस्तान में सिवाय कश्मीर और आधुनिक बलूचिस्तान के समस्त हिन्दुस्तान दिल्ली सल्तनत के अधीन था। अपने शहजादा काल में मंगोलो के विरूद्ध विजय का झण्डा गाड़कर उसने दिल्ली की सुरक्षा का सुनिश्चित करने का कार्य किया जिससे उसके शासक बनने के बाद हिन्दुस्तान को अखण्ड करने के कार्य में कोई आँच न आ सके। वह सैनिक प्रतिभाओं से परिपूर्ण था तथा सभी युद्धों में स्वयं उपस्थित रहते हुए उसने दक्षिण की महत्वपूर्ण विजय प्राप्त की। उसके काल में अनेक विद्रोहों का भी जन्म हुआ पर जहाँ–जहाँ भी सुल्तान स्वयं गया वहाँ के विद्रोहों को दबाने में सफलता अर्जित की। उत्तरपूर्व में हिमालय तक, उत्तर पश्चिम में सिन्ध तक, पूर्व तथा पश्चिम में दोनों समुद्र तक तथा दक्षिण में मालाबार तथा माबार का प्रदेश सलतनत के प्रभाव को मानता था।[10]

तुर्कों द्वारा स्थापित साम्राज्य के विभिन्न सुल्तानों ने कालान्तर में होने वाली एक बहुत बड़ी घटना को अन्जाम देने का मार्ग प्रशस्त किया जिसकी नींव भी उन्हीं के द्वारा रखी गयी थी यद्यपि वह स्वयं इस विस्तृत साम्राज्य के निर्माण के दूरगामी प्रभावशाली परिणाम को नहीं जानते थे जो उनके आक्रमण से ही परिलक्षित हो रहा था। गोरियों की उत्तर भारत विजय ने हिन्दुस्तान में राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक जीवन में धीरे–धीरे किन्तु अवश्यम्भावी परिवर्तन करते हुए 11वीं तथा 12वीं शताब्दी के हिन्दुस्तान में जो अनेक देशीय प्रणालियाँ विद्यमान थी, उन्हें तितांजलि देकर उनके विलय का मार्ग बनाया। केन्द्रीय राजनीतिक संगठन द्वारा पूरे शासन सत्ता का संचालन करना इन तुर्क सुल्तानों का नैतिक आदर्श बन चुका था। इस कार्य को सुनियोजित ढंग से व्यवस्थित करने के लिए सामंतशाही परम्पराएँ तोड़कर साम्राज्य के सुदुर स्थित प्रदेशों को केन्द्रीय व्यवस्था में जोड़ने के लिए इक्ता प्रणाली की नींव हिन्दुस्तान में डाली गयी।

उत्तर भारत पर तुर्की विजय में एक महत्वपूर्ण तथ्य भी निहित था जिसे प्रो० हबीब ने नगरीय क्रान्ति की संज्ञा दी है। तुर्क शासन ने सामाजिक भेदभाव और उस नागरिक जीवन का आधार तथाकथित वर्ण व्यवस्था को मानना अस्वीकार कर दिया जिसके परिणाम स्वरूप कुलीन नगरों के द्वार सभी जाति के लिए समान रूप से खोल दिए गए। वास्तविकता यह है कि आरम्भिक तुर्क सुल्तानों की मुख्य शक्ति इन्हीं नगरों पर आधारित थी जिन्होंने अपना समस्त अतिरिक्त श्रमिक वर्ग शासन की सेवा के लिए समर्पित कर विशेषाधिकार हीन प्रजा ने तत्परता से नए नगरों के निर्माण में सरकार को सहयोग दिया।

सैनिक पक्ष जो तुर्क विजय का आधार स्तम्भ था उसमें भी महत्वपूर्ण परिवर्तित लक्षण परिलक्षित होता है। युद्ध केवल एक जाति, वर्ण या वर्ग विशेष

का विशेषाधिकार नहीं रह गया और सेना में भर्ती का द्वार उचित प्रशिक्षण द्वारा सभी नागरिकों के लिए समान रूप से खोल दिए गए। सामंती परम्परा का त्याग कर शक्तिशाली स्थायी सेना का संगठन कर सैनिकों की भर्ती केन्द्रीय शासन के कार्य का एक प्रमुख अंग बन गया था क्योंकि इसमें सामरिक कुशलता, उचित प्रशिक्षण द्वारा समाज के सभी तब्के सम्मिलित किए गए। सेना के पुर्नगठन के तथ्य की वास्तविकता इसमें निहित है कि इन्हीं निम्न लोगों द्वारा सुव्यवस्थित सेना के बदौलत ही सुल्तानों द्वारा मंगोलों से हिन्दुस्तान की रक्षा करने का कार्य सम्पन्न हो सका। तुर्कों ने हिन्दुस्तान को अपना देश मानकर विदेशी आक्रमणों से हिन्दुस्तान को खण्डित करने के प्रयास से हिन्दुस्तान को अक्षुण्य बनाए रखा परन्तु इस नीति का राजपूतों में अभाव के कारण ही ये तथाकथित राजपूत वंश विदेशी आक्रमणों से हिन्दुस्तान को बचाने में सक्षम न हो सके।

एक अन्य क्षेत्र जहाँ तुर्की विजय का प्रभावशाली प्रभाव पड़ा तथा जिसने पूरे हिन्दुस्तान को एक कर दिया वह था प्रशासकीय भाषा। एक भाषा ने हिन्दुस्तान के सभी वर्ग के लोगों तथा सभी जाति के लोगों को एक कर दिया। चाहे हिन्दू चाहे मुसलमान सभी एक ही भाषा की छत्रछाया में आ गए। उच्च वर्गीय प्रशासन में फारसी भाषा हिन्दुस्तान की अखण्डता तथा एकरूपता में अतुलनीय योगदान समर्पित किया। तुर्कों के इस पक्ष के योगदान के विषय में अमीर खुसरो लिखता है –"किन्तु भारत वर्ष में फ़ारसी बोली (गुफ्तार) सिंधु नदी के तट से समुह तट तक समान है। इतनी महान भाषा हमारी बोल–चाल का माध्यम है और हमारी यह फ़ारसी भाषा मूल फ़ारसी भाषा (दरी) है। प्रत्येक सौ कोस पर भारतीय बोलियाँ बदल जाती है किन्तु लगभग 4 हजार फर्गस के क्षेत्र में फ़ारसी भाषा वहीं है.....। यह वह फ़ारसी भाषा है जिसमें शब्दों का उच्चारण उनके वर्ण विन्यास के समोचित है"।

12वीं शताब्दी के हिन्दुस्तान के समग्र अवलोकन के पश्चात् इस निष्कर्ष तक पहुँचा जा सकता है कि तत्कालीन वर्ण व्यवस्था तथा छुआ–छूत की विचारधारा ने ही देश की प्रगति को रोक रखा था और राजपूतों की हार के लिए कब्र तैयार किया। सामाजिक संकीर्णता ने ही राजनीतिक अराजकता को जन्म दिया था। इसी संकीर्ण सामाजिक व्यवस्था से पीड़ित लोग ही सहायक सिद्ध हुए क्योंकि तुर्कों ने इसी प्रणाली पर अत्यन्त तेजी से कुठाराघात कर इन्हें अपनी सहायता करने का मार्ग प्रशस्त किया। क्योंकि तुर्की सत्ता का कई शताब्दियों तक शासन में बने रहना इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि हिन्दुस्तानी प्रजा ने भी इन्हें अपना सुल्तान मान लिया था। यदि भारतीय जनता ने उनके शासन का विरोध किया होता तो संभवतः तुर्कों के लिए हिन्दुस्तान में एक इंच भूमि पाना या एक दिन ठहरना भी दुर्लभ हो सकता था।

अन्ततः तुर्क आक्रमण से लेकर हिन्दुस्तान की अखण्डता की नींव डालने तक दिल्ली के सुल्तानों का योगदान अद्वितीय है। वे स्वयं इस तथ्य से अपरिचित थे कि वे अखण्ड हिन्दुस्तान का वो स्वरूप तैयार कर रहे है जो अभी तक वर्तमान भारत का आधार बना हुआ है। खण्डित हिन्दुस्तान का जो स्वरूप राजपूत काल में था वह भारत के एकीकरण को सदैव ही बाधित करता रहा और इसकी पृष्ठभूमि में सामाजिक संकीर्णता मुख्यतः निहित थी। दिल्ली के सुल्तानों ने जो एकीकरण का मार्ग प्रशस्त किया वह जातिगत एकता और भाषायी एकता से होकर गुजरता है जो पहले कभी संभव न हो सका था। इसी एकता ने खण्डित हिन्दुस्तान के नागरिको को एक हिन्दुस्तान के नागरिक होने का एहसास दिलाया न कि किसी जिले या प्रान्त का। इसी एकता के परिणाम स्वरूप ही यहाँ के नागरिकों ने भी इन्हें अपना सुल्तान मानने में हिचकिचाहट नहीं व्यक्त की और प्रशासकीय सेवा में भी अपना पूर्ण योगदान दिया जिससे तुर्की साम्राज्य अपने स्थायित्व को प्राप्त हो सका। दिल्ली के सुल्तानों ने हिन्दुस्तान के एकीकरण की जो नींव रखी उसे मुगल शासको ने और भी सुदृढ़ कर दिया जिससे आज हमें एक अखण्ड हिन्दुस्तान के नागरिक होने का गर्व प्राप्त है और वर्तमान विशाल हिन्दुस्तान की अखण्डता तथा एक हिन्दुस्तान के नागरिक होने का गर्व प्राप्त करने के लिए हमें दिल्ली के सुल्तानों का आभार व्यक्त करना चाहिए।

सन्दर्भ :

1. मो० हबीब, खलिक अहमद निजामी—दिल्ली सुल्तनत, खण्ड—1, पृ० 117.
2. वहीं — पृ० 13.
3. मो० हबीब, खलिफ अहमद निजामी—दिल्ली सुल्तनत, पृ० 136.
4. एल.पी.शर्मा — दिल्ली सल्तनत, पृ० 63.
5. वहीं, पृ० 185.
6. वहीं, पृ० 189.
7. हरिश्चन्द्र वर्मा—मध्यकालीन भारत, पृ० 166.
8. वहीं, पृ० 167.
9. के.एस.लाल—खलजी वंश का इतिहास, पृ० 274.
10. हरिश्चन्द्र वर्मा—मध्यकालीन भारत, पृ० 194.

Reg. No. : 141 / 2004 ISSN 0973 - 8762

ANUŚĪLANA

Research Journal of Indian
Cultural, Social & Philosophical Stream

Chief Editor: ***Mukul Raj Mehta***

Volume X	Year: 2009	No. 1

Editors

Pramod Kumar Singh ***Jayant Upadhyay***

DEPARTMENT OF PHILOSOPHY & RELIGION
FACULTY OF ARTS, BANARAS HINDU UNIVERSITY,
VARANASI-221005, INDIA

ISSN 0973 – 8762

ANUŚĪLANA – published quarterly.

Note: *Scholars will be answerable to the contents of their articles.*

Leaser Type Set by
Ratnesh Kumar Rao.

Printed by
Kabara Offsets, Ravindrapuri, Varanasi.

Website : www.anushilana.co.in

Published by
Manvi Seva Samiti
135, Chandan Nagar, Karaundi, Varanasi

Content

BOOK REVIEW

दिल्ली सल्तनत के सुल्तानों की दण्ड प्रणाली

मृदुला जायसवाल
इतिहास विभाग,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

हिन्दुस्तान पर विदेशी आक्रमण तो प्रायः होते ही रहते थे, किन्तु उन्होंने कदापि हिन्दुस्तान को अपनी जमी नहीं समझा और स्वयं को हिन्दुस्तान में स्थायित्व प्रदान नहीं कर सके क्योंकि उन्होंने सिर्फ लूट की दृष्टि से ही हिन्दुस्तान पर दृष्टि डाली। वही तुर्क आक्रमण और भारत विजय के पश्चात् तुर्की शासकों ने इसे अपनी ही जमीं माना और स्थायित्व के लिए भरसक प्रयत्न करते रहे। भारत में तुर्कों का आक्रमण और तुर्की सत्ता की स्थापना दोनों तुर्क शासकों के लिए चुनौतीपूर्ण कार्य था। आक्रमण के बाद धन सम्पत्ति लूटकर स्थायी रूप से शासन करना पहले की अपेक्षा अधिक कठिन था। यद्यपि तुर्कों में साहस की कमी नहीं थी, वे कुशल योद्धा थे लेकिन कुशल योद्धा होने और शासन संचालक होने में फर्क है। तुर्कों के लिए हिन्दुस्तान की सभ्यता और संस्कृति बिल्कुल नयी थी और हिन्दुस्तानियों के लिए एक नए सभ्यता और संस्कृति के शासक को अपनाना धर्म विरूद्ध लगता था। वे आसानी से तुर्की सल्तनत की स्थापना के पक्ष में नहीं थे और हिन्दुस्तानियों को लगता था कि ये आक्रमणकारी है और कुछ दिन बाद यहाँ से चले जाऐंगे।

कुतुबुद्दीन ऐबक, गोरी का सिर्फ प्रतिनिधि ही नहीं बना बल्कि वह हिन्दुस्तान का नया भाग्य विधाता भी बन गया लेकिन जनता इस नए शासक को लेकर ऊहापोह की स्थिति में थी। जनता यह नहीं समझ पा रही थी कि वह हिन्दुस्तान का स्वतन्त्र शासक है या गजनी का प्रतिनिधि। लेकिन कुतुबुद्दीन ऐबक द्वारा गुलामी से मुक्त होने की कवायद ने जनता में ऐबक के प्रति स्वीकार्यता बढ़ा दी। ऐबक ने भी गजनी का मोह छोड़कर इस नए सल्तनत को संवारने में, तुर्की सत्ता को स्थापित करने में और नए सभ्यता और संस्कृति के बीच अपने तमाम सहयोगियों को मिश्रित करने में समय लगाया। यद्यपि खुदा ने उसे बहुत कम समय दिया फिर भी अपने अल्प समय में तुर्की सत्ता की स्थापना की नींव डाल दी। अब उसके भावी पीढ़ियों के कन्धों पर यह जिम्मेदारी थी कि ऐबक की नींव पर तुर्की सत्ता के स्थापना के महल को खड़ा करें। तुर्की शासकों की सत्ता तो स्थापित हो गयी पर उनके सामने सबसे प्रमुख समस्या उस सत्ता को दीर्घकाल तक स्थायित्व प्रदान करने की थी।

'कुतुबुद्दीन ऐबक' की इतिहासकार तारीफ करते हुए उसे लाखबख्श बताते है अर्थात् लाखों का दान देने वाला। लेकिन ए.एल.श्रीवास्तव के इस

कथन पर भी गौर करना होगा कि "जहाँ वह दानशील था वहाँ वह लाखों व्यक्तियों का खून बहाने वाला भी था"। इसका मतलब साफ है कि तुर्की सत्ता का प्रथम शासक हिन्दुस्तान में तुर्की सत्ता की स्थापना का रास्ता दण्ड के सहारे तलाश रहा था। अपने मालिक का वफादार ऐबक किसी भी कीमत पर तुर्कों के हाथ से हिन्दुस्तान को निकलने नहीं देना चाहते थे और उधर हिन्दुस्तान के पुराने राज्य विद्रोहों के जरिए नव निर्मित तुर्की सत्ता को उखाड़ फेंकना चाहते थे और जनता भी इस तुर्की राज्य को स्वीकार करने के पक्ष में नहीं थी। ऐसी परिस्थिति में दण्ड ही एक मात्र उपाय था जिसके भय से राज्य और जनता दोनों की स्वीकार्यता बढ़ायी जा सकती थी। विद्रोही राज्यों को कठोरतम दण्ड देकर ऐबक ने यह साबित कर दिया कि तुर्की सत्ता की स्थापना के विरूद्ध उठने वाले किसी भी सर को माफ करने के पक्ष में वह कत्तई नहीं था और वह कभी इस सिद्धान्त से समझौता नहीं कर सकता था कि अपने व्यक्तिगत गुण दयालुता की वजह से हिन्दुस्तान की सत्ता को आसानी से निकल जाने दे।

इल्तुतमिश ने अपने राज्य को स्थायित्व प्रदान के लिए भरसक प्रयत्न किए जो पूर्णतः सफल भी हुए। पर साथ ही अत्याचारियों को दण्डित करने के लिए उसने सामंतशाही व्यवस्था को गहरी चोट पहुँचाते हुए सामंतशाही के स्थानीयता के सिद्धान्त को रद्द कर सामंतो को दंडित करने के लिए तबादले के सिद्धान्त को विकसित किया जिससे इन पर कड़ी दृष्टि रखी जा सके तथा ये जनता के प्रति अत्याचारी न हो सके। इल्तुतमिश ने दण्ड का जो दौर आरम्भ किया उसे बाद के सुल्तानों ने दृढ़ता और कठोरता प्रदान किया।

'रजिया सुल्ताना' ने अपने धर्म और वंश का इतिहास बदलकर नयी मिशाल को कायम किया और सल्तनत की प्रथम महिला सुल्तान होने का गर्व प्राप्त किया। एक सुल्तान होने के नाते वह भी विद्रोहियों को बख्शने के पक्ष में नहीं थी। अतः उसने भी विद्रोही मलिक सैफुद्दीं कूची और फरव़रूद्दीन का कारागार में वध करा दिया और मलिक अलाउद्दीन ज़ानी की हत्या कर कटा हुआ सिर पूरे शहर में घुमाया गया। रजिया के काल से ही जनता में दण्ड प्रणाली की स्वीकार्यता बढ़ने लगी थी।

बलबन एक ऐसा सुल्तान हुआ जिसके स्थायित्व का रास्ता ही कठोर दण्ड प्रणाली से होकर जाता था क्योंकि उसपर दासत्व और राज्यहंता का जो दोषारोपण किया गया था उसे वह कठोर राजत्व सिद्धान्त से ही दूर कर सकता था। उसने दण्ड व्यवस्था को अपने राजत्व का प्रमुख अंग बना दिया। उसके आदेश से ही कटेहर में आतंक फैलाने वालो का रक्त भूमि पर बहने लगा। लाशों के ढ़ेर प्रत्येक गांव के आगे लगाए गए और सड़ने वाली लाशों की दुर्गन्ध गंगा नदी के तट तक पहुँची।[1] स्थानीय अधिकारियों की निरंकुशता के लिए

कठोर दण्ड दिए गए जिनमें एक प्रमुख बदायूँ का बरीद था, उसका वध कर उसकी लाश को शूली पर लटकाया गया, क्योंकि उसने अपना कर्तव्य नहीं निभाया। इसी प्रकार अवध के विद्रोही से हाथ मिलाने के लिए अमीन खाँ का वध कर उसकी लाश को अवध के द्वार पर लटका दिया। लखनौती के बाजार में दो मील से अधिक दूरी तक मार्ग के दोनों ओर फाँसी के तख्ते लगाए गए, फाँसी के तख्तों पर जिंदा आदमियों के सिरों में पहले कील ढोंकी गयी, करूण क्रन्दन से वातावरण चीत्कार कर उठा। तड़पते हुए लोगों ने दण्ड देने वालों से क्षमा माँगी, लेकिन क्षमा के नाम पर उन्हें मिली नुकीली कीलें, जो उनकी आँखों में घुसेड़ दिए गए। मृत्युदण्ड को सार्वजनिक रूप से इतना भयानक बना दिया गया कि लोग राज्य के खिलाफ सर उठाने का दुस्साहस न कर सके। पर जनसाधारण के लिए वह न्यायप्रिय भी था–बदायूँ के इक्तेदार मलिक बकबक को जनसामान्य के सामने कोड़ों से पीटा गया क्योंकि उसने एक दास को कोड़ों से पीटा था। अतः निःसंदेह हम कह सकते है कि बलबन की कठोर दण्ड प्रणाली उसके राजत्व की जरूरत थी और जिसे बलबन ने अपने राजत्व का प्रमुख अंग बना दिया।

वैसे तो जलालुद्दीन फिरोजशाह को बहुत उदार बताया जाता है लेकिन जैसे ही उसे स्वयं के विरूद्ध षडयन्त्र की सूचना मिली वह उत्तेजित हो उठा और उसने सार्वजनिक कठोरतम दण्ड का आदेश सीदी मौला के केस में दे दिया। सीदी मौला और उसके साथी सुल्तान के ख़िलाफ षड़यन्त्र कर रहे थे, सुल्तान अपराधियों को दण्ड देने के लिए कृत–संकल्पित था। अमीरों को बंदी बना कर निष्कासित कर दिया गया तथा काज़ी जलाल काशानी को बदायूँ भेज दिया गया। तत्पश्चात् सीदी मौला को बेड़ियों और जंजीरों से जकड़कर सुल्तान के सम्मुख लाया गया। शेख का एक अनुयायी बहरी उस पर उस्तरा लेकर झपटा और घुटने की पीछे की नस काटकर उसे लंगड़ा कर दिया। वह सिर्फ लंगड़ा ही नही हुआ। नस काटने से खून का फौव्वारा निकल पड़ा और वह जमीन पर बैठ गया। इसी समय अर्कली खाँ ने महावत बुलाकर सीदी को हाथी के पैर के नीचे कुचलवा दिया।[2] सीदी मौला को इस प्रकार दण्डित करना सुल्तान की दण्ड प्रणाली का ही अंग था। मध्यकाल में दण्ड प्रणाली के नए तरीकों का प्रयोग जितना अलाउद्दीन खिलजी ने किया शायद ही किसी सुल्तान ने किया हो। जिस सुल्तान ने अपने पालने वाले चाचा को मार डाला उससे दण्ड में किसी प्रकार की आशा रखना व्यर्थ है। कुछ घटनाओं को दृष्टिगत रखने पर अलाउद्दीन की दण्ड नीति को पूरी तरह से समझा जा सकता है–

घटना–1 : दिल्ली का सुल्तान और अलाउद्दीन का चाचा जलालुद्दीन खिलजी जब अपने भतीजे की उपलब्धियों से खुश होकर कड़ा में उससे मिलने गया तो उस समय अलाउद्दीन खिलजी अपने चाचा की हत्या की योजना बनाकर

आधा प्रतिशत भी हस्तगत कर ले तो न उनका अपमान करना था और न ही यातनाओं द्वारा धन वसूल करना था, उन्हें एक साथ बाँधकर बेंत मार–मार कर उनका अहंकार दूर कर उनका अपमान करना था तत्पश्चात् पूरा धन वसूल करना था तथा विद्रोहियों को दिल्ली लाकर इन पर बेतहाशा कोड़े बरसाए गए।

मुहम्मद–बिन–तुगलक ने दण्ड की नयी प्रथा को जन्म दिया जो उसके काल के पहले कभी घटित नहीं हुआ था। मुहम्मद के शासन काल का प्रथम विद्रोही गुरशास्प था जिसके लिए आज्ञा दिया गया कि उसका सिर एक सोने के थाल में रखा जाए और उसकी खाल को उसके शरीर से अलग कर उसमें भूसा भरा जाए और सारे देश में घुमाया जाए तत्पश्चात् उसकी जीवित खाल ही उतार लिया गया और उसके शरीर का कुछ मांस चावल के साथ पकाकर उसकी पत्नी और बच्चों के समक्ष रखा गया। शेष एक थाल में रखकर हथिनी के आगे रखा गया।[6] गयासुद्दीन बहादुर की भी जीवित खाल खींच ली गई तथा "फतेहनामा" (विजय पत्र) के साथ उसकी भूसे भरी खाल भेज दी गई। माबार क्षेत्र के विद्रोहियों को अंधा बनाने और कटे सिर बरन के दुर्ग के मीनारों से लटकाने का आदेश दिया गया। कड़ा के विद्रोही निजाम मईन को जीवित जला दिया गया और खाल में भूसा भर दिल्ली भेज दिया गया। सुल्तान ने स्वयं बरनी से कहा – "तुम देख रहे हो कितने विद्रोही अपना सिर उठा रहे है। लोग कहते है कि यह विद्रोह सुल्तान के अत्यधिक रक्तपात के कारण है। जनता क्या कहती है, इस कारण मैं अपने दंड नहीं रोक सकता। मैं संदेह के आधार पर तथा विद्रोह के अनुमान पर और अराजकता तथा षड़यन्त्रों के लिए प्राणदण्ड देता हूँ मैं थोड़ी अवज्ञा के लिए उनका वध करा देता हूँ और मैं इसी प्रकार दण्ड देता रहूँगा जब तक या तो मैं नष्ट नहीं हो जाऊँगा या लोग ठीक न हो जायें। मैं मृत्युदण्ड इसलिए भी देता हूँ क्योंकि जनता अकस्मात ही मेरी शत्रु बन गई है"।[7] सुल्तान के वाक्यांशो से ही हम उसकी मंशा को स्पष्ट देख सकते है कि वह कठोरतम मृत्युदण्ड को ही अपने स्थायित्व का आधार मानता था। इब्नबतूता ने लिखा है कि "सब व्यक्तियों में राजा को पुरस्कार देना तथा रक्त बहाना सर्वाधिक प्रिय था"। प्रतिदिन सैकड़ों व्यक्ति जंजीरों में जकड़े गर्दनों से, बंधे हाथों तथा पैरों में बेड़ियो सहित परिषद भवन में लाए जाते थे और उनके शरीर को बेतहाशा कोड़ो की मार से छलनी कर दिया जाता था और उनके चीख और क्रंदन से पूरे परिषद के रोए खड़े हो जाते थे। लेखक अमीर खुर्द कहता है कि उसका पिता सैयद कमाल द्वारा देवगिरि के समीप भक्सी कारागार में बंदी बना लिया था और वहाँ के विषय में ऐसे समाचार मिले थे कि कोई भी बंदी उससे वापस जीवित नहीं आता था क्योंकि वह चूहों और सर्पो से भरा पड़ा था। ये सभी सुल्तान के दण्ड की बर्बरता के नमूने तथा उदाहरण है।

सल्तनत कालीन दण्ड विधा बर्बरता से परिपूर्ण था। इन शासकों ने दण्ड की नई प्रथा को आरम्भ करने के साथ ही पुरानी विधा को और भी कठोर कर दिया। दिल्ली के सुल्तान अपने स्थायित्व को लेकर सदैव चिन्तित रहते थे और उनकी चिन्ता स्वाभाविक ही था क्योंकि इस काल में विद्रोही स्वर केवल गूंज ही नहीं रहा था बल्कि ये सदैव सल्तनत हथियाने की ताक में भी रहता था। इस स्थिति में एक शासक का कर्तव्य था कि वह अपने सल्तनत को सुरक्षित रखने के लिए उचित उपाय करे। इन सुल्तानों ने कठोर दण्ड प्रणाली का ही निवारण के रूप में देखा ताकि इन विद्रोहियों के अन्जाम को देखकर भविष्य में जन्म लेने वाले विद्रोहियों को खत्म किया जा सके।

ऐसा नहीं था कि सल्तनत काल के पहले अपराधियों और विद्रोहियों को दण्ड नहीं दिया जाता था पर जन सामान्य में भय तथा आतंक के लिए जन सामान्य के सामने खुलेआम ही इन दण्ड विधाओं को अन्जाम दिया जाता था। जिससे अपराधी की अत्यन्त दयनीय तथा वास्तविक स्थिति को स्वयं जनसामान्य अपनी आँखों से देख सकें। मध्यकालीन शासकों को अपने सल्तनत की सुरक्षा के लिए कठोर दण्ड प्रणाली का रास्ता अख्तियार करना ही पड़ा जो कि इनके दीर्घकालीन सल्तनत एवं जन–सामान्य की सुरक्षा का आधार बनी और दण्ड को सार्वजनिक करना ही उसकी स्वीकार्यता और राज्य के प्रति भय का कारण बना।

सन्दर्भ :

1. एम.हबीब एवं के.ए.निजामी *दिल्ली सुल्तनत,* पृष्ठ सं० 234.
2. के.एस.लाल–*खिलजी वंश का इतिहास,* पृष्ठ सं० 21.
3. वही–पृष्ठ सं० 115.
4. वही–पृष्ठ सं० 114.
5. वही–पृष्ठ सं० 117.
6. एल.पी.शर्मा–*दिल्ली सल्तन*–पृष्ठ सं० 205.
7. एम.हबीब एवं के.ए. निजामी–*दिल्ली सुल्तनत,* पृष्ठ सं० 431.

उपसंहार



उपसंहार

हिन्दुस्तान में मुगलिया सल्तनत की स्थापना करने वाले बाबर ने मध्य एशियाई राजनीति से अनुभव प्राप्त कर यहाँ पर इब्राहिम लोदी को कड़ी टक्कर दी तथा प्रथम अफगान साम्राज्य का अंत कर मध्ययुग के इतिहास में एक नया अध्याय प्रारम्भ किया। हिन्दुस्तान पर मुगलिया सल्तनत की स्थापना के बाद बाबर का सामना यहाँ की प्रमुख योद्धा जाति से होना था। तथाकथित इन योद्धा जातियों को इस बात से कोई मतलब नहीं था कि बाबर का आक्रमण उनकी मातृभूमि हिन्दुस्तान पर हुआ। उनके लिए तो सिर्फ राजपूताना का क्षेत्र ही उनके लिए उनका देश था जबकि उस समय राजपूत जातियों को हिन्दुओं के नेता के रूप में देखा जाता था। यदि इस समय पूरे हिन्दुस्तान ने एकजुट होकर सिर्फ भारत भूमि की रक्षा हेतु बाबर का सामना किया होता तो संभवतः यहाँ पर मुगलिया सल्तनत की स्थापना न होती, लेकिन राजपूतों को लगा कि बाबर युद्ध विजय के पश्चात् भारत से चला जाएगा और राजपूतों द्वारा आसानी से उत्तर भारत पर अधिकार किया जा सकेगा, लेकिन ये लोग अभी तक यह नहीं समझ सके थे कि जिन गुणों पर उन्हें घमण्ड था वह जल्द ही चकनाचूर होने वाला था। अन्ततः इन योद्धा जाति को भी मुगलिया सल्तनत के महत्व को समझने के बाद उनसे संबंध स्थापित करना पड़ा तथा मुगल बादशाहों को भी अच्छी तरह से पता था कि

राजपूताना के क्षेत्रों को अनदेशा कर हिन्दुस्तान पर राज्य करना कठिन हो सकता था।

मुगलिया सल्तनत की स्थापना के समय राजपूताना में बीकानेर, मेवाड़, आमेर, जैसलमेर, सिरोही, डूंगरपुर, देवलिया प्रतापगढ़, बांसवाड़ा और बूंदी राज्य अस्तित्व में थे। इन सभी राज्यों के साथ मारवाड़ राज्य भी राजपूताना के शक्तिशाली राज्यों में एक था। बाबर से लेकर औरंगजेब तक राजपूताना के इन क्षेत्रों के साथ सम्बन्ध उतार–चढ़ाव का रहा। मुख्यतः मारवाड़ राज्य के साथ संबंध वहाँ की परिस्थितियों के अनुसार बदलते रहते थे।

मुगल वंश की स्थापना के बाद से कुछ ऐसी परिस्थितियाँ निर्मित हुई जिससे धीरे–धीरे सभी राजपूत राज्य केन्द्रीय मुगल सत्ता के अधीन होते गए और मुगल सत्ता को भी राजपूतों की बहुमूल्य सेवाएँ प्राप्त होती गई जिससे मुगल सत्ता के सुदृढ़ीकरण में सहायता मिली। मुगल शासकों एवं राजपूतों के संबंधों का जो सिलसिला बाबर के समय से शुरू हुआ उसके अन्तर्गत विभिन्न परिस्थितियों के अन्तर्गत राजस्थान के राज्यों के साथ संबंध निर्धारित हुए। सामान्यतः मुगल राजपूत संबंधों को राजपूत नीति की संज्ञा दी जाती है, लेकिन वस्तुतः राजपूतों के व्यवहार के अनुसार ही मुगल बादशाह उनसे संबंध निर्धारित करते थे। सामान्यतः जब हम दो पक्षों के संबंधों की बात करते हैं तो उन संबंधों का आधार समानता का होता है। इस संदर्भ में यह नहीं भूलना चाहिए कि राजपूत

राज्यों के साथ संबंध बराबरी का नहीं बल्कि मुगल सत्ता के अधीन राज्यों का था। मुगल सत्ता के सुदृढ़ीकरण के लिए भी यह आवश्यक हो गया था कि वह इन राजपूत राज्यों को अपनी अधीनता में रखें क्योंकि केन्द्रीकृत मुगल साम्राज्य के अन्तर्गत स्वतन्त्र राजपूत राज्य होना संभव नहीं था।

बाबर का समकालीन मारवाड़ का शासक राव गंगा था जिसने अपने पुत्र मालदेव को राणा सांगा की सहायता हेतु खानवा के युद्ध में भेजा था। हुमायूँ की विषम परिस्थितियों में मारवाड़ के मालदेव ने शेरशाह के विरूद्ध सहायता का आश्वासन दिया, परन्तु हुमायूँ ने वक्त पर उस आश्वासन का लाभ न उठाया। अकबर के काल में मारवाड़ के शासक चन्द्रसेन और उसके पश्चात् उदयसिंह ने भी स्वेच्छा से अकबर की अधीनता स्वीकार की थी। जहाँगीर के शासन काल में सूरसिंह और गजसिंह ने भी अपनी सेवाओं से जहाँगीर को प्रसन्न किया था तथा शाहजादा खुर्रम के विद्रोह के समय गजसिंह ने ही बादशाह को धैर्य बंधवाया और प्रोत्साहन दिया। शाहजहाँ ने गजसिंह को 'महाराजा' का खिताब दिया तथा गजसिंह के बाद जसवन्त सिंह पर भी शाहजहाँ की कृपा यथावत् बनी रही।

शाहजहाँ के काल में उसके चारों पुत्रों की महत्वाकांक्षओं ने सत्ता के संघर्ष को जन्म दिया। वैसे तो सत्ता का यह संघर्ष उसके चारों पुत्रों के बीच था लेकिन अन्ततः यह युद्ध दारा और औरंगजेब के मध्य ही सिमट गया था। इस संघर्ष में जसवन्त सिंह दारा की ओर से शाही सेना

में शामिल हुआ था। लेकिन जैसे–जैसे वह औरंगजेब की सेना के नजदीक पहुँच रहा था तो ऐसा लग रहा था कि स्वयं पर से ही उसका विश्वास डगमगा रहा था और अपनी ही मंशा को ठीक ढंग से समझने में ही असमर्थ था। इसीलिए धरमत के मैदान तक पहुँचकर भी यह तय नहीं कर पा रहा था कि उसे औरंगजेब से युद्ध करना चाहिए कि नहीं और अपना संदेशवाहक औरंगजेब के पास भेजा। लेकिन औंरगजेब उसकी तरह अधर में लटका हुआ शासक नहीं था। उसे अपनी योजनाओं को अंजाम तक पहुँचाना बखूबी आता था, लेकिन जसवन्त सिंह का असमंजस उसके साहस को धीरे–धीरे कम रहा था और अन्ततः उसने युद्ध क्षेत्र से भागना ही उचित समझा। युद्ध क्षेत्र से भागने के बाद भी उसका मन अशान्त था तथा उसे यह भय था कि औरंगजेब उसे दण्डित करेगा। ऐसा लगता है कि जसवन्त सिंह अभी तक औरंगजेब की स्थिति को नहीं समझ सका था। जसवन्त सिंह की इतनी विशाल शाही सेना को परास्त करने के लिए औरंगजेब की कूटनीतिक बुद्धि ही सक्षम थी। बादशाह बनने के बाद औरंगजेब ने जसवन्त सिंह को क्षमा कर दिया था और अपनी सेवा में ले लिया था। मुगल सेवा का पुनः अवसर मिलने के बाद भी वह अपनी मनःस्थिति को समझने में असक्षम था। यद्यपि वह खाजवां के युद्ध में औरंगजेब की सेना में था तथापि शुजा से कुछ दिनों से उसकी गुप्त मंत्रणा चल रही थी। जसवन्त सिंह शाहजहाँ को पुनः बादशाह बनाए जाने के लिए शुजा से गुप्त संदेशों का आदान–प्रदान भी कर रहा था।

औरंगजेब को जब इस गुप्त वार्ता की सूचना मिली तो अपनी दूरदृष्टि का प्रयोग करते हुए परिस्थितियों क अनुसार उसने पुनः जसवन्त सिंह को एक और मौका दिया और मीर जुमला की मध्यस्थता से जसवन्त सिंह ने वायदा किया कि वह युद्ध में शाही सेना के दाहिने भाग में रहेगा। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि जसवन्त सिंह अर्न्तमन से औरंगजेब के प्रति निष्ठावान नहीं था तथा खजवां के युद्ध के दिन सुबह होने से पहले ही जसवन्त सिंह शाही सेना में लूट–पाट कर अपने राजपूत सैनिकों के साथ जोधपुर भाग गया और जसवन्त सिंह का यह कार्य पुनः औरंगजेब के प्रति विश्वासघात था। संभवतः औरंगजेब के समक्ष ऐसी विषम परिस्थिति पैदा करने के पीछे जसवन्त सिंह की मंशा यह थी कि यदि वह अपने सैनिकों संग युद्ध क्षेत्र से हट जाए तो औरंगजेब शुजा से पराजित हो जाएगा और जसवन्त सिंह अपनी योजना में सफल हो जाएगा। ऐसी परिस्थिति में भी औरंगजेब ने अपना संयम बनाए रखा क्योंकि वह जसवन्त सिंह को खुलकर विरोध करने का अवसर नहीं देना चाहता था। जसवन्त सिंह के व्यवहार से पूर्णतः यह स्पष्ट हो रहा था कि वह औरंगजेब के प्रति वफादार नहीं है। जोधपुर भागने के बाद भी उसने दारा को सहयोग देने का आश्वासन दिया परन्तु जयसिंह की कोशिशों से और परिस्थतियों को देखते हुए औरंगजेब ने भी पुनः जसवन्त सिंह की सेवा स्वीकार कर ली। जसवन्त सिंह के व्यवहार ने औरंगजेब के मन में संदेह की स्थिति तो पैदा कर ही दिया था तथा स्वयं जसवन्त सिंह का व्यवहार भी स्वभावतः उसके

चरित्र में संदेह उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त था। जसवन्त सिंह के व्यवहार में उसके स्वयं के कार्यों द्वारा उत्पन्न संदेह के कारण ही औरंगजेब ने जसवन्त सिंह को वतन जागीर नहीं दिया क्योंकि इस बात की पूरी संभावना थी कि जसवन्त सिंह पहले की ही भाँति फिर से किसी कार्य को अंजाम दे सकता था और यदि मुगल अधीनता स्वीकार करने के बाद उसे वतन जागीर दी जाती तो वह वहाँ पर रहकर राजपूतों की शक्ति को संगठित कर पुनः औरंगजेब के विरूद्ध कोई कार्य कर सकता था, क्योंकि औरंगजेब अच्छी तरह से जानता था कि राजपूत सत्ता का केन्द्रीकरण मुगल सत्ता के लिए खतरा हो सकता है। इसलिए जसवन्त सिंह को वतन जागीर देकर औरंगजेब अपनी सत्ता की सुरक्षा में कोई भी नई समस्या उत्पन्न नहीं करना चाहता था।

जिस राजपूत शक्ति को संगठित होने का मौका औरंगजेब नहीं देना चाहता था, वह शक्ति अचानक से जसवन्त सिंह की मृत्यु के बाद उठ खड़ी हुई। जसवन्त सिंह के जीवित रहते इन राजपूतों में आपसी फूट और अन्तःकलह मुश्किल था, लेकिन 28 नवम्बर 1678 ई0 को 52 वर्ष की अवस्था में जसवन्त सिंह की मृत्यु हो गई एवं उसकी मृत्यु के समय मारवाड़ राज्य का कोई भी उत्तराधिकारी जीवित नहीं था। ऐसी परिस्थिति में जसवन्त सिंह के बाद मारवाड़ राज्य में पद और सत्ता के लोभ में नैतिक और अनैतिक सत्ता अधिकार का संघर्ष प्रारम्भ हो गया। संघर्ष का मुख्य कारण जोधपुर को अपना राजनीतिक केन्द्र बनाने का था। राठौड़

सरदार यह बात अच्छी तरह से जानते थे कि अब मारवाड़ पर शाही मुहर लग जाएगी। बावजूद इसके बादशाह ने आश्वासन दिया था कि यदि मारवाड़ के उत्तराधिकारी का जन्म हो जाता है तो सारे अधिकार वापस कर दिए जायेंगे, लेकिन इन सरदारों से थोड़े दिन का भी इन्तजार नहीं हो रहा था और जिस मारवाड़ राज्य के नाम पर आन्तरिक राजनीति चल रही थी उसी मारवाड़ राज्य को उपद्रव और विद्रोह के केन्द्र में तब्दील कर दिया और पूरे मारवाड़ राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था को इन राजपूतों ने तहस–नहस कर दिया।

एक सम्राट और बादशाह के लिए यह आवश्यक था कि वह अपने साम्राज्य में हो रहे इस प्रकार की षड़यन्त्र कारी राजनीति को बढ़ने से रोककर उसे समाप्त करे। ये राठौड़ सरदार इतने मनबढ़ हो चुके थे कि शाही अधिकारियों के साथ दुव्यर्वहार करने में भी पीछे नहीं हटते थे। जसवन्त सिंह की सम्पत्ति और जोधपुर के किले को अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति समझ रहे थे जबकि यह सर्वविदित था कि इन सभी चीजों पर शाही मुहर लगनी थी।

मारवाड़ की परिस्थितियों ने ही बादशाह को मारवाड़ के प्रति सख्त फैसला लेने पर मजबूर किया और इन राठौड़ सरदारों को दण्ड स्वरुप मारवाड़ राज्य में जजिया लगा दिया गया। मारवाड़ राज्य के लिए जजिया एक धार्मिक कर रूप में नहीं बल्कि यह मारवाड़ राज्य को दण्डित करने के उद्देश्य से लगाया गया था। अतः इसका स्वरूप राजनीतिक था।

मारवाड़ राज्य के लिए जजिया कर मारवाड़ की परिस्थितियों की ही देन थी न कि औरंगजेब द्वारा पूर्व निर्धारित नीति का हिस्सा था। औरंगजेब ने सत्ता संभालने के 20–21 वर्षों बाद मारवाड़ में जजिया लगाया था और यह तो संभव नहीं हो सकता है कि औरंगजेब 20–21 वर्ष बाद याद आया हो कि उसका धर्म इस्लाम है और उसे एक मुसलमान होने का धर्म निभाना है। मारवाड़ राज्य में जजिया लगाने का मूल कारण मारवाड़ राज्य में ही नीहित था न कि औरंगजेब की धार्मिक नीति।

ऐसा प्रतीत होता है कि औरंगजेब और मारवाड़ राज्य का जो संबंध रहा वह स्वयं औरंगजेब द्वारा तय नहीं किया जा रहा था बल्कि यह संबंध स्वयं ही मारवाड़ की परिस्थितियों एवं समस्याओं के अनुसार निर्देशित हो रहा था।

मुगल सम्राट औरंगजेब और मारवाड़ राज्य के साथ संबंध का अध्ययन औरंगजेब के व्यक्तित्व के प्रति एक नया नजरिया विकसित करता है। इतिहास में विवादास्पद चरित्र वाले औरंगजेब को मूल्यांकित करते समय तमाम इतिहासकारों ने संभवतः इस पहलू को नजरअंदाज कर दिया है। महाराजा जसवन्त सिंह बार–बार मुगल सल्तनत के साथ विश्वासघात मुगलिया कानून के नजर में राज्यद्रोह था, बावजूद इसके औरंगजेब द्वारा क्षमादान न सिर्फ उसके धैर्य का परिचय देता है बल्कि उसके अन्दर की क्षमा भावना इतिहास में चिर–परिचित औरंगजेब के विवादित चरित्र से उसे अलग भी करता है। मारवाड़ की परिस्थितियाँ भले ही बार–बार औरंगजेब

के लिए उकसावे का कार्य कर रही थी, लेकिन औरंगजेब ने अधीरता के साथ कोई फैसला नहीं किया। राजपूतों के स्वाभावित चरित्र से अलग हटकर जसवन्त सिंह का राज्य विरोधी कार्य भी औरंगजेब को विचलित नहीं कर पाया। अपने वचन के लिए प्रसिद्ध राजपूतों द्वारा बार–बार वचन भंग किए जाने पर भी औरंगजेब ने विश्वासघात या वचन भंग का आरोप लगाकर मारवाड़ को हड़पने का प्रयास नहीं किया, जिसका अंदेशा राजपूतों को था। औरंगजेब ने मारवाड़ राज्य को यह वचन दिया था कि उत्तराधिकारी मिलने पर मारवाड़ राज्य पर राजपूतों का ही शासन रहेगा और अजीत सिंह के बड़े हो जाने पर औरंगजेब ने इस वचन को निभाया। यह औरंगजेब के लिए बड़ी बात नहीं थी कि मारवाड़ का अस्तित्व समाप्त कर उसे पूर्णतः मुगलिया सल्तनत का भाग बना देता। लेकिन वह राजपूत शक्ति का पूर्ण समर्थन खोना नहीं चाहता था और हिन्दुओं के अन्दर यह विश्वास बनाए रखना चाहता था कि वह हिन्दू राज्य का अन्त नहीं करना चाहता।

औरंगजेब की सबसे ज्यादा आलोचना जजिया कर लगाने की वजह से हुई और यही वजह उसकी हिन्दू विरोधी छवि को बढ़ाने में सहायक हुआ, लेकिन मारवाड़ के साथ संबंध निर्वहन में एक सम्राट और प्रशासक का ही चेहरा नजर आता है न कि धार्मिक रूप से कट्टर मुस्लिम शासक औरंगजेब का। कहीं–कहीं मठों एवं मन्दिरों को दान, हिन्दू रियाया के पक्ष में फरमान औरंगजेब के चेहरे को सम्राट की तरह और कहीं कठोर

प्रशासक की तरह तो पेश करते हैं, लेकिन इस अध्ययन में मजहबी मंशा से प्रेरित औरंगजेब के फैसले को प्रभावित होने से बचाते हैं। इतिहास तथ्यों पर आधारित होता है, लेकिन यदि कुछ क्षण कल्पनाओं का सहारा लेकर यह सोचा जाता कि औरंगजेब ने किसी आरोप के तहत मारवाड़ राज्य का जबरन अधिग्रहण कर लिया है और हिन्दू राजशाही को पूर्णतः कुचल डाला है, मजहब के नाम पर कत्ल–ओ–आम की इजाजत पर रोक की शाही मुहर लगा दी गई है तो निश्चित रूप से औरंगजेब को कट्टर मजहबी बताकर उस पर सवाल खड़े करने में कोई आपत्ति नहीं। किसी सुल्तान का मूल्यांकन उसकी नीतियों, फैसलों और कार्यों के आधार पर ही हो सकता है। इस्लाम को मानना या न मानना औरंगजेब का निजी विषय था। बावजूद इसके इस्लामी दृष्टिकोण से उत्तराधिकार के संघर्ष में किसी इस्लामी नियमों का पालन नहीं किया गया। इसीलिए इस अध्ययन के दौरान उत्तराधिकार को छोड़कर सत्ता का संघर्ष जैसे शीर्षक से औरंगजेब के राज्य प्राप्ति की व्याख्या की गयी। औरंगजेब ने अपने निजी चरित्र को किसी राज्य पर थोपने की मंशा नहीं व्यक्त की, बनते–बिगड़ते रिश्तों को अपने फैसले का आधार नहीं बनाया। इसीलिए युद्ध के मैदान से जसवन्त सिंह के पलायन पर भी मारवाड़ के विध्वंस और राजपूतों के कत्लेआम का कोई शाही हुक्मनामा नहीं जारी किया। जबकि इसके पूर्व के इतिहास में बलबन या अलाउद्दीन खिलजी के समय विश्वासघात के बाद भी औरंगजेब की तरह धैर्य दिखाना संभव नहीं था।

औरंगजेब के बाद भले ही उसकी नीतियों की आलोचना होती रही हो, लेकिन समकालीन परिस्थितियों में औरंगजेब ने इतने विशाल साम्राज्य को अपनी नीतियों के बदौलत ही बाँधे रखा और मारवाड़ राज्य के अस्तित्व को उसके उत्तराधिकारी के साथ स्वीकारना भी औरंगजेब और राजपूतों के संबंध के लिए मील का पत्थर साबित हुआ जिसका असर औरंगजेब के 50 वर्षों के शासनकाल पर दिखता रहा। यह भी प्रदर्शित हुआ कि औरंगजेब ने मारवाड़ के साथ बनते–बिगड़ते रिश्तों का प्रभाव दूसरे क्षेत्रों पर नहीं पड़ने दिया। इस आधार पर यह निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि औरंगजेब का सफल कूटनीतिक चरित्र एवं उसका कठोर प्रशासक होना उसके धार्मिक कट्टरपन की पहचान नहीं है। इतिहास में मारवाड़ राज्य के साथ औरंगजेब का संबंध जहाँ औरंगजेब के एक नए चेहरे की व्याख्या करता है वहीं मारवाड़ की दृष्टि से मुगलिया सल्तनत को समझने की एक नई दृष्टि भी देता है और औरंगजेब का मारवाड़ के शासकों के साथ संबंधों का अध्ययन किए बिना यदि औरंगजेब के व्यक्तित्व का मूल्यांकन किया जाता है तो औरंगजेब के व्यक्तित्व, चरित्र और औरंगजेब के काल का इतिहास लिखना एकांगी होगा। मारवाड़ के शासकों की दृष्टि से औरंगजेब को देखने का यह नया नजरिया संभवतः इतिहास में औरंगजेब का सही, पक्षपातरहित और पूर्वाग्रह मुक्त मूल्यांकन करने का सफल प्रयास माना जा सकता है। दूसरी तरफ मारवाड़ की जनता के नजरिए को भी समझने में आसानी होगी क्योंकि

जसवन्त सिंह के मुगलिया दृष्टि से राजद्रोह के बाद सबसे ज्यादा भयग्रस्त मारवाड़ की जनता ही थी, जिस भय को औरंगजेब ने अपनी नीतियों और विश्वास के बदौलत निर्मूल साबित कर दिया और राजपूताने के इतिहास के साथ ही मारवाड़ की गाथा सदैव मुगल सम्राट औरंगजेब जैसे शासकों के साथ उसके अस्तित्व को स्वीकार करने, जनता को अपेक्षित शाही सेना के भय से मुक्ति दिलाने और अजीत सिंह को लम्बे समय तक इन्तजार कर उसको उत्तराधिकारी देने के लिए जाना जाएगा।

''औरंगजेब का मारवाड़ के शासकों के साथ सम्बन्ध : एक अध्ययन''

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

की

पी-एच०डी० (इतिहास) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबंध

शोध छात्रा

मृदुला जायसवाल

विभागाध्यक्ष

प्रो० आनन्द शंकर सिंह

शोध निर्देशक

डॉ० राजीव कुमार श्रीवास्तव

इतिहास विभाग

सामाजिक विज्ञान संकाय

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

वाराणसी-221005

पंजीकरण संख्या : 280473

वर्ष : 2012

उपसंहार



उपसंहार

हिन्दुस्तान में मुगलिया सल्तनत की स्थापना करने वाले बाबर ने मध्य एशियाई राजनीति से अनुभव प्राप्त कर यहाँ पर इब्राहिम लोदी को कड़ी टक्कर दी तथा प्रथम अफगान साम्राज्य का अंत कर मध्ययुग के इतिहास में एक नया अध्याय प्रारम्भ किया। हिन्दुस्तान पर मुगलिया सल्तनत की स्थापना के बाद बाबर का सामना यहाँ की प्रमुख योद्धा जाति से होना था। तथाकथित इन योद्धा जातियों को इस बात से कोई मतलब नहीं था कि बाबर का आक्रमण उनकी मातृभूमि हिन्दुस्तान पर हुआ। उनके लिए तो सिर्फ राजपूताना का क्षेत्र ही उनके लिए उनका देश था जबकि उस समय राजपूत जातियों को हिन्दुओं के नेता के रूप में देखा जाता था। यदि इस समय पूरे हिन्दुस्तान ने एकजुट होकर सिर्फ भारत भूमि की रक्षा हेतु बाबर का सामना किया होता तो संभवतः यहाँ पर मुगलिया सल्तनत की स्थापना न होती, लेकिन राजपूतों को लगा कि बाबर युद्ध विजय के पश्चात् भारत से चला जाएगा और राजपूतों द्वारा आसानी से उत्तर भारत पर अधिकार किया जा सकेगा, लेकिन ये लोग अभी तक यह नहीं समझ सके थे कि जिन गुणों पर उन्हें घमण्ड था वह जल्द ही चकनाचूर होने वाला था। अन्ततः इन योद्धा जाति को भी मुगलिया सल्तनत के महत्त्व को समझने के बाद उनसे संबंध स्थापित करना पड़ा तथा मुगल बादशाहों को भी अच्छी तरह से पता था कि

राजपूताना के क्षेत्रों को अनदेशा कर हिन्दुस्तान पर राज्य करना कठिन हो सकता था।

मुगलिया सल्तनत की स्थापना के समय राजपूताना में बीकानेर, मेवाड़, आमेर, जैसलमेर, सिरोही, डूंगरपुर, देवलिया प्रतापगढ़, बांसवाड़ा और बूंदी राज्य अस्तित्व में थे। इन सभी राज्यों के साथ मारवाड़ राज्य भी राजपूताना के शक्तिशाली राज्यों में एक था। बाबर से लेकर औरंगजेब तक राजपूताना के इन क्षेत्रों के साथ सम्बन्ध उतार–चढ़ाव का रहा। मुख्यतः मारवाड़ राज्य के साथ संबंध वहाँ की परिस्थितियों के अनुसार बदलते रहते थे।

मुगल वंश की स्थापना के बाद से कुछ ऐसी परिस्थितियाँ निर्मित हुई जिससे धीरे–धीरे सभी राजपूत राज्य केन्द्रीय मुगल सत्ता के अधीन होते गए और मुगल सत्ता को भी राजपूतों की बहुमूल्य सेवाएँ प्राप्त होती गई जिससे मुगल सत्ता के सुदृढ़ीकरण में सहायता मिली। मुगल शासकों एवं राजपूतों के संबंधों का जो सिलसिला बाबर के समय से शुरू हुआ उसके अन्तर्गत विभिन्न परिस्थितियों के अन्तर्गत राजस्थान के राज्यों के साथ संबंध निर्धारित हुए। सामान्यतः मुगल राजपूत संबंधों को राजपूत नीति की संज्ञा दी जाती है, लेकिन वस्तुतः राजपूतों के व्यवहार के अनुसार ही मुगल बादशाह उनसे संबंध निर्धारित करते थे। सामान्यतः जब हम दो पक्षों के संबंधों की बात करते हैं तो उन संबंधों का आधार समानता का होता है। इस संदर्भ में यह नहीं भूलना चाहिए कि राजपूत

राज्यों के साथ संबंध बराबरी का नहीं बल्कि मुगल सत्ता के अधीन राज्यों का था। मुगल सत्ता के सुदृढ़ीकरण के लिए भी यह आवश्यक हो गया था कि वह इन राजपूत राज्यों को अपनी अधीनता में रखें क्योंकि केन्द्रीकृत मुगल साम्राज्य के अन्तर्गत स्वतन्त्र राजपूत राज्य होना संभव नहीं था।

बाबर का समकालीन मारवाड़ का शासक राव गंगा था जिसने अपने पुत्र मालदेव को राणा सांगा की सहायता हेतु खानवा के युद्ध में भेजा था। हुमायूँ की विषम परिस्थितियों में मारवाड़ के मालदेव ने शेरशाह के विरूद्ध सहायता का आश्वासन दिया, परन्तु हुमायूँ ने वक्त पर उस आश्वासन का लाभ न उठाया। अकबर के काल में मारवाड़ के शासक चन्द्रसेन और उसके पश्चात् उदयसिंह ने भी स्वेच्छा से अकबर की अधीनता स्वीकार की थी। जहाँगीर के शासन काल में सूरसिंह और गजसिंह ने भी अपनी सेवाओं से जहाँगीर को प्रसन्न किया था तथा शाहजादा खुर्रम के विद्रोह के समय गजसिंह ने ही बादशाह को धैर्य बंधवाया और प्रोत्साहन दिया। शाहजहाँ ने गजसिंह को 'महाराजा' का खिताब दिया तथा गजसिंह के बाद जसवन्त सिंह पर भी शाहजहाँ की कृपा यथावत् बनी रही।

शाहजहाँ के काल में उसके चारों पुत्रों की महत्वाकांक्षओं ने सत्ता के संघर्ष को जन्म दिया। वैसे तो सत्ता का यह संघर्ष उसके चारों पुत्रों के बीच था लेकिन अन्ततः यह युद्ध दारा और औरंगजेब के मध्य ही सिमट गया था। इस संघर्ष में जसवन्त सिंह दारा की ओर से शाही सेना

में शामिल हुआ था। लेकिन जैसे–जैसे वह औरंगजेब की सेना के नजदीक पहुँच रहा था तो ऐसा लग रहा था कि स्वयं पर से ही उसका विश्वास डगमगा रहा था और अपनी ही मंशा को ठीक ढंग से समझने में ही असमर्थ था। इसीलिए धरमत के मैदान तक पहुँचकर भी यह तय नहीं कर पा रहा था कि उसे औरंगजेब से युद्ध करना चाहिए कि नहीं और अपना संदेशवाहक औरंगजेब के पास भेजा। लेकिन औंरगजेब उसकी तरह अधर में लटका हुआ शासक नहीं था। उसे अपनी योजनाओं को अंजाम तक पहुँचाना बखूबी आता था, लेकिन जसवन्त सिंह का असमंजस उसके साहस को धीरे–धीरे कम रहा था और अन्ततः उसने युद्ध क्षेत्र से भागना ही उचित समझा। युद्ध क्षेत्र से भागने के बाद भी उसका मन अशान्त था तथा उसे यह भय था कि औरंगजेब उसे दण्डित करेगा। ऐसा लगता है कि जसवन्त सिंह अभी तक औरंगजेब की स्थिति को नहीं समझ सका था। जसवन्त सिंह की इतनी विशाल शाही सेना को परास्त करने के लिए औरंगजेब की कूटनीतिक बुद्धि ही सक्षम थी। बादशाह बनने के बाद औरंगजेब ने जसवन्त सिंह को क्षमा कर दिया था और अपनी सेवा में ले लिया था। मुगल सेवा का पुनः अवसर मिलने के बाद भी वह अपनी मनःस्थिति को समझने में असक्षम था। यद्यपि वह खाजवां के युद्ध में औरंगजेब की सेना में था तथापि शुजा से कुछ दिनों से उसकी गुप्त मंत्रणा चल रही थी। जसवन्त सिंह शाहजहाँ को पुनः बादशाह बनाए जाने के लिए शुजा से गुप्त संदेशों का आदान–प्रदान भी कर रहा था।

औरंगजेब को जब इस गुप्त वार्ता की सूचना मिली तो अपनी दूरदृष्टि का प्रयोग करते हुए परिस्थितियों क अनुसार उसने पुनः जसवन्त सिंह को एक और मौका दिया और मीर जुमला की मध्यस्थता से जसवन्त सिंह ने वायदा किया कि वह युद्ध में शाही सेना के दाहिने भाग में रहेगा। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि जसवन्त सिंह अर्न्तमन से औरंगजेब के प्रति निष्ठावान नहीं था तथा खजवां के युद्ध के दिन सुबह होने से पहले ही जसवन्त सिंह शाही सेना में लूट–पाट कर अपने राजपूत सैनिकों के साथ जोधपुर भाग गया और जसवन्त सिंह का यह कार्य पुनः औरंगजेब के प्रति विश्वासघात था। संभवतः औरंगजेब के समक्ष ऐसी विषम परिस्थिति पैदा करने के पीछे जसवन्त सिंह की मंशा यह थी कि यदि वह अपने सैनिकों संग युद्ध क्षेत्र से हट जाए तो औरंगजेब शुजा से पराजित हो जाएगा और जसवन्त सिंह अपनी योजना में सफल हो जाएगा। ऐसी परिस्थिति में भी औरंगजेब ने अपना संयम बनाए रखा क्योंकि वह जसवन्त सिंह को खुलकर विरोध करने का अवसर नहीं देना चाहता था। जसवन्त सिंह के व्यवहार से पूर्णतः यह स्पष्ट हो रहा था कि वह औरंगजेब के प्रति वफादार नहीं है। जोधपुर भागने के बाद भी उसने दारा को सहयोग देने का आश्वासन दिया परन्तु जयसिंह की कोशिशों से और परिस्थतियों को देखते हुए औरंगजेब ने भी पुनः जसवन्त सिंह की सेवा स्वीकार कर ली। जसवन्त सिंह के व्यवहार ने औरंगजेब के मन में संदेह की स्थिति तो पैदा कर ही दिया था तथा स्वयं जसवन्त सिंह का व्यवहार भी स्वभावतः उसके

चरित्र में संदेह उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त था। जसवन्त सिंह के व्यवहार में उसके स्वयं के कार्यों द्वारा उत्पन्न संदेह के कारण ही औरंगजेब ने जसवन्त सिंह को वतन जागीर नहीं दिया क्योंकि इस बात की पूरी संभावना थी कि जसवन्त सिंह पहले की ही भाँति फिर से किसी कार्य को अंजाम दे सकता था और यदि मुगल अधीनता स्वीकार करने के बाद उसे वतन जागीर दी जाती तो वह वहाँ पर रहकर राजपूतों की शक्ति को संगठित कर पुनः औरंगजेब के विरूद्ध कोई कार्य कर सकता था, क्योंकि औरंगजेब अच्छी तरह से जानता था कि राजपूत सत्ता का केन्द्रीकरण मुगल सत्ता के लिए खतरा हो सकता है। इसलिए जसवन्त सिंह को वतन जागीर देकर औरंगजेब अपनी सत्ता की सुरक्षा में कोई भी नई समस्या उत्पन्न नहीं करना चाहता था।

जिस राजपूत शक्ति को संगठित होने का मौका औरंगजेब नहीं देना चाहता था, वह शक्ति अचानक से जसवन्त सिंह की मृत्यु के बाद उठ खड़ी हुई। जसवन्त सिंह के जीवित रहते इन राजपूतों में आपसी फूट और अन्तःकलह मुश्किल था, लेकिन 28 नवम्बर 1678 ई0 को 52 वर्ष की अवस्था में जसवन्त सिंह की मृत्यु हो गई एवं उसकी मृत्यु के समय मारवाड़ राज्य का कोई भी उत्तराधिकारी जीवित नहीं था। ऐसी परिस्थिति में जसवन्त सिंह के बाद मारवाड़ राज्य में पद और सत्ता के लोभ में नैतिक और अनैतिक सत्ता अधिकार का संघर्ष प्रारम्भ हो गया। संघर्ष का मुख्य कारण जोधपुर को अपना राजनीतिक केन्द्र बनाने का था। राठौड़

सरदार यह बात अच्छी तरह से जानते थे कि अब मारवाड़ पर शाही मुहर लग जाएगी। बावजूद इसके बादशाह ने आश्वासन दिया था कि यदि मारवाड़ के उत्तराधिकारी का जन्म हो जाता है तो सारे अधिकार वापस कर दिए जायेंगे, लेकिन इन सरदारों से थोड़े दिन का भी इन्तजार नहीं हो रहा था और जिस मारवाड़ राज्य के नाम पर आन्तरिक राजनीति चल रही थी उसी मारवाड़ राज्य को उपद्रव और विद्रोह के केन्द्र में तब्दील कर दिया और पूरे मारवाड़ राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था को इन राजपूतों ने तहस–नहस कर दिया।

एक सम्राट और बादशाह के लिए यह आवश्यक था कि वह अपने साम्राज्य में हो रहे इस प्रकार की षड़यन्त्र कारी राजनीति को बढ़ने से रोककर उसे समाप्त करे। ये राठौड़ सरदार इतने मनबढ़ हो चुके थे कि शाही अधिकारियों के साथ दुव्यर्वहार करने में भी पीछे नहीं हटते थे। जसवन्त सिंह की सम्पत्ति और जोधपुर के किले को अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति समझ रहे थे जबकि यह सर्वविदित था कि इन सभी चीजों पर शाही मुहर लगनी थी।

मारवाड़ की परिस्थितियों ने ही बादशाह को मारवाड़ के प्रति सख्त फैसला लेने पर मजबूर किया और इन राठौड़ सरदारों को दण्ड स्वरुप मारवाड़ राज्य में जजिया लगा दिया गया। मारवाड़ राज्य के लिए जजिया एक धार्मिक कर रूप में नहीं बल्कि यह मारवाड़ राज्य को दण्डित करने के उद्‌देश्य से लगाया गया था। अतः इसका स्वरूप राजनीतिक था।

मारवाड़ राज्य के लिए जजिया कर मारवाड़ की परिस्थितियों की ही देन थी न कि औरंगजेब द्वारा पूर्व निर्धारित नीति का हिस्सा था। औरंगजेब ने सत्ता संभालने के 20–21 वर्षों बाद मारवाड़ में जजिया लगाया था और यह तो संभव नहीं हो सकता है कि औरंगजेब 20–21 वर्ष बाद याद आया हो कि उसका धर्म इस्लाम है और उसे एक मुसलमान होने का धर्म निभाना है। मारवाड़ राज्य में जजिया लगाने का मूल कारण मारवाड़ राज्य में ही नीहित था न कि औरंगजेब की धार्मिक नीति।

ऐसा प्रतीत होता है कि औरंगजेब और मारवाड़ राज्य का जो संबंध रहा वह स्वयं औरंगजेब द्वारा तय नहीं किया जा रहा था बल्कि यह संबंध स्वयं ही मारवाड़ की परिस्थितियों एवं समस्याओं के अनुसार निर्देशित हो रहा था।

मुगल सम्राट औरंगजेब और मारवाड़ राज्य के साथ संबंध का अध्ययन औरंगजेब के व्यक्तित्व के प्रति एक नया नजरिया विकसित करता है। इतिहास में विवादास्पद चरित्र वाले औरंगजेब को मूल्यांकित करते समय तमाम इतिहासकारों ने संभवतः इस पहलू को नजरअंदाज कर दिया है। महाराजा जसवन्त सिंह बार–बार मुगल सल्तनत के साथ विश्वासघात मुगलिया कानून के नजर में राज्यद्रोह था, बावजूद इसके औरंगजेब द्वारा क्षमादान न सिर्फ उसके धैर्य का परिचय देता है बल्कि उसके अन्दर की क्षमा भावना इतिहास में चिर–परिचित औरंगजेब के विवादित चरित्र से उसे अलग भी करता है। मारवाड़ की परिस्थितियाँ भले ही बार–बार औरंगजेब

के लिए उकसावे का कार्य कर रही थी, लेकिन औरंगजेब ने अधीरता के साथ कोई फैसला नहीं किया। राजपूतों के स्वाभावित चरित्र से अलग हटकर जसवन्त सिंह का राज्य विरोधी कार्य भी औरंगजेब को विचलित नहीं कर पाया। अपने वचन के लिए प्रसिद्ध राजपूतों द्वारा बार–बार वचन भंग किए जाने पर भी औरंगजेब ने विश्वासघात या वचन भंग का आरोप लगाकर मारवाड़ को हड़पने का प्रयास नहीं किया, जिसका अंदेशा राजपूतों को था। औरंगजेब ने मारवाड़ राज्य को यह वचन दिया था कि उत्तराधिकारी मिलने पर मारवाड़ राज्य पर राजपूतों का ही शासन रहेगा और अजीत सिंह के बड़े हो जाने पर औरंगजेब ने इस वचन को निभाया। यह औरंगजेब के लिए बड़ी बात नहीं थी कि मारवाड़ का अस्तित्व समाप्त कर उसे पूर्णतः मुगलिया सल्तनत का भाग बना देता। लेकिन वह राजपूत शक्ति का पूर्ण समर्थन खोना नहीं चाहता था और हिन्दुओं के अन्दर यह विश्वास बनाए रखना चाहता था कि वह हिन्दू राज्य का अन्त नहीं करना चाहता।

औरंगजेब की सबसे ज्यादा आलोचना जजिया कर लगाने की वजह से हुई और यही वजह उसकी हिन्दू विरोधी छवि को बढ़ाने में सहायक हुआ, लेकिन मारवाड़ के साथ संबंध निर्वहन में एक सम्राट और प्रशासक का ही चेहरा नजर आता है न कि धार्मिक रूप से कट्टर मुस्लिम शासक औरंगजेब का। कहीं–कहीं मठों एवं मन्दिरों को दान, हिन्दू रियाया के पक्ष में फरमान औरंगजेब के चेहरे को सम्राट की तरह और कहीं कठोर

प्रशासक की तरह तो पेश करते हैं, लेकिन इस अध्ययन में मजहबी मंशा से प्रेरित औरंगजेब के फैसले को प्रभावित होने से बचाते हैं। इतिहास तथ्यों पर आधारित होता है, लेकिन यदि कुछ क्षण कल्पनाओं का सहारा लेकर यह सोचा जाता कि औरंगजेब ने किसी आरोप के तहत मारवाड़ राज्य का जबरन अधिग्रहण कर लिया है और हिन्दू राजशाही को पूर्णतः कुचल डाला है, मजहब के नाम पर कत्ल–ओ–आम की इजाजत पर रोक की शाही मुहर लगा दी गई है तो निश्चित रूप से औरंगजेब को कट्टर मजहबी बताकर उस पर सवाल खड़े करने में कोई आपत्ति नहीं। किसी सुल्तान का मूल्यांकन उसकी नीतियों, फैसलों और कार्यों के आधार पर ही हो सकता है। इस्लाम को मानना या न मानना औरंगजेब का निजी विषय था। बावजूद इसके इस्लामी दृष्टिकोण से उत्तराधिकार के संघर्ष में किसी इस्लामी नियमों का पालन नहीं किया गया। इसीलिए इस अध्ययन के दौरान उत्तराधिकार को छोड़कर सत्ता का संघर्ष जैसे शीर्षक से औरंगजेब के राज्य प्राप्ति की व्याख्या की गयी। औरंगजेब ने अपने निजी चरित्र को किसी राज्य पर थोपने की मंशा नहीं व्यक्त की, बनते–बिगड़ते रिश्तों को अपने फैसले का आधार नहीं बनाया। इसीलिए युद्ध के मैदान से जसवन्त सिंह के पलायन पर भी मारवाड़ के विध्वंस और राजपूतों के कत्लेआम का कोई शाही हुक्मनामा नहीं जारी किया। जबकि इसके पूर्व के इतिहास में बलबन या अलाउद्दीन खिलजी के समय विश्वासघात के बाद भी औरंगजेब की तरह धैर्य दिखाना संभव नहीं था।

औरंगजेब के बाद भले ही उसकी नीतियों की आलोचना होती रही हो, लेकिन समकालीन परिस्थितियों में औरंगजेब ने इतने विशाल साम्राज्य को अपनी नीतियों के बदौलत ही बाँधे रखा और मारवाड़ राज्य के अस्तित्व को उसके उत्तराधिकारी के साथ स्वीकारना भी औरंगजेब और राजपूतों के संबंध के लिए मील का पत्थर साबित हुआ जिसका असर औरंगजेब के 50 वर्षों के शासनकाल पर दिख़ता रहा। यह भी प्रदर्शित हुआ कि औरंगजेब ने मारवाड़ के साथ बनते–बिगड़ते रिश्तों का प्रभाव दूसरे क्षेत्रों पर नहीं पड़ने दिया। इस आधार पर यह निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि औरंगजेब का सफल कूटनीतिक चरित्र एवं उसका कठोर प्रशासक होना उसके धार्मिक कट्टरपन की पहचान नहीं है। इतिहास में मारवाड़ राज्य के साथ औरंगजेब का संबंध जहाँ औरंगजेब के एक नए चेहरे की व्याख्या करता है वहीं मारवाड़ की दृष्टि से मुगलिया सल्तनत को समझने की एक नई दृष्टि भी देता है और औरंगजेब का मारवाड़ के शासकों के साथ संबंधों का अध्ययन किए बिना यदि औरंगजेब के व्यक्तित्व का मूल्यांकन किया जाता है तो औरंगजेब के व्यक्तित्व, चरित्र और औरंगजेब के काल का इतिहास लिखना एकांगी होगा। मारवाड़ के शासकों की दृष्टि से औरंगजेब को देखने का यह नया नजरिया संभवतः इतिहास में औरंगजेब का सही, पक्षपातरहित और पूर्वाग्रह मुक्त मूल्यांकन करने का सफल प्रयास माना जा सकता है। दूसरी तरफ मारवाड़ की जनता के नजरिए को भी समझने में आसानी होगी क्योंकि

जसवन्त सिंह के मुगलिया दृष्टि से राजद्रोह के बाद सबसे ज्यादा भयग्रस्त मारवाड़ की जनता ही थी, जिस भय को औरंगजेब ने अपनी नीतियों और विश्वास के बदौलत निर्मूल साबित कर दिया और राजपूताने के इतिहास के साथ ही मारवाड़ की गाथा सदैव मुगल सम्राट औरंगजेब जैसे शासकों के साथ उसके अस्तित्व को स्वीकार करने, जनता को अपेक्षित शाही सेना के भय से मुक्ति दिलाने और अजीत सिंह को लम्बे समय तक इन्तजार कर उसको उत्तराधिकारी देने के लिए जाना जाएगा।